बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष
वनस्पति विज्ञान, द्वितीय प्रश्नपत्र

पादप पारिस्थितिकी, जैव विविधता एवं पादप भौगोलिक

(Plant Ecology, Biodiversity and Phytogeography)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY-BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Pramod Patil
   Retd. Professor,
   IEHE, Bhopal (MP).
2. Dr. Moni Mathur
   Professor,
   Govt. SNG (Autonomous) PG College,
   Bhopal (MP).
3. Dr. Nasreen Siddique
   Retd. Professor,
   Govt. MVM College, Bhopal (MP).

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (MP).
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (MP).
3. Dr. Jyoti. S. Parashar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (MP).
4. Dr. Pramod Patil
   Retd. Professor,
   IEHE, Bhopal (MP).
5. Dr. Moni Mathur
   Professor,
   Govt. SNG (Autonomous) PG College,
   Bhopal (MP).
6. Dr. Nasreen Siddique
   Retd. Professor
   Govt. MVM College, Bhopal (MP).

COURSE WRITER

Dr. Meenal Rehman, Asst. Professor, Mata Gujri Mahila Mahavidyalaya, Jabalpur, MP

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. (Developed by Himalaya Publishing House Pvt. Ltd.) and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 ● Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
● Website: www.vikaspublishing.com ● Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

पादप पारिस्थितिकी, जैव विविधता एवं पादप भौगोलिक

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 **पारिस्थितिक तंत्र** : संरचना एवं प्रकार जैविक एवं अजैविक घटक, पोषण स्तर, खाद्यश्रृंखला खाद्यजाल, पारिस्थितिक पिरामिड, ऊर्जा प्रवाह। जैव भू–रासायनिक चक्रः अवधारणा, गैसीय, द्रव तथा अवसादीय चक्रः कार्बन, नाइट्रोजन, जल, फॉस्फोरस एवं सल्फर चक्र।	**इकाई 1** : पारिस्थितिक तंत्र **(पृष्ठ 3–37)**
इकाई – 2 **पारिस्थितिक अनुकूलन** : आकारिकी आंतरिकी तथा कार्यिकी अनुक्रिया, जल अनुकूलन (जलोद्भिद् तथा मरुद्भिदद्ध), तापक्रम अनुकूलन (तापकालिता एवं वसतीकरण) प्रकाश अनुकूलन (प्रकाशरागी तथा छायारागी) प्रकाश दीप्तीकालिता। पादप अनुक्रमण : कारण, प्रवृत्ति एवं प्रक्रिया, अनुक्रमण के प्रकार हाइड्रोसियर (जलीय अनुक्रमण) जीरोसियर, (शुष्क अनुक्रमण)	**इकाई 2** : पारिस्थितिक अनुकूलन **(पृष्ठ 38–76)**
इकाई–3 **जैवविविधता एवं जनसंख्या पारिस्थितिकी** : वितरण प्रणाली, घनत्व, जन्मदर, मृत्युदर, वृद्धिवक्र, इकोटाइप एवं इक्रैड्स, समुदाय पारिस्थितिकी : आवृत्ति, घनत्व, बहुलता, आच्छादन एवं जीवनरूप। जैवविविधता–आधारभूत परिकल्पना, परिभाषा, महत्व, भारत की जैवविविधता, तप्तस्थल, स्वस्थाने तथा बाह्य स्थाने संरक्षण। जैव मण्डल संचयत, म.प्र. के अभयारण एवं राष्ट्रीय उद्यान, विलुप्तप्राय तथा खतरे में पड़ी प्रजातियाँ, रेड डाटाबुक।	**इकाई 3** : जैवविविधता एवं जनसंख्या पारिस्थितिकी **(पृष्ठ 77–125)**
इकाई–4 **मृदा एवं प्रदूषण** : भौतिक एवं रासायनिक गुण, मृदा का निर्माण, मृदा परिच्छेदिका का विकास, मृदा का वर्गीकरण, मृदा का संगठन मृदा कारक। प्रदूषणः परिभाषा प्रकार एवं कारण, वैश्विक तपन, अम्लीय वर्षा जलवायु परिवर्तन, ओजन परत एवं ओजोन छिद्र।	**इकाई 4** : मृदा एवं प्रदूषण **(पृष्ठ 126–191)**
इकाई–5 **पादप भौगोलिकी** : भारत के पादप भौगोलिक क्षेत्र। मध्यप्रदेश के वानस्पतिक प्रकार। प्राकृतिक स्त्रोत परिभाषा एवं वर्गीकरण, संरक्षण एवं प्रबंधन। भू–स्त्रोत प्रबंधन। जल एवं आर्द्रभूमि स्त्रोत प्रबंधन।	**इकाई 5** : पादप–भौगोलिक : भारत के पादप–भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश) **(पृष्ठ 192–224)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 पारिस्थितिक तंत्र **3–37**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 पारिस्थितिक विज्ञान शब्द की उत्पत्ति का इतिहास
1.3 पारिस्थितिक विज्ञान का विषय क्षेत्र
1.4 पारिस्थितिकी का विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध
1.5 पारिस्थितिक विज्ञान के उप–प्रभाग
1.6 पारिस्थितिक तंत्र की संरचना
1.7 पारिस्थितिकीय तंत्र के घटक
1.8 पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार
1.9 प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र
1.9.1 समुद्री पारिस्थितिक तंत्र
1.9.2 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र
1.10 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह
1.11 खाद्य श्रृंखला
1.11.1 खाद्य श्रृंखला के प्रकार
1.12 खाद्य–जाल
1.13 पोषक स्तर
1.14 पारिस्थितिक पिरामिड
1.15 जैव–भू–रासायनिक चक्र
1.15.1 गैसीय चक्र
1.15.2 खनिजों का चक्रीकरण या अवसादी चक्र
1.16 अपनी प्रगती जॉचिए प्रश्नों के उत्तर
1.17 सारांश
1.18 मुख्य शब्दावली
1.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.20 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 पारिस्थितिक अनुकूलन **38–76**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 पारिस्थितिक अनुकूलनः जल के लिए पादपों में आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ
2.2.1 जलोद्भिद पौधे
2.2.1.1 जलोद्भिद पौधों के विशिष्ट लक्षण
2.2.1.2 जलीय पौधों का वर्गीकरण
2.2.1.3 जलीय पौधों में आकारिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.2.1.4 जलीय पौधों में शारीरिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.2.1.5 जलीय पौधों में कार्यिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.2.2 मरुद्भिद पौधे
2.2.2.1 मरुद्भिद पौधों के विशिष्ट लक्षण
2.2.2.2 मरुद्भिद पौधों का वर्गीकरण
2.2.2.3 मरुद्भिद पौधों में आकारिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.2.2.4 मरुद्भिद पौधों में शारीरिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.2.2.5 मरुद्भिद पौधों की कार्यिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.2.3 लवणोद्भिद पौधे

2.3 पारिस्थितिक अनुकूलनः तापमान तथा प्रकाश के लिए पादपों में आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ
2.3.1 तापमान के प्रति पादप अनुक्रियाएँ या अनुकूलन अनुक्रियाएँ
2.3.1.1 तापकालिता
2.3.1.2 बसन्तीकरण
2.3.2 प्रकाश के प्रति पादप अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
2.3.2.1 दीप्तिकालिता
2.4 पादप अनुक्रमण
2.4.1 पादप अनुक्रमण के प्रकार
2.4.2 अनुक्रमण के कारण
2.4.3 अनुक्रमण के विभिन्न चरण
2.5 पादप अनुक्रमण के उदाहरण
2.5.1 जलक्रमक (हाइड्रोसियर)
2.5.2 मरुक्रमक (जीरोसियर)
2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 जैवविविधता एवं जनसंख्या पारिस्थितिकी **77–125**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 समष्टि के प्रकार
3.2.1 समष्टि के लक्षण
3.3 समष्टि घनत्व
3.4 जन्म दर
3.5 मृत्यु दर
3.5.1 आयु या वयस वितरण
3.5.2 आयु या वयस स्तूप
3.5.3 समष्टि प्रकीर्णन या परिक्षेपण
3.5.4 समष्टि वृद्धि स्वरूप एवं धारणा क्षमता
3.6 इकेड्स या पारिज
3.7 पारिस्थितिक प्रारूप या पारिप्रारूप या इकोटाइप
3.7.1 परिप्रारूपों के प्रकार
3.8 सामुदायिक पारिस्थितिकी
3.8.1 समुदाय के अभिलक्षण
3.8.2 समुदाय का आकार एवं संरचना
3.8.3 समुदाय की संरचना के अध्ययन में उपयोगी लक्षण
3.8.4 विश्लेषणात्मक लक्षण
3.8.5 संश्लेषणात्मक लक्षण
3.9 जैव–विविधता
3.9.1 जैव–विविधता की परिभाषा
3.9.2 जैव–विविधता की मूल अवधारणा
3.9.3 जैव–विविधता का महत्त्व
3.10 भारतीय जैव–विविधता
3.11 हॉट स्पॉटस
3.12 जैव–विविधता का संरक्षण
3.12.1 लुप्तप्रायः तथा खतरे में पड़ी प्रजातियाँ
3.12.2 पादप प्रजातियों के लुप्तप्रायः होने के कारण

3.12.3 भारत की लुप्तप्रायः एवं संकटग्रस्त जातियाँ
3.12.4 लाल आँकड़ा पुस्तक अथवा रेड डाटा बुक
3.13 जैव–मण्डल संचयन, मध्यप्रदेश के अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान
3.14 वन्य जीवन का संरक्षण
3.14.1 राष्ट्रीय पार्क एवं अभयारण्य
3.14.2 मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय उद्यानों का विकास
3.14.3 मध्यप्रदेश की टाइगर परियोजना
3.14.4 वन्य जीवन आरक्षित वन तथा सामान्य मानव
3.14.5 मध्यप्रदेश राज्य के प्रमुख राष्ट्रीय पार्क
3.15 जैव–मण्डल रिजर्व
3.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.17 सारांश
3.18 मुख्य शब्दावली
3.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.20 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 मृदा एवं प्रदूषण **126–191**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुण
4.2.1 मृदा के भौतिक गुण
4.2.2 मृदा के रासायनिक गुण
4.3 मृदा का निर्माण
4.4 मृदा परिच्छेदिका
4.5 मृदा का वर्गीकरण
4.6 मृदा का संघटन
4.6.1 खनिज पदार्थ
4.6.2 कार्बनिक पदार्थ अथवा ह्यूमस
4.6.3 मृदा वायु
4.6.4 मृदा जल
4.7 मृदा कारक
4.8 पर्यावरणीय प्रदूषण
4.8.1 प्रदूषक
4.8.2 पर्यावरणीय प्रदूषण
4.8.3 प्रदूषण के प्रकार
4.9 वायु प्रदूषण
4.9.1 वायु प्रदूषकों के स्त्रोत
4.9.2 गैसीय वायु प्रदूषक
4.9.3 अम्ल वर्षा
4.9.4 फोटोकेमिकल उत्पाद
4.9.5 विविक्त (कणिकीय) पदार्थ
4.9.6 टॉक्सीकेन्ट्स
4.10 जल प्रदूषण
4.10.1 जल प्रदूषण के स्रोत
4.10.2 जल प्रदूषण के प्रभाव
4.10.3 जल प्रदूषण का नियंत्रण
4.11 मृदा प्रदूषण
4.11.1 मृदा प्रदूषण के स्रोत

4.11.2 मृदा प्रदूषण का प्रभाव
4.11.3 मृदा प्रदूषण का नियंत्रण
4.12 ध्वनि प्रदूषण
4.12.1 ध्वनि प्रदूषण के स्रोत
4.12.2 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव
4.12.3 ध्वनि प्रदूषण का नियन्त्रण
4.13 रेडियोधर्मी प्रदूषण
4.13.1 रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत
4.13.2 रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव
4.13.3 रेडियोधर्मी प्रदूषण का नियंत्रण
4.14 विकिरण प्रदूषण
4.14.1 विकिरण प्रदूषण के स्रोत
4.14.2 विकिरण प्रदूषण के प्रभाव
4.14.3 विकिरण प्रदूषण का नियंत्रण
4.15 पर्यावरणीय समस्याएँ
4.15.1 जलवायु परिवर्तन एवं विश्व का बढ़ता तापमान
4.15.2 जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव
4.15.3 ओजोन परत क्षरण
4.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.17 सारांश
4.18 मुख्य शब्दावली
4.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.20 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 भौगोलिक : भारत के पादप–भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश) 192–224

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 भारत के पादप–भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश)
5.3 मध्यप्रदेश के वानस्पतिक प्रकार
5.3.1 घास के मैदान
5.4 प्राकृतिक स्रोत (संसाधन): वर्गीकरण, संरक्षण एवं प्रबन्धन
5.4.1 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण
5.4.2 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबन्धन
5.4.3 मृदा अपरदन
5.4.4 मृदा अपरदन के साधन
5.4.5 मृदा अपरदन के परिणाम
5.4.6 भूमि–संरक्षण एवं प्रबन्धन
5.4.7 भूमि संरक्षण की विधियाँ
5.5 वन संसाधन एवं उनका संरक्षण
5.5.1 वनों के विनाश के कारण
5.5.2 वन संरक्षण के उपाय
5.6 जल संसाधन प्रबन्धन
5.7 आर्द्र–भूमि संसाधन प्रबन्धन
5.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.9 सारांश
5.10 मुख्य शब्दावली
5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.12 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

वनस्पति विज्ञान बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष की यह पाठ्यक्रमानुसार पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी एक अद्वितीय पुस्तक है।

प्रस्तुत पुस्तक में विषय सामग्री को स्पष्ट करने के लिए नवीनतम आंकड़ों, मानचित्र एवं आरेखों का युक्तिसंगत प्रयोग किया गया। पुस्तक को संक्षिप्त में रखते हुए वैज्ञानिक पहलुओं को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया हैं जिससे विद्यार्थी अधिकाधिक लाभान्वित होंगे। पाठ्यक्रम से सम्बन्धित दीर्घ उत्तरीय, लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश भी किया गया है। जिन्हें हल करने के बाद विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकते है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए समस्त पारिभाषिक शब्दावली को हिन्दी एवं अंग्रेजी मे दिया गया है। यह पुस्तक पूर्ण, स्पष्ट, सुरूचिपूर्ण एवं सुव्यवस्थित है।

इस पुस्तक में पाठ्यक्रम को पाँच इकाईयों में विभक्त किया गया है। इसकी प्रथम इकाई मे पारिस्थितिक तन्त्र से संबंधित विभिन्न पक्षों का समावेश किया है। इसके साथ ही जैव–भू–रासायनिक चक्रों की विस्तृत जानकारी एवं खनिजों का जीवधारियों तथा उनके सम्बन्धों को समझाया गया है।

द्वितीय इकाई में वातावरण के अनुसार अपने आप को समायोजित करने की क्षमता रखने वाले जलोद्भिद्, मरूद्भिद्, लवणोद्भिद् पौधे की जानकारी चित्रों सहित समझाई गयी है। इसी इकाई में तापमान तथा प्रकाश के लिए पादपों में होने वाली आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ बताई गयी है। इकाई के आखरी अध्याय मे पादप अनुक्रमण के विभिन्न प्रकारों को बताया गया है जिसके अंतर्गत उपस्थित पादप समुदाय में प्रभावशील परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जिनका समय के साथ उसी स्थान पर उनका विस्थापन दूसरे समुदाय द्वारा हो जाता है और यह प्रक्रम लगातार चलता रहता है स्थायी समुदाय के निर्माण होने तक।

तीसरी इकाई में जनसंख्या पारिस्थितिकी, समुदाय, जैवविविधता, जैव मंडल संचयन, अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान की नवीनतम जानकारी प्रस्तुत की गई है।

चौथी इकाई मे मृदा, जो एक प्राकृतिक संसाधन है, कि भौतिक एवं रासायनिक गुणों की जानकारी, उसका निर्माण, वर्गीकरण कारक विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस इकाई मे पर्यावरणीय प्रदूषण जैसे वायु, जल, मृदा, ध्वनि, नाभिकीय एवम् विकिकरण प्रदूषण, उनके कारक, प्रभाव व नियन्त्रण बताये गये हैं।

वर्तमान में मनुष्य प्रकृति का स्वामी बनने के प्रयास एवं आधुनिकता के नाम पर प्रकृति का शोषण अपनी बढ़ती हुयी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता जा रहा है।

वनों का विनाश करने पर प्रकृति मे असंतुलन का खतरा बढ़ता जा रहा है, इसलिए यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि मनुष्य अपनी आर्थिक उन्नति के

साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण भी करें जो इस पुस्तक मे प्रस्तुत इकाईयों के द्वारा सरल शब्दों मे समझाया गया है।

टिप्पणी

इन अध्यायों से प्राप्त जानकारी से प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण का महत्व समझेगा एवं उसके संरक्षण के प्रति जागरूक बन जायेगा।

प्रस्तुत पुस्तक को त्रुटिरहित बनाने के पूर्ण प्रयास किये गये हैं तथापि स्वाभविक रूप से कुछ गलतियों के छूटने की सम्भावना को नकारा नही जा सकता है। इस हेतु आपके सुझाव का स्वागत है। हम आभारी है उन सभी विज्ञाजनों व संदर्भ पुस्तकों के जिनकी सहायता व सहयोग से इस पुस्तक की रचना संभव हो सकी है।

डॉ. मीनल रहमान

जबलपुर, म.प्र.

इकाई 1 पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem)

टिप्पणी

संरचना (Structure)

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 पारिस्थितिक विज्ञान शब्द की उत्पत्ति का इतिहास
1.3 पारिस्थितिक विज्ञान का विषय क्षेत्र
1.4 पारिस्थितिकी का विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध
1.5 पारिस्थितिक विज्ञान के उप–प्रभाग
1.6 पारिस्थितिक तंत्र की संरचना
1.7 पारिस्थितिकीय तंत्र के घटक
1.8 पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार
1.9 प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र
  1.9.1 समुद्री पारिस्थितिक तंत्र
  1.9.2 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र
1.10 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह
1.11 खाद्य श्रृंखला
  1.11.1 खाद्य श्रृंखला के प्रकार
1.12 खाद्य–जाल
1.13 पोषक स्तर
1.14 पारिस्थितिक पिरामिड
1.15 जैव–भू–रासायनिक चक्र
  1.15.1 गैसीय चक्र
  1.15.2 खनिजों का चक्रीकरण या अवसादी चक्र
1.16 अपनी प्रगती जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.17 सारांश
1.18 मुख्य शब्दावली
1.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.20 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय (Introduction)

पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तु एवं पेड़–पौधे पाये जाते हैं। ये पृथ्वी पर जैविक घटक बनाते हैं, जो पृथ्वी पर उपस्थित वातावरण के साथ जटिल, परिवर्तनशील एवं अन्योन्याश्रय सम्बन्ध का निर्माण करते हैं। जीव एवं पर्यावरण (वातावरण) के बीच के सम्बन्धों के अध्ययन को पारिस्थितिकी (Ecology) कहते हैं।

टिप्पणी

1.1 उद्देश्य (Objectives)

यह अध्याय पारिस्थितिक विज्ञान का महत्व, उसकी उत्पत्ति एवं मनुष्य के जीवन में इसका उद्देश्य एवं दोनों के बीच के सम्बन्ध दर्शाता है। इस पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ, जल जो जैविक क्रियाओं में भाग लेकर वातावरण में चक्र के रूप में निरंतर विद्यमान रहते हैं, पाये जाते हैं। यह चक्र बहुत उपयोगी होते हैं और किसी भी तंत्र के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं एवं पारिस्थितिक विज्ञान की इनके अध्ययन से हमें विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

1.2 पारिस्थितिक विज्ञान शब्द की उत्पत्ति का इतिहास (History of Origin of the Term Ecology)

विभिन्न पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों ने पौधों के आपसी सम्बन्धों एवं उनके भौतिक वातावरण के अन्तर्सम्बन्धों का वर्णन किया है। सम्भवतः थियोफ्रास्टस **(Theophrastus 370-285 BC)** ने सर्वप्रथम जलीय पौधे तथा शुष्क एवं अम्लीय मृदा में उगने वाले पौधों के लक्षणों का अध्ययन किया था।

इकोलॉजी शब्द का उद्भव ग्रीक शब्द 'आइकॉस' *(Oikos)* से हुआ है। जिसका अर्थ घर या परिवेश होता है। लोगास *(Logos)* शब्द का अर्थ अध्ययन (to study) होता है। दोनों को मिलाकर (Oikologie) शब्द तैयार किया जिसे बाद में (Ecology) नाम दिया गया। इसलिए पारिस्थितिकी के अन्तर्गत पौधों एवं जन्तुओं का उनके साथ अंतर्सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है।

पारिस्थितिकी या इकोलॉजी (Ecology) शब्द का प्रचलन एक आधुनिक घटना है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार एच. राइटर **(H. Reiter)** 1868 और कुछ के अनुसार अर्नेस्ट हैकल **(Earnest Hackel, 1886)** ने सर्वप्रथम इकोलॉजी शब्द का प्रयोग किया था।

विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने–अपने तरीके से इकोलॉजी को परिभाषित किया है–

वार्मिंग (1895,1905) के अनुसार इकोलॉजी जीवों एवं उनके पर्यावरण के बीच सम्बन्धों का अध्ययन है।

फ्रेडरिक क्लीमिस्ट (Fredrick Clemist, 1916) के अनुसार– इकोलॉजी समुदाय का अध्ययन है।

टेलर (Taylor, 1936) के अनुसार– पारिस्थितिक विज्ञान सभी जीवों एवं उसके सम्पूर्ण पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन है।

ओडम (Odum, 1963) के अनुसार प्रकृति की संरचना (Structure) एवं कार्यों का अध्ययन पारिस्थितिक विज्ञान कहलाता है।

टिप्पणी

1.3 पारिस्थितिक विज्ञान का विषय क्षेत्र (Scope of Ecology)

पारिस्थितिकी के अध्ययन से हमें वातावरण का विस्तृत ज्ञान हो जाता है। इसकी सहायता से मनुष्य पृथ्वी पर उपस्थित प्राकृतिक स्त्रोतों को नष्ट होने से बचा सकता है। औद्योगिकीकरण एवं आधुनिकीकरण के पश्चात् उत्पन्न उपभोक्तावादी जीवन पद्धति, प्राकृतिक संसाधनों के अनुचित दोहन से उत्पन्न पर्यावरणीय असंतुलन एवं प्रदूषण की समस्या ने इस दिशा में अध्ययन एवं अनुसंधान के प्रति जनसाधारण, वैज्ञानिकों एवं सरकारों का ध्यान आकर्षित किया है। आज के युग में पर्यावरण जीवविज्ञान क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक, अर्थशास्त्र एवं राजनीति व इनसे सम्बन्धित कई नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। जैसे कई क्षेत्रों–कृषि, मृदा, संरक्षण, घास के मैदान, जंगल, जैव वैज्ञानिक सर्वेक्षण, मत्स्य विज्ञान, प्रदूषण के कारक एवं रोकथाम, वन्य जीव, जल आदि के संरक्षण में यह विज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

1.4 पारिस्थितिकी का विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध (Relation of Ecology with other Branches of Science)

पारिस्थितिकी का आज के समय में विभिन्न विज्ञानों जैसे कि पादप विज्ञान, जन्तु विज्ञान, सूक्ष्म जीव विज्ञान, आकारिकी, भौतिकी (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), गणित (Mathematics), सांख्यिकी (Statistics), आदि से सीधा सम्बन्ध है और यह भौतिक वातावरण को समझने में सहायक होता है।

पौधे एवं जन्तुओं के शरीर में भौतिक वातावरण के प्रभाव और अनुकूलताओं के अध्ययन के लिये कार्यिकी (Physiology) जैव–रसायन (Biochemistry) कोशिका विज्ञान (Cytology) एवं आनुवंशिकी (Genetics) का भी योगदान रहता है। इकोलॉजी एक अन्तर–अनुशासनिक (interdisciplinary) विज्ञान है।

1.5 पारिस्थितिक विज्ञान के उप–प्रभाग (Subdivisions of Ecology)

आधुनिक पारिस्थितिक वैज्ञानिकों ने पारिस्थितिक विज्ञान के निम्नलिखित उप–प्रभागों का वर्णन किया है।

टेक्सोनोमि के आधार पर–पौधों एवं जन्तुओं की पारिस्थितिकी के अध्ययन के आधार पर इन्हें दो प्रमुख उप–प्रभागों (Subdivisions) में विभाजित किया गया था। इन्हें पादप पारिस्थितिकी (Plant Ecology) एवं प्राणी पारिस्थितिकी (Animal Ecology) कहा गया। परन्तु पारिस्थितिकी अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि पौधे एवं जन्तु एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं अतः इन्हें जैव–पारिस्थितिकी (Bioecology) नाम दिया गया।

टिप्पणी

प्राणी एवं उसके अन्तर्सम्बन्धों के आधार पर इसे दो प्रकारों में विभाजित किया गया–

(1) **स्वयं पारिस्थितिकी या आटो–इकोलॉजी (Autoecology, Auto = Self, Oikos=House, Logos= To Study)**– किसी स्थान पर रहने वाले किसी एक प्राणी या किसी एक जाति एवं उसके पर्यावरण से अंतर्सम्बन्धों के अध्ययन को स्वयं पारिस्थितिकी या स्व–पारिस्थितिकी कहते हैं। इसे प्रजाति पारिस्थितिकी (Species ecology) भी कहते हैं।

(2) **संपारिस्थितिकी या सिन–इकोलॉजी (Synecology, Syn= Together, Oikos=House, Logos = To Study)**– किसी स्थान पर निवास करने वाले समस्त जीवों एवं उसके पर्यावरण से अन्तर्सम्बन्धों के अध्ययन को सिन–इकोलॉजी कहते हैं। सिन–इकोलॉजी को निम्नलिखित प्रभागों में बाँटा गया है–

(i) समष्टि या जनसंख्या पारिस्थितिकी (Population Ecology)– जब एक ही प्रजाति (species) के जीवों या उनके समूह की पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है, तो इसे समष्टि या जनसंख्या पारिस्थितिकी कहते हैं। इसके अंतर्गत इस प्रजाति तथा पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों या अन्तर्क्रियाओं (Interactions) का अध्ययन किया जाता है।

(ii) समुदाय पारिस्थितिकी (Community Ecology)– पौधों तथा जन्तुओं की विभिन्न प्रजातियों को समुदाय कहा जाता है। इस पारिस्थितिकी के अंतर्गत समुदाय के जैविक संघटकों (Biotic components) की आत्म निर्भरता की प्रकृति तथा पर्यावरण के साथ अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(iii) जीवोम पारिस्थितिकी (Biome Ecology)– इस पारिस्थितिकी में किसी क्षेत्र में उपस्थित विभिन्न पादप या जन्तु समुदायों तथा उनके पर्यावरण सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(iv) पारिस्थितिकी–तंत्र पारिस्थितिकी (Ecosystem Ecology)– इसके अंतर्गत किसी पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक (Biotic) एवं अजैविक (Abiotic) घटकों के पारस्परिक या अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

(3) **सिस्टम पारिस्थितिकी (System Ecology)**– इसके अंतर्गत गणितीय सूत्रों (Mathematical formulae) एवं मॉडलों (Models) के आधार पर पारिस्थितिकीय निष्कर्षों का निष्पादन किया जाता है।

(4) **व्यावहारिक पारिस्थितिकी (Applied Ecology)**– इस पारिस्थितिकी के अंतर्गत प्राकृतिक संसाधनों (Natural resources) के दोहन, उनके संरक्षण, कृषि वानिकी (Forestry), मृदा अपरदन (Soil erosion), वन्य जीवन संरक्षण (Wild life conservation) आदि व्यवहारिक विज्ञानों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

टिप्पणी

(5) पुराण पारिस्थितिकी (Palaeo Ecology)– इसके अंतर्गत जीवाश्मों (Fossils) अथवा ऐतिहासिक काल में उपस्थित जीवों के जीवन की विधि, उनके परस्पर सम्बन्धों, उनके वातावरण एवं उनकी मृत्यु के कारणों का अध्ययन किया जाता है।

(6) आवासीय पारिस्थितिकी (Habitat Ecology)– इसके अंतर्गत विभिन्न आवास स्थान एवं विभिन्न जीवों पर उसके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण–स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी (Fresh water ecology), समुद्री (Marine), घास भूमि पारिस्थितिकी (Grassland ecosystem) आदि।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. इकोलॉजी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किस वैज्ञानिक ने किया था?

   (अ) डार्विन (ब) हीकेल

   (स) रीटर (द) हिलेयर

2. वनस्पति विज्ञान की वह शाखा जिसमें पादपों पर्यावरण के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता हैं इसको क्या कहते हैं?

   (अ) फाइकोलाजी (ब) आकारिकी

   (स) पादप पारिस्थितिकी (द) कार्यिकी

3. ग्रीक भाषा में 'ओइकॉस' (Oikos) शब्द का क्या अर्थ?

   (अ) जन्तु (ब) पौधे

   (स) मृदा (द) घर

1.6 पारिस्थितिक तंत्र की संरचना (Structure of Ecosystem)

प्रकृति में उपस्थित सभी जैविक एवं अजैविक घटक एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं एवं सम्बन्धित रहते हैं। इन दोनों अवयवों के बीच का सम्बन्ध, जटिल, परिवर्तनशील एवं अन्योन्याश्रयी (interdependent) होता है। इन दोनों के मध्य पारस्परिक क्रियाएँ (Interaction) तथा पदार्थों का आदान–प्रदान होता रहता है। यह एक दूसरे पर आश्रित होते हैं तथा दोनों मिलकर एक ऐसे स्थायी तंत्र का निर्माण करते हैं जो एक समन्वित इकाई की तरह कार्य करती है। इस इकाई को पारितन्त्र या पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) कहते हैं। जीव एवं पर्यावरण के बीच के सम्बन्धों के अध्ययन को पारिस्थितिकी (Ecology) कहते हैं। पारिस्थितिक तंत्र, पारिस्थितिकी (Ecology) की मूल क्रियात्मक इकाई (Basic functional unit) होती है।

टिप्पणी

पारिस्थितिकी तंत्र (Eco system) का शाब्दिक अर्थ इको (Eco) शब्द का अर्थ आवास तथा सिस्टम शब्द का अर्थ तंत्र होता है।

पारिस्थितिक तंत्र (Eco system) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए.जी. टेन्सले (A.G.Tansley) ने सन् 1935 में किया था। इनके अनुसार ''पारिस्थितिक तंत्र वातावरण में उपस्थित सभी जैविक घटक (Biotic components) एवं अजैविक घटकों (Abiotic components) के पूर्ण समन्वय से बनी प्रणाली है।''

विभिन्न पारिस्थिति–विज्ञानियों ने पारिस्थितिक तंत्र को भिन्न–भिन्न नाम दिये जैसे कार्ल मोबियस (Karl Mobius, 1879) ने बायोसिनोसिस (Biocoenosis), फोबर्स **(Forbes 1887)**, ने माइक्रोकॉस्म **(Microcosm)** नाम दिया।

विभिन्न पारिस्थितिकी विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें से निम्नलिखित व्यापक रूप से प्रचलित है–

ओडम (Odum), प्रसिद्ध वैज्ञानिक के अनुसार यह एक मूल क्रियात्मक इकाई होती है, जिसके जीवित जीव तथा अजीवित पर्यावरण एक दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हैं तथा ये एक दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र का आकार (Size of Ecosystem)

आकार बड़ा अथवा छोटा हो सकता है, जो विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है, जैसे कि क्षेत्रफल, पौधों, जन्तु एवं सूक्ष्मजीवों के प्रकार। यह तालाब की जल की बूँद से लेकर विशाल समुद्र/महासागर के रूप में हो सकता है। उदाहरण जैसे की तालाब, नदी, महासागर, आदि।

1.7 पारिस्थितिकीय तंत्र के घटक (Components of Ecosystem)

यह दो प्रकार के घटकों से मिलकर बना है– अजैविक घटक और जैविक घटक।

(i) अजीवीय या अजैविक घटक (Abiotic Components)– अजैविक शब्द का अर्थ बिना जीवन के होता है। इसके अंतर्गत निर्जीव वातावरण आता है जो जैविक घटक का नियंत्रण एवं उसमें परिवर्तन करते रहते हैं।

यह दो भागों में विभाजित किया गया है–

(अ) भौतिक कारक (Physical Factors)– इसके अंतर्गत सूर्य प्रकाश, ताप, वर्षा आदि जलवायवीय कारक सम्मिलित किये जाते हैं।

(ब) रसायनिक कारक (Chemical Factors)– यह निम्न दो प्रकारों में विभाजित किया गया है–

(a) अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic Substances)– इसके अंतर्गत महापोषी तत्व (Macronuttrient elements), जैसे कार्बन (C), हाइड्रोजन (H), ऑक्सीजन (O), नाइट्रोजन (N), फास्फोरस (P) तथा सल्फर (S) तथा लेशपोषी तत्व (Micronutrient elements),

टिप्पणी

जैसे जिंक (Zn), मैंगनीज (Mg), कॉपर (Cu) आदि आते हैं। गैसों में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2), अमोनिया (NH_3) आदि होते हैं।

(b) कार्बनिक पदार्थ (Organic Substances)– इसके अंतर्गत मृत पौधे एवं जन्तुओं से उत्पन्न प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, शर्करा, लिपिड आदि आते हैं। ये पदार्थ जैविक तथा अजैविक घटकों के मध्य श्रृंखला का कार्य करते हैं।

(ii) जैविक (सजीव) घटक (Biotic Components)– सभी जीवधारी (living organism) को इसके अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। इन्हें प्रकृति का कार्यात्मक खण्ड माना जा सकता है। यह पोषण के प्रकार तथा ऊर्जा के स्रोत पर आधारित होते हैं।

पोषण सम्बन्धों की दृष्टि से जैवीय घटकों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है–

(अ) स्वपोषी या उत्पादक घटक (Autotrophic Components or Producers)– इस प्रकार के घटक अपना भोजन स्वयं बना सकते हैं। हरे पौधे मूल उत्पादक (Primary Producer) कहलाते हैं। जो क्लोरोफिल की उपस्थिति में सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त करके अकार्बनिक पदार्थों जैसे CO_2 तथा पानी द्वारा प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) के फलस्वरूप कार्बनिक (organic) भोज्य पदार्थों का निर्माण करते हैं। हरे पौधों के अलावा कुछ बैक्टीरिया भी स्वपोषी जीवों में आते हैं।

(ब) परपोषित या परपोषी घटक (Heterotrophic Components)– इसके अंतर्गत वे सभी जीव आते हैं, जो भोजन के लिए पौधों एवं अन्य जीवों पर निर्भर रहते हैं। इसमें जटिल पदार्थों का उपयोग, पुनर्विन्यास (rearrange) एवं अपघटन (decompose) किया जाता है।

यह निम्नलिखित रूप से पाये जाते हैं–

(a) महा उपभोक्ता (Macro Consumers)

(अ) प्राथमिक उपभोक्ता– यह उपभोक्ता अपेक्षाकृत आकार में बड़े होते हैं और इसमे वह जीव आते हैं, जो वनस्पतियों को खाते हैं, यह शाकाहारी होते हैं, जैसे की गाय, भेड़, बकरी, मनुष्य आदि। इन्हें प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) या प्रथम श्रेणी का उपभोक्ता (Consumer of first order) C_1 भी कहते हैं।

टिप्पणी

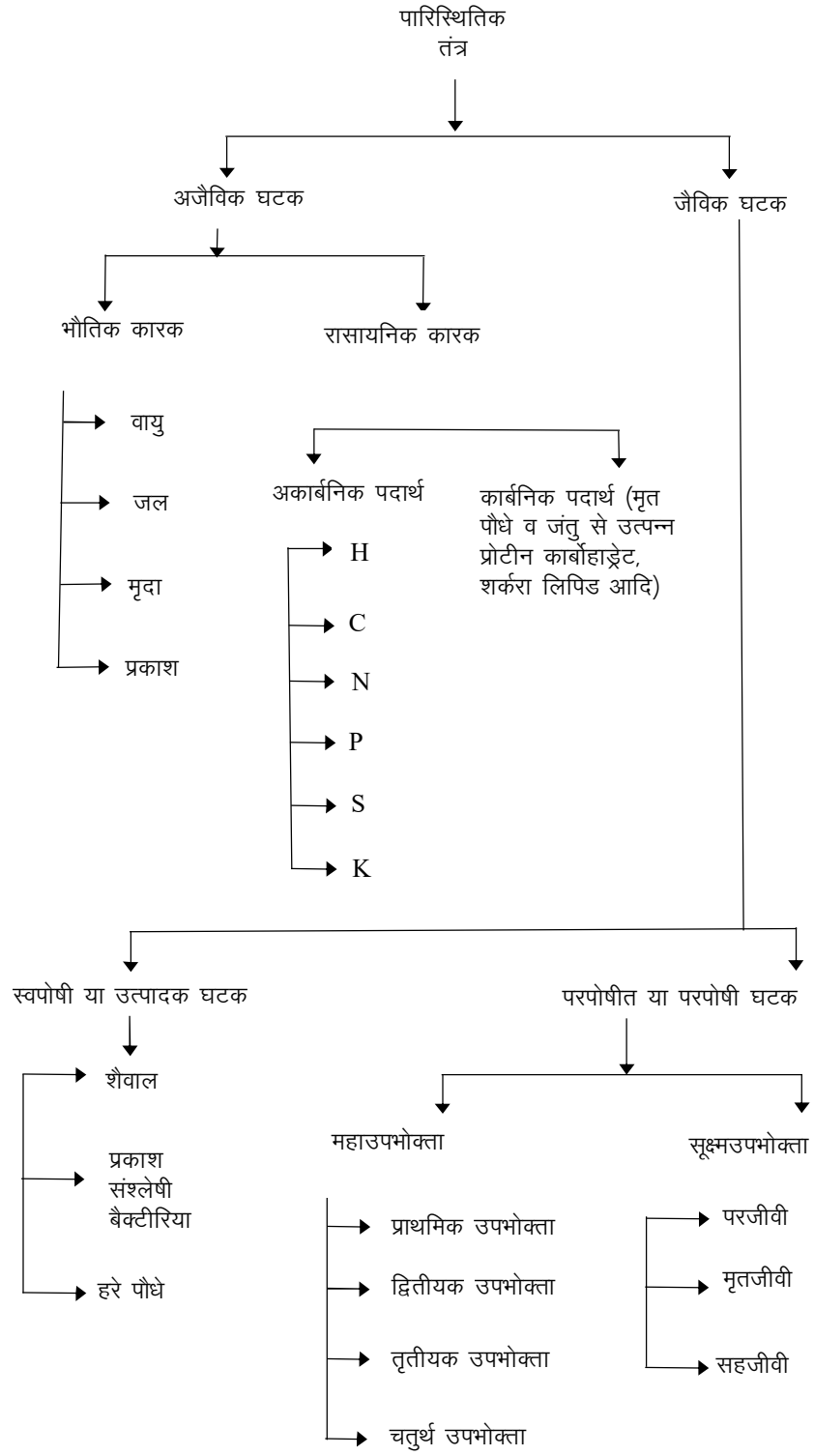

पारिस्थितीक तंत्र के विभिन्न घटक

(ब) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)– इसमें वह जीव आते हैं, जो शाकाहारी जन्तुओं (प्राथमिक उपभोक्ताओं) को अपने भोजन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। यह माँसाहारी या

टिप्पणी

सर्वभक्षी होते हैं, जैसे कि भेड़िया, लोमड़ी आदि। इन्हें द्वितीय श्रेणी का उपभोक्ता या C_2 भी कहते हैं।

(स) **तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)**– इसके अंतर्गत वे जन्तु आते हैं, जो द्वितीय वर्ग के उपभोक्ताओं को खा जाते हैं। इस वर्ग को सर्वश्रेष्ठ उपभोक्ता (Top consumers) भी कहा जाता है। इन्हें तृतीय श्रेणी का उपभोक्ता (Consumer of third order) या C_3 भी कहते हैं। इसके अंतर्गत शेर, बाघ, गिद्ध इत्यादि आते हैं। ये चतुर्थ पोषण संस्तर T_4 (Fourth trophic level) बनाते हैं।

(b) सूक्ष्म उपभोक्ता (Micro Consumers) अपघटक (Decomposers)– इसमें जीवाणु, कवक आदि सूक्ष्म उपभोक्ता आते हैं। यह मृत शरीर को अपघटित कर देते हैं और बनने वाले कार्बनिक पदार्थ पुनः सरल अकार्बनिक पदार्थों में बदल जाते हैं। जिन्हें हरे पौधे अवशोषित करके सूर्य के प्रकाश में भोजन के रूप में परिवर्तित कर देते हैं।

आहार ग्रहण में भिन्नता होने के कारण यह तीन प्रकार के होते हैं–

1. **परजीवी (Parasites)**– यह अन्य जीवंत जीवों पर भोजन के लिए निर्भर होते हैं और कई रोग भी उत्पन्न करते हैं।
2. **मृतजीवी (Saprophyte)**– यह मृत पौधों एवं जन्तुओं से अपना भोजन प्राप्त करते हैं।
3. **सहजीवी (Symbiotic)**– यह दूसरे जीव के साथ मित्र की तरह रहकर बिना कोई नुकसान पहुँचाये रहते हैं, जिससे दोनों जीवों को फायदा होता है। (चित्र क्र. 1.1)

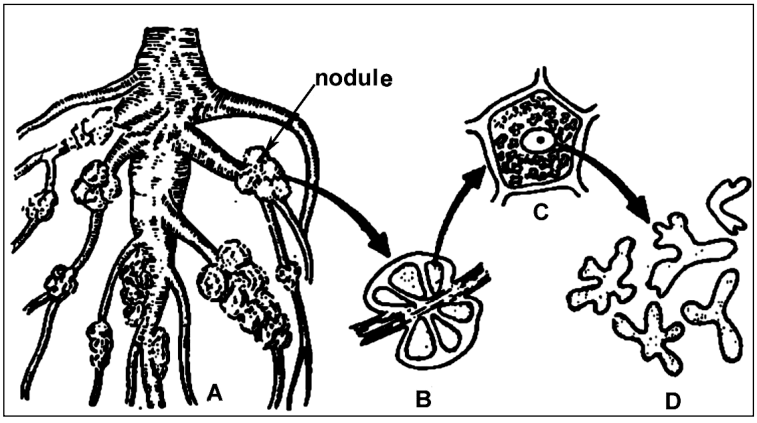

चित्र क्र. 1.1: सहजीवी पोषण–रूट नोडयूल में लेग्युमिनस जिवाणु

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

4. वायुमण्डल में सन्तुलन किसके द्वारा बनता है?

   (अ) उत्पादक एवं उपभोक्ता

   (ब) उत्पादक, उपभोक्ता और अपघटक

   (स) अपघटक

   (द) उत्पादक

5. अपघटक कौन होते हैं?

   (अ) चुहे (ब) भेड

   (स) जीवाणु एवं कवक (द) शैवाल

6. पारिस्थितिक तंत्र में हरे पौधे क्या होते हैं–

   (अ) प्राथमिक उपभोक्ता (ब) द्वितीयक उपभोक्ता

   (स) प्राथमिक उत्पादक (द) अपघटक

7. पारिस्थितिक तंत्र मे मनुष्य क्या होते हैं?

   (अ) शाकाहारी (ब) मांसाहारी

   (स) सर्वभक्षी (द) उत्पादक

1.8 पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार (Types of Ecosystem)

पृथ्वी जीवमण्डल (Biosphere) के रूप में एक विशाल पारिस्थितिक तंत्र की तरह कार्य करती है। उत्पत्ति के आधार पर पारिस्थितिक तंत्र दो वर्गों में विभाजित किया गया है–

(अ) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र (Natural Ecosystem)

(ब) कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र (Artificial Ecosystem)

(अ) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र (Natural Ecosystem)

इस प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक होते हैं तथा इनमें, मानव हस्तक्षेप नहीं होता है। वातावरण में भिन्नता के आधार पर इसमें निम्नलिखित तंत्र सम्मिलित किये गये हैं–

(a) जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Aquatic Ecosystem)– ये पारिस्थितिक तंत्र जल में विकसित होते हैं, इन्हें दो समूहों में विभाजित किया गया है।

टिप्पणी

1. **ताजा स्वच्छ जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Fresh Water Ecosystem)**– इसके अंतर्गत बहते हुए जल के पारिस्थितिक तंत्र जैसे नदी, झरने एवं रुके हुए जल जैसे की तालाब, झील के पारिस्थितिक तंत्र आते हैं। (चित्र क्र. 1.2)

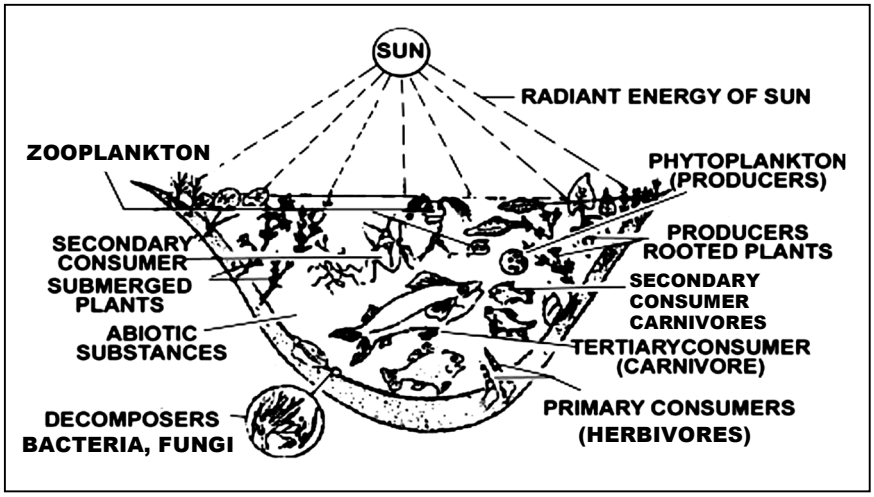

चित्र क्र. 1.2: तलाब एक जलीय पारिस्थितिक तंत्र

2. **खारे या समुद्री जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Marine Water Ecosystem)**– इसके अंतर्गत वह पारिस्थितिक तंत्र आते हैं जो लवणीय जल (Salt water) या समुद्र में विकसित होते हैं, उदाहरण– समुद्र, महासागर, प्रवाल, मुहाने आदि।

(b) स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र (Terrestrial Ecosystem)– वह पारिस्थितिक तंत्र जो स्थल पर विकसित होते हैं, उन्हें स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं, उदाहरण– वन, घास के मैदान, मरुस्थल आदि। (चित्र क्र. 1.3)

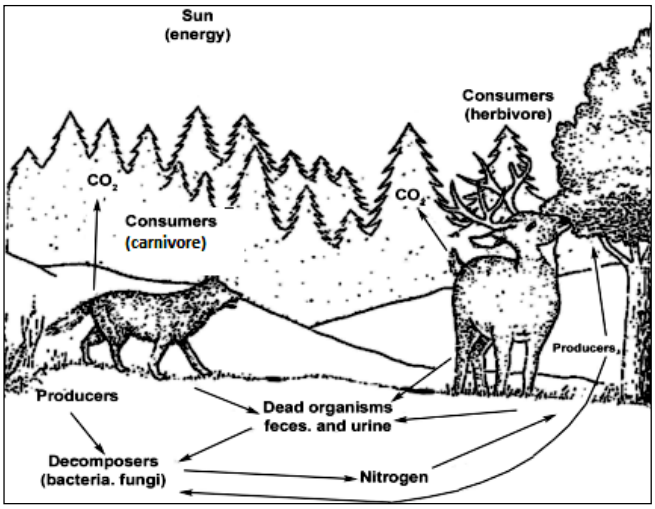

चित्र क्र. 1.3: स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र

टिप्पणी

(ब) कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र (Artificial Ecosystem)

मानव द्वारा कृत्रिम रूप से व्यवस्थित किए गये तंत्र को कृत्रिम या अप्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं, जैसे मक्का, गन्ना, चावल के खेत, बांध एवं तालाब का निर्माण भी कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र में आते हैं।

1.9 प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र (Major Ecosystems)

1.9.1 समुद्री पारिस्थितिक तंत्र (Marine Ecosystem)

विश्व के मुख्य महासागर अटलांटिक, प्रशांत, हिन्द, आर्कटिक एवं अंटार्क्टिका पृथ्वी के धरातल का लगभग दो तिहाई भाग घेरते हैं। प्रत्येक महासागर वास्तव में विशाल एवं स्थायी पारिस्थितिक तंत्र का उदाहरण है।

महासागरीय पारिस्थितिक तंत्र में जैविक एवं अजैविक घटक पाये जाते हैं–

(i) अजैविक घटक (Abiotic Components)– समुद्री जल की लवणीयता लगभग 3.5 प्रतिशत होती है। लवणों में सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराईड, सल्फेट्स, बाइकार्बोनेट्स, कार्बोनेट्स एवं ब्रोमाइडस प्रमुख रूप से होते हैं। सर्वाधिक मात्रा सोडियम क्लोराइड की होती है। घुलित पोषक तत्वों की मात्रा बहुत कम पाई जाती है।

(ii) जैविक घटक (Biotic Components)

1. **उत्पादक (Producers)**– समुद्र में पाये जाने वाले स्वपोषी जीवों में पादप प्लवक (Phytoplanktons) डाएटम्स, समुद्री खरपतवार जैसे की सरगास्सम, लैमीनेरीयम आदि।
2. **उपभोक्ता (Consumers)**– ये सभी भिन्न–भिन्न स्तर के उपभोक्ता होते हैं, जो अपने पोषण के लिए प्राथमिक उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं।
   - **(अ) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)**– यह शाकाहारी होते हैं और उत्पादक को ग्रहण करते हैं, जैसे–क्रस्टेशियन्स, मौलस्क आदि।
   - **(ब) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)**– यह माँसाहारी होते हैं और प्राथमिक उपभोक्ताओं को ग्रहण करते हैं, उदाहरण–हेरिंग (Herring), शाड (Shad), मैकरेल (Mackrel) जैसी मछलियाँ।
   - **(स) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)**– यह द्वितीयक उपभोक्ताओं को ग्रहण करते हैं, उदाहरण कॉड, शॉर्क, हैडॉक आदि।
3. **अपघटनकर्ता (Decomposers)**– कुछ जीवाणु, कवक आदि अपघटनकर्ता के रूप में पाये जाते हैं।

1.9.2 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र (Terrestrial Ecosystem)

टिप्पणी

(A) घास के मैदान का पारिस्थितिक तंत्र (Grassland Ecosystem)

पृथ्वी की सतह में लगभग 19% घास के मैदान पाये जाते हैं।

(i) अजैविक घटक (Abiotic Components)– इन क्षेत्रों में 10–40 इंच वर्षा पायी जाती है। मिट्टी में पोषक तत्व कम होते हैं। नाइट्रेस, फॉस्फेट्स, सल्फेट्स आदि पाये जाते हैं। सूर्य प्रकाश, प्रमुख भौतिक घटक होता हैं।

(ii) जैविक घटक (Biotic Components)

1. **उत्पादक (Producers)**– मुख्य उत्पादक के रूप में डाइकैन्थियम *(Dicanthium)*, सायनोडॉन *(Cynodon)*, सेनहरस *(Cenchrus)*, एग्रोपायरोन *(Agropyron)*, डेस्मोडियम *(Desmodium)* आदि घासों की विभिन्न प्रजातियाँ पायी जाती हैं। झाड़ियों में प्राईमुयला *(Primula)* आदि पायी जाती हैं। (चित्र क्र. 1.4)
2. **उपभोक्ता (Consumers)**

   (अ) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)– इनमें घास चरने वाले जन्तु जैसे हिरन, खरगोश, भेड़, गाय, चूहे, टिड्डे आदि होते हैं।

   (ब) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)– इसके अंतर्गत माँसाहारी जन्तु आते हैं, जो शाकाहारी जन्तुओं को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, जैसे मेंढक, साँप, लोमड़ी आदि।

   (स) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)– अक्सर बाज घास के मैदान में पाये जाते हैं, जो द्वितीयक उपभोक्ताओं जैसे की मेंढ़क, साँप को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं।
3. **अपघटनकर्ता (Decomposers)**– कवक जैसे की म्यूकर, एसपरजिलस आदि जीवाणु, एक्टिनोमाइसिटीज अपघटनकर्ता के रूप में मिट्टी में पाये जाते हैं, जो सड़े–गले कार्बनिक पदार्थों को अपघटित करके साधारण पदार्थों में बदल देते हैं, जिनका उपयोग उत्पादक कर लेते हैं।

(B) वन पारिस्थितिक तंत्र (Forest Ecosystem)

यह एक विकसित तंत्र होता है जो पृथ्वी के कुल 40% भाग में फैला हुआ है। एक वन के पारिस्थिति तंत्र में पाये जाने वाले प्रमुख घटक निम्नलिखित होते हैं–

1. **अजैविक घटक (Abiotic Components)**– इसके अंतर्गत मृदा, कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं। कार्बनिक पदार्थों में कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन आदि आते हैं। अकार्बनिक में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि।

टिप्पणी

2. जैविक घटक (Biotic Components)–

(अ) उत्पादक (Producers)– इसके अंतर्गत हरे भरे पेड़ आते हैं, जैसे की साल, पलाश, आदि। झाड़ियों में बाँस, बेंत, घास आदि भी पाये जाते हैं।

(ब) उपभोक्ता (Consumers)

1. **प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)**– ये शाकाहारी होते हैं एवं अपने भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं, उदाहरण – गाय, बकरी, हिरन आदि।

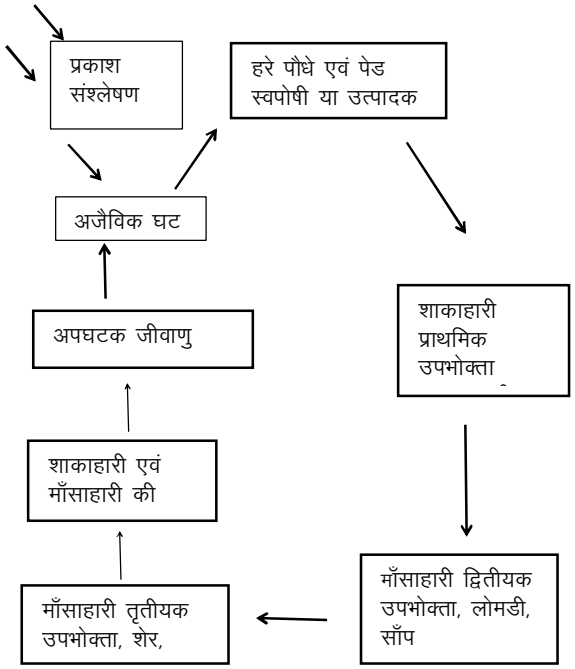

चित्र क्र. 1.4: स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का रेखाचित्र

2. **द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)**– ये माँसाहारी होते हैं और प्राथमिक उपभोक्ताओं पर निर्भर रहते हैं, उदाहरण – लोमड़ी, साँप आदि।
3. **तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)**– ये सर्वोच्च मांसाहारी होते हैं जो द्वितीयक उपभोक्ताओं पर निर्भर रहते हैं उदाहरण – शेर, चीता आदि।

(स) अपघटक (Decomposers)– इसमें सूक्ष्मजीव आते हैं जो मृत पौधों एवं जन्तुओं को अपघटित करते हैं। उदाहरण–जीवाणु, कवक आदि।

1.10 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecosystem)

टिप्पणी

किसी भी कार्य को करने की क्षमता को ऊर्जा (Energy) कहा जाता है। पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों (Biotic components) को अपनी जैविक क्रियाओं को संचालित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो इन्हें सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होती है। प्राथमिक उत्पादक हरे पौधे सूर्य से ऊर्जा प्राप्त कर उसे प्रकाश संश्लेषण की विधि के द्वारा खाद्य रूप में बदलते हैं। इसमें कार्बन डाईऑक्साइड तथा जल का उपयोग भी किया जाता है। उपभोक्ता इन उत्पादकों को खाकर भोजन ऊर्जा को ग्रहण कर लेते हैं। यह ऊर्जा एक पोषक स्तर (Trophic level) से दूसरे पोषक स्तर में स्थानांतरित होती रहती है, जिसे ऊर्जा का स्थानान्तरण (Flow of energy) कहते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह एक दिशा में होता है। जो ऊर्जा एक बार पारिस्थितिक तंत्र से बाहर चली जाती है, वह पुनः उपयोग में नहीं आती है। तंत्र में ऊर्जा का चक्रीकरण नहीं होता। इसका प्रभाव सदैव एकदिशीय (unidirectional) होता है। और इसका विसरण ऊष्मागतिकी (thermodyamics) के नियमों के अनुसार होता है।

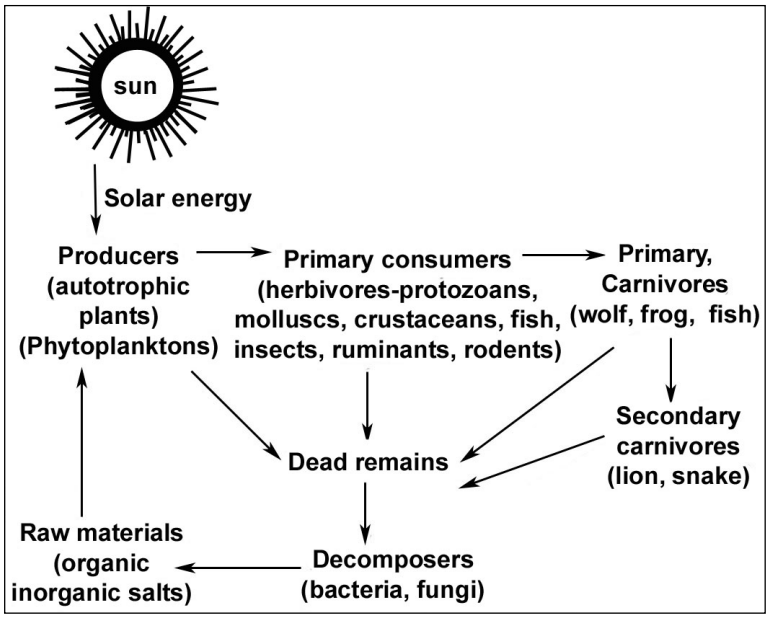

चित्र क्र. 1.5: पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

ऊर्जा का प्रवाह निम्नलिखित चरणों में होता है।

ऊष्मागतिकी का प्रथम नियम (First Law of Thermodynamics)

टिप्पणी

हरे पौधों के द्वारा सूर्य प्रकाश की ऊर्जा को भोजन ऊर्जा (food energy) या रासायनिक ऊर्जा के रूप में संचित किया जाता है। इसे ऊर्जा का संग्रहण (trapping of solar energy) कहते हैं।

यह ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम को दर्शाता है, जिसके अनुसार ऊर्जा का रूपांतरण एक से दूसरे रूप में किया जा सकता है। इसके अनुसार ऊर्जा की कोई मात्रा अगर लुप्त होती है। तो उसके बराबर की दूसरे प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है।

ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम (Second Law of Thermodynamics)

हरे पौधे क्लोरोफिल, लवक की सहायता से सूर्य के प्रकाश ऊर्जा का केवल एक या दो से तीन प्रतिशत भाग ही संग्रहित करके उसे प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोज्य पदार्थों में संचित कर लेते हैं। शेष ऊर्जा पृथ्वी के वातावरण में अवशोषित हो जाती है।

ऊष्मा गतिकी का दूसरा नियम इस बात की पुष्टि करता है कि ऊर्जा के रूपांतरण की क्रिया में कुछ ऊर्जा परिवर्तित रूप में तंत्र से परिक्षेपित अवस्था (dispersed form) में विसरित होती है। (चित्र क्र. 1.5)

पारिस्थितिक तंत्र में सूर्य से ऊर्जा प्राप्त कर उत्पादक प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थो का निर्माण करते हैं। इनकी कुल मात्रा को सकल प्राथमिक उत्पादकता (Gross primary productivity) कहते हैं।

इनका उपयोग भी सर्वप्रथम उत्पादकों द्वारा ही किया जाता है (90%) जैसे कि श्वसन क्रिया आदि। ऊर्जा के लिए आक्सीकृत किये गये कार्बनिक पदार्थ के अतिरिक्त जितना पदार्थ शेष रह जाता है, उसे संचित कर लिया जाता है। इस संचित पदार्थ (10%) या उसके तुल्य ऊर्जा की मात्रा को शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता (net primary productivity) कहते हैं।

हरे पौधों के 90% में से शेष 10% संचित भोज्य पदार्थ प्राथमिक उपभोक्ताओं के द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। यही क्रम प्राथमिक उपभोक्ता में भी होता है, वह प्राप्त ऊर्जा का 90% भाग खर्च कर देते हैं और 10 प्रतिशत भाग पारिस्थितिक तंत्र की अगली श्रेणी को स्थानांतरित कर देते हैं। पारिस्थितिक तंत्र में यही क्रम चलता रहता है और अन्त में अपघटक, मृतजीवों के शरीर में बची शेष ऊर्जा के कुछ भाग को बाहरी वातावरण में मुक्त कर देते हैं और कुछ का स्वयं उपयोग कर लेते हैं।

इसे लिण्डमैन **(Lindeman, 1942)** ने सर्वप्रथम समझाया। इनके अनुसार प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा स्थानान्तरण के समय उस पोषण स्तर में केवल 10% ऊर्जा का ही संचय हो पाता है। इसे दस प्रतिशत का नियम **(Ten percent Law)** कहते हैं।

अगर जीव अवशेष अपघटन से किसी कारणवश बच जाते हैं तो उनके अन्दर की संचित ऊर्जा जीवाश्म, कोयला, पेट्रोल के रूप में संचित रहती है। जिसका उपयोग मनुष्य ईंधन एवं विभिन्न कार्यों के रूप में करता है।

टिप्पणी

1.11 खाद्य श्रृंखला (Food Chain)

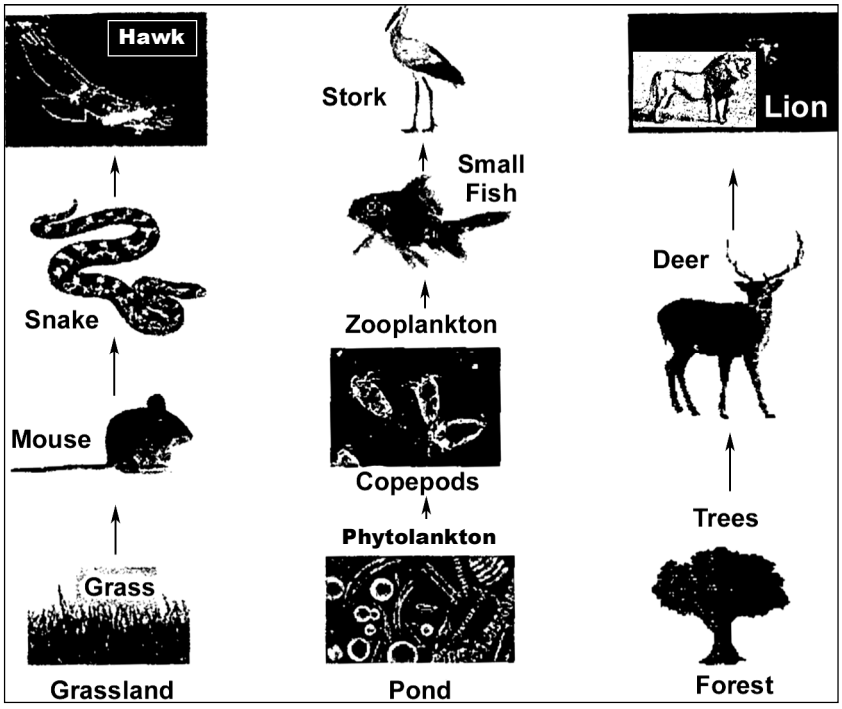

चित्र क्र. 1.6: विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य श्रृंखला

पारिस्थितिक तंत्र में भोज्य पदार्थों के स्थानांतरण (Translocation) के लिए उत्पादकों से उपभोक्ताओं की ओर एक श्रृंखला बनती है, जिसे खाद्य श्रृंखला (food chain) कहते हैं। (चित्र क्र. 1.6)

पारिस्थितिक तंत्र में आहार श्रृंखला जितनी लम्बी होती है, उतनी अधिक ऊर्जा का रूपांतरण एक पोषण सतर से दूसरे पोषण स्तर तक होता है। आहार श्रृंखला जितनी छोटी होगी, उतनी अधिक उपभोक्ताओं को प्राप्त होगी। आहार श्रृंखला का प्रत्येक स्तर ऊर्जा स्तर कहलाता है। आहार श्रृंखलाएँ मिलकर भोज्य पदार्थों के पिरामिड बनाती है। यह श्रृंखला सरल से लेकर जटिल होती है। जटिल श्रृंखला **आहार जाल (food web)** बनाती है।

खाद्य श्रृंखला के उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के विभिन्न स्तरों को पोषक स्तर **(Trophic levels)** कहते हैं जबकि पारिस्थितिक तंत्र की पोषक संरचना को पोषक–रचना **(Trophic Structure)** कहते हैं। एक विकसित पारिस्थितिक तंत्र में निम्नलिखित पोषक स्तर या ऊर्जा स्तर पाये जाते हैं–

1. मूल उत्पादक
2. प्राथमिक उपभोक्ता

3. द्वितीयक उपभोक्ता
4. तृतीयक उपभोक्ता

टिप्पणी

1.11.1 खाद्य श्रृंखला के प्रकार (Types of Food Chain)

(अ) परभक्षी या चारण खाद्य श्रृंखला (Predator or Grazing Food Chain)

यह श्रृंखला हरे पौधे चरने वाले शाकाहारी जन्तुओं से प्रारंभ होकर मांसाहारी प्राणियों पर समाप्त होती है। यह श्रृंखला सूर्य ऊर्जा पर निर्भर करती है। प्रकृति में पायी जाने वाली अधिकांश खाद्य श्रृंखलाएँ इसी श्रेणी में आती है। (चित्र क्र. 1.7)

उदाहरण → घास के मैदान

घास→टिड्डे→मेंढक→सांप→बाज

घास→चूहा→सांप→बाज

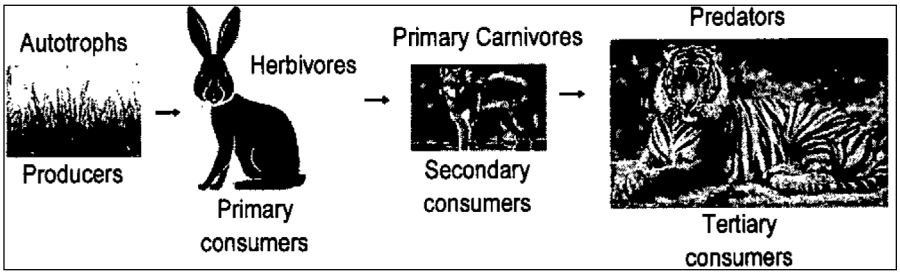

चित्र क्र. 1.7: घास के मैदान या चारण खाद्य श्रृंखला

(ब) परजीवी खाद्य श्रृंखला (Parasitic Food Chain)– यह खाद्य श्रृंखला बड़े जीवों से प्रारंभ होकर छोटे जीवों तक जाती है।

(स) मृतोपजीवी खाद्य श्रृंखला (Saprophytic or Detritus Food Chain)– पौधे एवं प्राणियों के मृत शरीर से प्रारंभ होकर सूक्ष्म जीवों (Micro organism) तक जाती है। इसमें जीवाणु (Bacteria) कवक (Fungi) आदि महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। (चित्र क्र. 1.8)

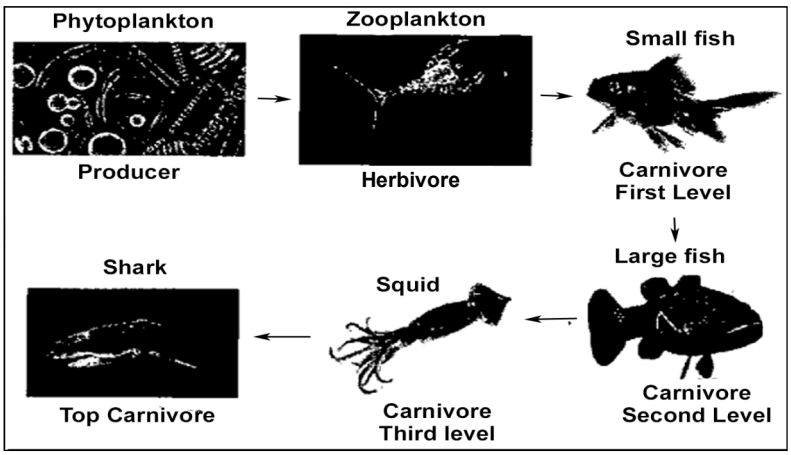

चित्र क्र. 1.8: तालाब की खाद्य श्रृंखला

1.12 खाद्य–जाल (Food Web)

खाद्य श्रृंखला के अनुसार प्रत्येक पोषक रीति, दूसरी पोषण रीति (Trophic level) से सीधा सम्बन्ध रखती है। जब पारिस्थितिक तंत्र में आहार पोषण संबंध जटिल हो जाता है तो खाद्य श्रृंखला रैखिक नहीं रह जाती है। खाद्य जाल एक सम्पूर्ण समूह के सभी जीवित प्राणियों का परस्पर संबंध दर्शाता है। प्राकृतिक स्थितियों में सामान्यतः केवल एक ही खाद्य श्रृंखला का कार्यरत रहना असम्भव होता है, इसलिए कई खाद्य श्रृंखलाएँ, एक दूसरे के साथ परस्पर सम्बन्ध दिखाती है और अन्तर्ग्रथित नमूना (Interlocking pattern) बना लेती है। इस प्रकार की अनेक खाद्य श्रृंखलाओं के एक समय कार्यरत रहने के कारण खाद्य जाल बन जाता है।

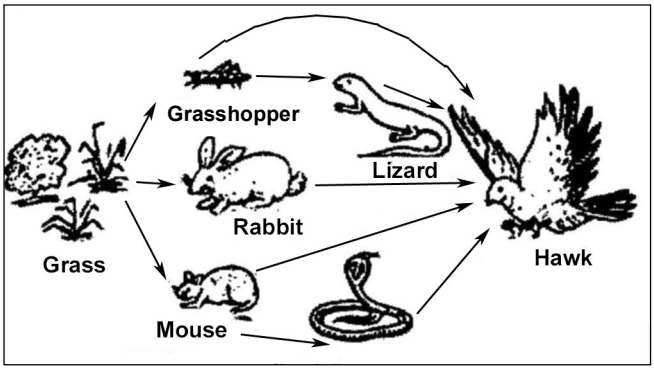

चित्र क्र. 1.9: घास के मैदान का खाद्य जाल

उदाहरण– एक घास के मैदान के पारिस्थितिक तंत्र के खाद्य जाल में पाँच श्रृंखलाएँ पायी जाती हैं। (चित्र क्र. 1.9)

1. घास →टिड्डे →बाज
2. घास →टिड्डे →छिपकली →बाज
3. घास →खरगोश →बाज

4. घास →चूहे →बाज
5. घास →चूहे →साँप→बाज

टिप्पणी

यह पाँच खाद्य श्रृंखलाएँ अलग न होकर एक दूसरे से अन्तर्ग्रथित होकर खाद्य जाल का निर्माण करती हैं।

तालाब में पाया जाने वाला खाद्य जाल–

1. पादप→प्लवकजन्तु→प्लवक मछलियाँ
2. पादप→लवक→कीड़े
3. पादप प्लवक→छोटी मछलियाँ
4. पादप प्लवक→छोटी मछलियाँ→बड़ी मछलियाँ
5. जन्तु प्लवक→छोटी मछलियाँ→बड़ी मछलियाँ

1.13 पोषक स्तर (Trophic Level)

प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादक (Producers) एवं उपभोक्ताओं (Consumers) के विन्यास (arrangement) से एक संरचना निर्मित होती है, जिसे पोषण संरचना (Trophic Structure) कहते हैं। प्रत्येक भोजन श्रृंखला में उपस्थित भोजन स्तरों को ही पोषण स्तर (Trophic structure) या उर्जा स्तर (Energy Level) कहते हैं। प्रथम भोजन या पोषी स्तर (First trophic level or T_1) इसके अंतर्गत पौधे जो उत्पादक का कार्य करते हैं आते हैं। द्वितीय पोषी स्तर (Second trophic level or T_2) - इसके अंतर्गत शाकाहारी जीव आते हैं जो हरे पौधों को खाते है। इन्हें प्राथमिक उपभोक्ता भी कहा जाता हैं। तृतीय पोषी स्तर (Third trophic level or T_3)– इसके अंतर्गत द्वितीयक उपभोक्ताओं को भोजन के रूप में ग्रहण करने वाले उच्चतम माँसाहारी (Top carnivores) जन्तु अथवा सर्वाहारी (Omnivorous) जन्तु आते है। पंचम पोषी स्तर (Fifth tropic level or T_5)- सभी जीवों की मृत्यु के पश्चात् उनके मृत शरीर का उपयोग अपघटक जीव (Decomposer) करते हैं तथा वे पाँचवे पोषण स्तर का निर्माण करते हैं।

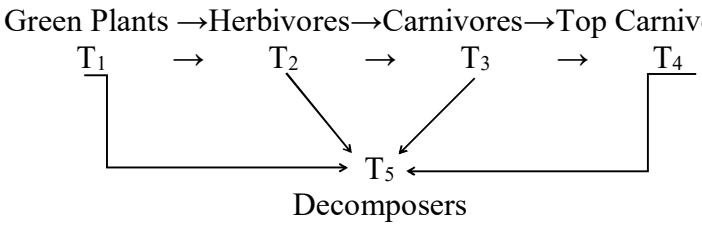

1.14 पारिस्थितिक पिरामिड (Ecological Pyramid)

टिप्पणी

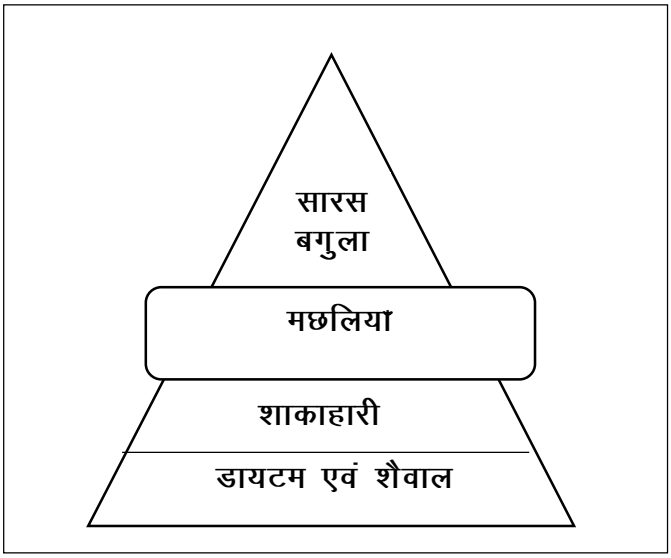

चित्र क्र. 1.10: तालाब का पारिस्थितिक पिरामिड

पारिस्थितिक तंत्र में उपस्थित विभिन्न पोषक स्तर के जीवों की संख्या, जीव भार तथा इनमें संचित ऊर्जा की मात्राओं के अनुपात को चित्र के द्वारा प्रदर्शित करने पर जो आकृति प्राप्त होती है, जिसे पारिस्थितिक पिरामिड या शंकु कहते हैं। पारिस्थितिक पिरामिड का नामकरण उसके निर्माण के आधारित कारक के आधार पर किया जाता है। पारिस्थितिक पिरामिड में विभिन्न पोषण स्तरों को उत्पादक, शाकाहारी, मांसाहारी जन्तुओं के आधार पर दर्शाया जाता है। पिरामिड का आधार उत्पादक द्वारा उसके ऊपर प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता, फिर द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता एवं शीर्ष का निर्माण सर्वोच्च मांसाहारी प्राणियों द्वारा होता है। (चित्र क्र. 1.10)

पारिस्थितिक पिरामिड के प्रकार –

1. जीव संख्याओं का पिरामिड (Pyramid of Number)
2. जीवभार का पिरामिड (Pyramid of Biomass)
3. ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

टिप्पणी

जीव संख्या का पिरामिड (Pyramid of Number)

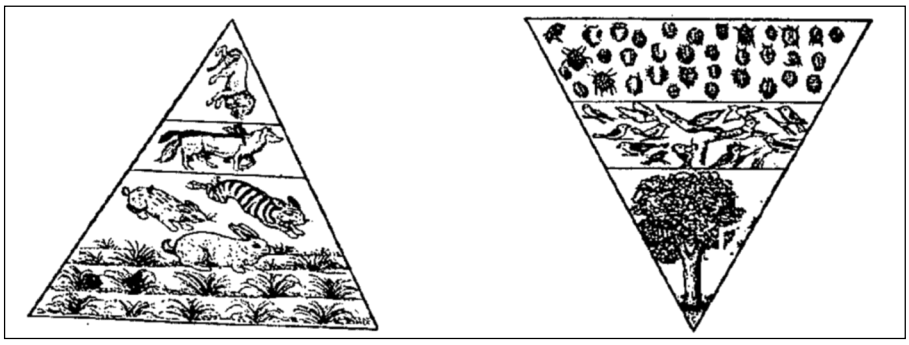

चित्र क्र. 1.11: (a) खेती की फील्ड में जीव संख्या का सीधा पिरामिड (b) जीव संख्या का उल्टा पिरामिड

इसमें विभिन्न पोषण स्तरों में उत्पादकों, शाकाहारी प्राणियों तथा मांसाहारी प्राणियों के परस्पर संबंध को संख्या के आधार पर निरूपित किया जाता है। चार्ल्स एल्टन (Charles Elton, 1927) के अनुसार ऐसे पिरामिड के आधार पर उत्पादकों की संख्या सबसे अधिक, प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं से कम तथा सर्वोच्च श्रेणी के उपभोक्ता जीवों की संख्या सबसे कम होती है। यदि उत्तरोत्तर पोषण स्तरों के जीवों की संख्या को पिरामिड द्वारा प्रदर्शित करें तब सीधा पिरामिड (upright pyramid) बनता है। (चित्र क्र. 1.11 a)

उदाहरण– घास के मैदान, खेत एवं तालाब के पारिस्थितिक तंत्र में जीव संख्या का पिरामिड हमेशा सीधा रहता है।

वन में उपस्थित जीवों की संख्या का पारिस्थितिक पिरामिड सदैव उल्टा (Inverted) बनता है। इसमें वृक्ष अकेला उत्पादक है, जिसका जीव भार (biomass) एवं आकार सबसे अधिक किन्तु संख्या कम होती है। इस पर आश्रित उपभोक्ताओं का आकार प्रत्येक पोषी स्तर पर घटता जाता है, किन्तु संख्या में वृद्धि होती जाती है। वृक्ष के फलों एवं फूलों को खाने वाले पक्षियों (प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता) की संख्या अधिक होती है। इसी प्रकार प्रत्येक स्तर पर परजीवी रूप में पाये जाने वाले कीटों (द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता) की संख्या पक्षियों से भी अधिक होती है, किन्तु जीव भार घट जाता है। (चित्र क्र. 1.11 b)

जीवभार का पिरामिड (Pyramid of Biomass)

यह पिरामिड सटिक तरीके से जीवभार के आधार पर विभिन्न पोषी स्तरों के अन्तर्सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में प्राथमिक उत्पादकों का जीव भार आहार श्रृंखला के प्रत्येक स्तर के उपभोक्ता से अधिक होता है। वन में उपस्थित वृक्षों का जीवभार उस पर आश्रित प्राथमिक उपभोक्ताओं से अधिक होता है। उसी प्रकार द्वितीयक एवं तृतीयक श्रेणी के उपभोक्ताओं का जीवभार सबसे कम होता है। अतः स्थलीय, वन, घास स्थल तंत्र, फसल तंत्र का सीधा पिरामिड बनता है। (चित्र क्र. 1.12 a)

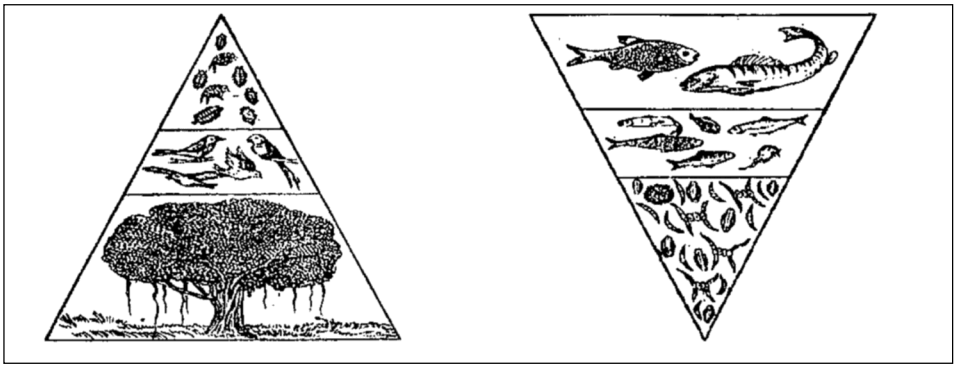

चित्र क्र. 1.12: तालाब पारिस्थिति तंत्र में (a) जीवभार का सीधा पिरामिड (b) जीवभार का उल्टा पिरामिड

तालाब के पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादक (पादप प्लवक) की संख्या तो बहुत अधिक होती है किन्तु इनका जीव भार बहुत कम होता है। इनके उपभोक्ताओं की संख्या कम होती जाती है किन्तु इनका जीव भार बढ़ता जाता है और पिरामिड उल्टा कहलाता है। (चित्र क्र. 1.12 b)

ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

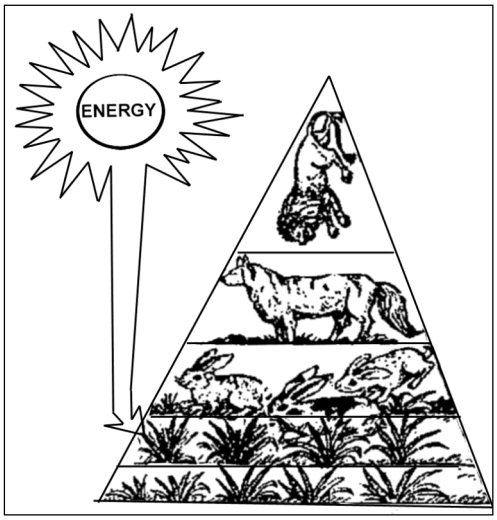

चित्र क्र. 1.13: घास के मैदान का पिरामिड

यह पिरामिड बाकी के पारिस्थितिक पिरामिडों की अपेक्षा उत्तम तरीके से पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह की दर को प्रदर्शित करता है। इकाई वर्ग क्षेत्र में उत्पादकों की ऊर्जा का संबंध अवरोही क्रम (descending pattern) में होता है। खाद्य श्रृंखला में उपस्थित भोज्य पदार्थ जन्तुओं द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं। इस भोजन का लगभग 90% भाग जन्तुओं के श्वसन में प्रयोग में आ जाता है तथा शेष 10% भोजन का भाग उनके शरीर निर्माण में प्रयोग होता है जो अगले स्तर

के जीवधारियों को प्राप्त होता है। प्रत्येक स्तर पर संचित ऊर्जा का सम्बन्ध ऊर्जा का पिरामिड बनाता है और यह सीधा होता है। (चित्र क्र. 1.13)

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

8. पारिस्थितिक तंत्र में उर्जा का प्रवाह होता है–

   (अ) एक–दिशीय (ब) द्वि–दिशीय

   (स) तीन–दिशीय (द) चार–दिशीय

9. खाद्य कड़ी में सही क्रम क्या है?

   (अ) घास–भेडिया–हिरन–भैंस

   (ब) घास–साँप–कीड़ा–हिरन

   (स) जीवाणु–घास–खरगोस–भेड़िया

   (द) घास–किड़ा–चिड़िया – साँप

10. वृक्ष के पारिस्थितिक तंत्र मे संख्या का पिरामिड होगा–

   (अ) उल्टा (ब) सीधा

   (स) अ एवं ब दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

11. जीव संख्या का पिरामिड होता है –

   (अ) उल्टा (ब) सीधा

   (स) अ एवं ब दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

12. उर्जा का पिरामिड होता है –

   (अ) सीधा (ब) उल्टा

   (स) दोनों, सीधा एवं उल्टा (द) इनमें से कोई नहीं

1.15 जैव–भू–रासायनिक चक्र (Bio-Geo-Chemical Cycles)

पारिस्थितिक तंत्र में खनिज पदार्थ एवं जल, पौधों की वृद्धि के लिए अति आवश्यक होते हैं। हरे पौधे उत्पादक कहे जाते हैं जो वातावरण में उपस्थित भौतिक पदार्थों को जैविक क्रियाओं (Vital activities) के द्वारा जटिल कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करते हैं। इन पदार्थों को उपभोक्ताओं के द्वारा ग्रहण किया जाता है। पौधों एवं जीवों की मृत्यु के पश्चात् अपघटक इन पदार्थों को पुनः वातावरण में पहुँचा देते हैं। इस प्रक्रिया को जैव–भूरासायनिक चक्र (Biogeo-chemical cycle)

कहते हैं। इसमें जैवीय (Biological), भूगर्भीय (Geological) तथा रासायनिक (Chemical) प्रकृतियाँ पाई जाती हैं।

टिप्पणी

खनिज चक्र दो भागों से मिलकर बना होता है।

1. **संचालक पूल (Reservoir Pool)**– यह बड़ा तथा अजैविक घटकों से मिलकर बना होता है।
2. **चक्रण पूल (Cycling Pool)– या विनिमय पुल (Exchange Pool)**– यह छोटा एवं अधिक सक्रिय होता है। जिसमें वातावरण एवं जीवधारियों के मध्य खनिज पदार्थों का आदान–प्रदान होता है।

जैव–भू–रासायनिक चक्र तीन समूहों में विभक्त किये जा सकते हैं

(i) गैसीय चक्र (Gaseous cycle)– इन चक्रों में पदार्थ वायुमंडल से प्राप्त होते हैं। यह गैसीय अवस्था में पाये जाते हैं।

(ii) अवसादी चक्र (Sedimentary cycle)– इस चक्र में पदार्थ मृदा से प्राप्त होते हैं और यह अगैसीय होते हैं उदाहरण फास्फोरस, कैल्शियम आदि।

(iii) द्रव चक्र (Liquid cycle)– इसके अंतर्गत जल चक्र पाया जाता है।

1.15.1 गैसीय चक्र (Gaseous cycle)

I. कार्बन चक्र (Carbon cycle)– पौधे वायुमण्डल से CO_2 (0.03%) ग्रहण करके प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं तथा ऑक्सीजन गैस मुक्त करते हैं। कार्बन जीवधारियों के शरीर का निर्माण करने वाले सभी कार्बनिक पदार्थों (Organic substances) जैसे कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates), वसा (fats) एवं प्रोटीन्स (Proteins) आदि का आवश्यक एवं मुख्य संघटक तत्व होता है। इनमें से कुछ कार्बन को पौधे श्वसन की क्रिया के द्वारा CO_2 के रूप में उत्सर्जित कर देते हैं और बाकी बचे हुए को शाकाहारी जन्तु (Herbivorous animals) भोजन के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। ये शाकाहारी कुछ कार्बन को CO_2 के रूप में त्याग देते हैं और बाकी के मांसाहारी जन्तुओं (Carnivorous animals) भोजन के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। अतः इस तरह से कार्बन कार्बनिक यौगिकों के रूप में उत्पादकों के द्वारा ग्रहण करके खाद्य श्रृंखला के सर्वोच्च उपभोक्ताओं तक पहुँच जाती है। इनके द्वारा भी श्वसन में कार्बन त्यागा जाता है और इनके मृत होने पर अपघटक इनके कार्बनिक यौगिकों को अपघटित करके इन्हें CO_2 और ह्यूमस (Humus) में बदल देते हैं। CO_2 वायु में एवं ह्यूमस मृदा या जल में रह जाता है जिन्हें पौधे ग्रहण करते हैं एवं उपर्युक्त चक्र पुनः प्रारंभ हो जाता है।

टिप्पणी

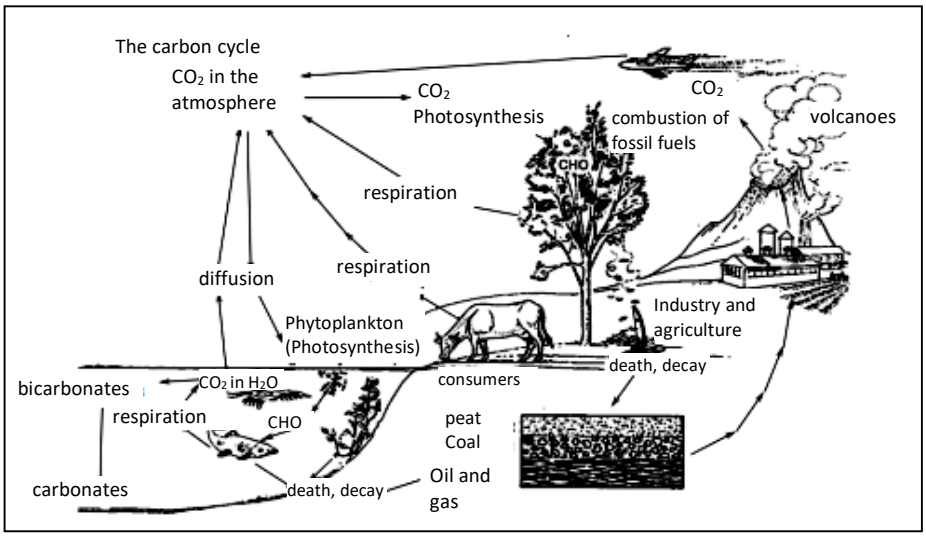

चित्र क्र. 1.14: कार्बन चक्र

कुछ पौधों के शरीर भूमि में दब जाने पर अपघटकों द्वारा विघटित नहीं हो पाते। यह कार्बन जैविक ईंधन के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। उदाहरण–जीवाश्मीय ईंधन (Fossil fuels) कोयला, पेट्रोलियम आदि। (चित्र क्र. 1.14)

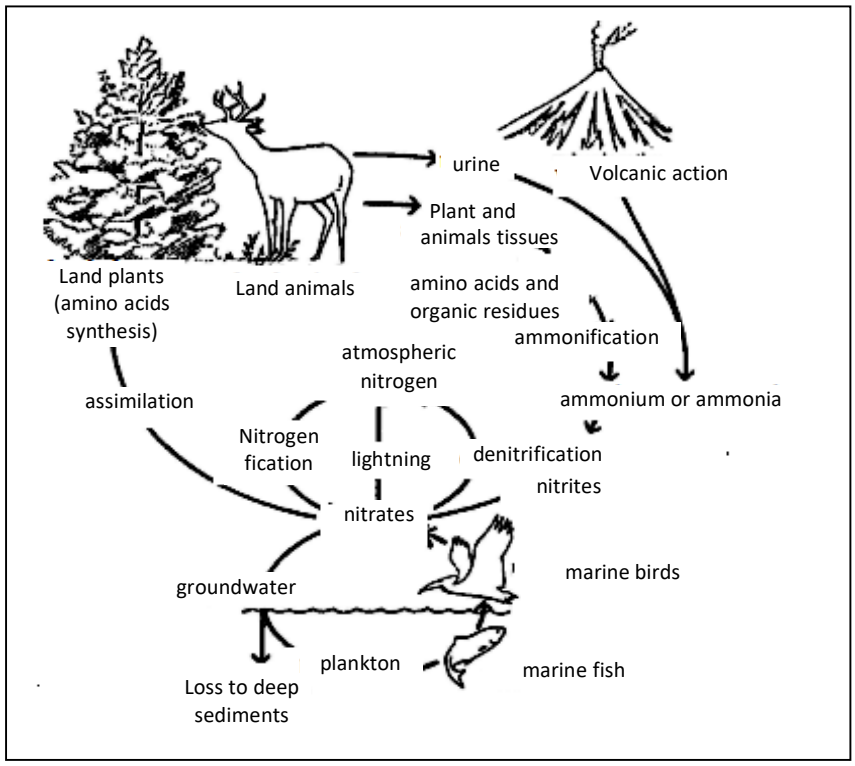

चित्र क्र. 1.15: नाइट्रोजन चक्र

टिप्पणी

II. नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)– वायुमण्डल में नाइट्रोजन (N_2) एक गैस के रूप में पायी जाती है (79%) जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणुओं तथा कुछ नील–हरित शैवालों द्वारा नाइट्रेट्स (NO_3) में परिवर्तित कर दी जाती है। हरे पौधे मृदा में उपस्थित अमोनिया का उपयोग कर अमीनों अम्ल का निर्माण करते हैं। यह अमीनो अम्ल प्रोटीन्स के मुख्य घटक होते हैं, जो पौधों से जन्तुओं में स्थानांतरित हो जाते हैं, जब, जन्तु इन पौधों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। पौधे एवं जन्तुओं के मृत होने पर अपघटक प्रोटीन्स का विघटन कर अमोनिया में परिवर्तित करके वापस मृदा में पहुँचा देते हैं। इस अमोनिया को फिर हरे पौधे ग्रहण करते हैं और यह चक्र निरंतर चलता रहता है। (चित्र क्र. 1.15)

II.(a) नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्रिया–विधि (Mechanism of N_2 Fixation)-नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation)– हरे पौधे उच्चवर्गीय नाइट्रेट एवं अमोनिया के रूप में नाइट्रोजन का उपयोग करते हैं। इसके लिये वायुमण्डल की स्वतंत्र N_2 का स्थिरीकरण दो प्रकार से होता है–

(अ) नाइट्रोजन का अजैविक स्थिरीकरण (Abiotic or Physical Fixation)– वायुमण्डल की स्वतंत्र नाइट्रोजन बादलों की तड़ित बिजली के प्रभाव से ऑक्सीजन के साथ संयोग करके नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) बनाती है। जो O_2 के साथ क्रिया करके नाइट्रोजन पराक्साइड (NO_2) का निर्माण करती है। यह नाइट्रोजन पराक्साइड वर्षा के जल से क्रिया करके नाइट्रस अम्ल (HNO_2) व नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) बनाती है। जो मृदा में मिलकर व NO_2-आयनों व NO_3 आयनों का निर्माण कर लेता है जिन्हें पौधों की जड़ें अवशोषित कर अमीनो अम्ल का निर्माण करती है। पौधों को भोजन के रूप में लेने से यह अमीनो अम्ल ग्रहण करने वाले जन्तुओं के शरीर में भी पहुँच जाते हैं। पौधे एवं जन्तुओं के मृत होने पर अपघटक इन अमीनों अम्ल को वापस मृदा में अमोनिया के रूप में पहुँचा देते हैं।

नाइट्रोजन को जब जैविक कोशिकाओं के द्वारा स्थिरीकृत (Fixed) किया जाता है तब इसे जैविक स्थिरीकरण (Biological N_2 fixation) कहते हैं।

(ब) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण दो प्रकार से होती है–

(a) असहजीवी स्थिरीकरण (Non-Symbiotic N_2 Fixation) – यह विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों के द्वारा होता है–

(i) मुक्त जीवी वायवीय नाइट्रोजन वायवीय नाइट्रोजन स्थिरीकारक जीवाणु (Free living aerobic nitrogen-fixing bacteria) उदाहरण – **ऐजोटोबेक्टर**

टिप्पणी

(ii) मुक्तजीवी अवायवीय नाइट्रोजन स्थिरीकारक जीवाणु (Free living anaerobic nitrogen-fixing bacteria) उदाहरण–क्लास्ट्रिडियम *(Clostridium)*

(iii) मुक्त जीवी प्रकाश–संश्लेषी जीवाणु (Free living Photosynthetic bacteria) उदाहरण – क्लोरोबियम *(Chlorobium)*

(iv) मुक्त जीवी रसायन संश्लेषी जीवाणु (Free living chemosynthetic) – उदाहरण – डीसल्फोविब्रियो *(Desulfovibrio)*

(v) मुक्त जीवी कवक (Free living fungi) – उदाहरण – पुलुलेरिया *(Pullularia)*

(vi) हेटेरोसिस्ट युक्त शैवाल (Heterocyst bearing algae) उदाहरण – नॉस्टाक *(Nostoc)*

(b) सहजीवी N_2 स्थिरीकरण (Symbiotic N_2 fixation)– लेग्युमिनोसी *(Leguminosae)* कुल के पौधे की जड़ों में उपस्थित ग्रंथिकाओं में उपस्थित राइजोबियम लेग्युमिनोसेरम *(Rhizobium leguminosarum)* जीवाणु के द्वारा होता है।

III. अमोनीफिकेशन (Ammonification)– पौधे एवं जन्तुओं की मृत्यु के बाद उपघटक इनके मृत शरीर से अमीनो अम्लों को विघटित करके मृदा में अमोनिया के रूप मिला देते हैं। यह अमोनिया पौधे अवशोषित करके वापस अपने शरीर में संचित कर देते हैं। उदाहरण–बेसिलस रेमोसस *(Bacillus ramosus)*

नाइट्रीफिकेशन *(Nitrification)*– मृदा में उपस्थित अमोनियम यौगिक नाइट्रीफाइंग जीवाणुओं के द्वारा NO_2 एवं NO_3 में बदले जाते हैं –

(अ) नाइट्रोसोमोनास *(Nitrosomonas)*– जीवाणु NH_3 यौगिकों को नाइट्राइट यौगिकों (NO_2) में बदल देते हैं।

(ब) नाइट्रोबेक्टर *(Nitrobacter)*– ये जीवाणु नाइट्राइट यौगिकों को नाइट्रेट यौगिक में बदल देते है।

डीनाइट्रीफिकेशन (Denitrification)– डीनाइट्रीफाइंग जीवाणुओं की उपस्थिति में नाइट्रेट एवं अमोनिया मृदा से वायुमण्डल में मिल जाती है।

उदाहरण– थायोबैसिलस डिनाइट्रीफिकेन्स *(Thiobacillus denitrificanse)*

1.15.2 खनिजों का चक्रीकरण (Cycling of Minerals) या अवसादी चक्र (Sedimentary Cycle)

टिप्पणी

पौधे भोजन के रूप में मृदा में उपस्थित विभिन्न प्रकार के खनिज लवण को जल की सहायता से अवशोषित करते है। पौधों से ये जन्तुओं के शरीर में और फिर उन दोनों के मृत होने पर अपघटक इन्हें वापस मृदा में विघटित करके मिला देते हैं। यह मृदा से पुनः पौधों के द्वारा अवशोषित किये जाते हैं। यह क्रम इस प्रकार निरन्तर चलता रहता है। इसे खनिजों का चक्रीकरण (Cycling of minerals) कहते हैं।

i. **सल्फर चक्र (Sulphur Cycle)**– वायुमण्डल में सल्फर स्वतंत्र गैस (SO_2 और H_2S) में पाया जाता है। यह गैसीय एवं अवसादी दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है। यह वर्षा के जल में मिलकर मृदा में पहुँचता है। पौधे मृदा में उपस्थित सल्फर को अवशोषित करके प्रोटीन एवं अमीनो अम्लों का निर्माण करते है। उत्पादक के बाद यह उपभोक्ताओं के शरीर में स्थानांतरित हो जाता है। पौधे एवं जन्तुओं की मृत्यु के बाद अपघटक इनके प्रोटीन को विघटित करता है, जिससे सल्फर मृदा में वापस मिल जाता है। यह चक्र इसी तरह से चलता रहता है। (चित्र क्र. 1.16)

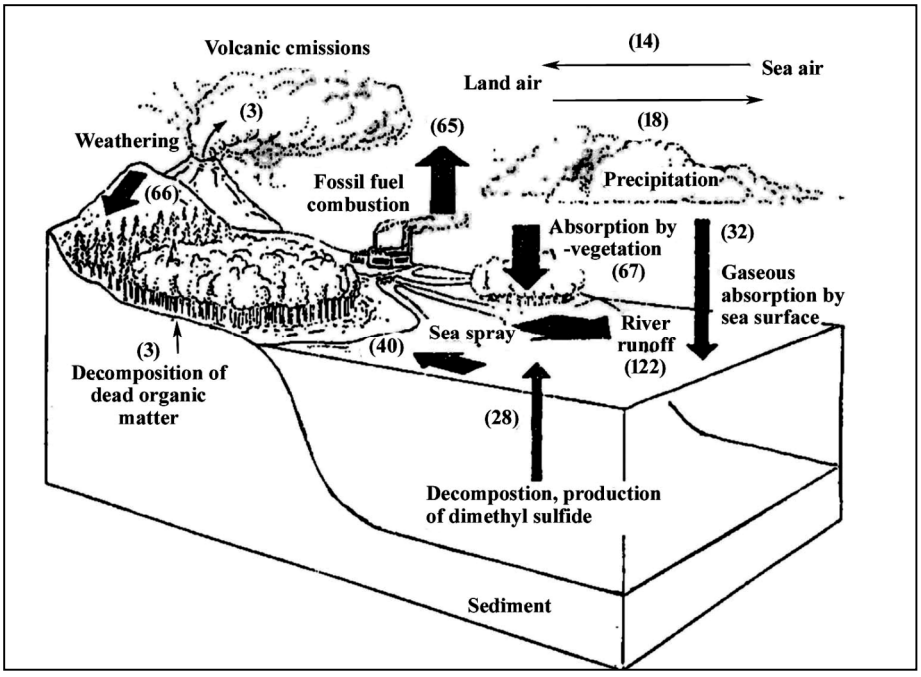

चित्र क्र. 1.16: गन्धक चक्र

ii. **फास्फोरस चक्र (Phosphorous Cycle)**– वायुमण्डल में फॉस्फोरस विभिन्न फॉस्फेट आयनों के रूप में उपस्थित रहता है। मृदा में उपस्थिति फॉस्फेट को पौधे अवशोषित करके अपने अन्दर विभिन्न यौगिकों के रूप में संचित करके रखते हैं। शाकाहारी जन्तु जब इन पौधों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं तो उनके शरीर में फॉस्फेट पहुँच जाता हैं इस तरह

टिप्पणी

से यह खाद्य श्रृंखला में स्थानांतरित होता रहता है और सर्वोच्च उपभोक्ता में पहुँच जाता है। उत्पादक एवं उपभोक्ताओं की मृत्यु के बाद यह मृदा में उपस्थित अपघटकों के द्वारा फॉस्फेट आयन के रूप में मुक्त होकर मृदा में मिल जाता है। जिसका पुनः पौधे अवशोषित करके उसी क्रम को शुरू कर देते हैं। मृदा, चट्टानों के अपरदन, पौधे एवं जन्तुओं के मृत शरीर के अपघटन से मुक्त होने पर फॉस्फोरस जल के साथ समुद्र में पहुँचता है और चट्टानों का निर्माण करता है। इन चट्टानों के विघटन से दुबारा फॉस्फोरस मुक्त होकर जल एवं मृदा में मिल जाता है, जिसे पौधे अवशोषित करके चक्र जारी रखते हैं। (चित्र क्र. 1.17)

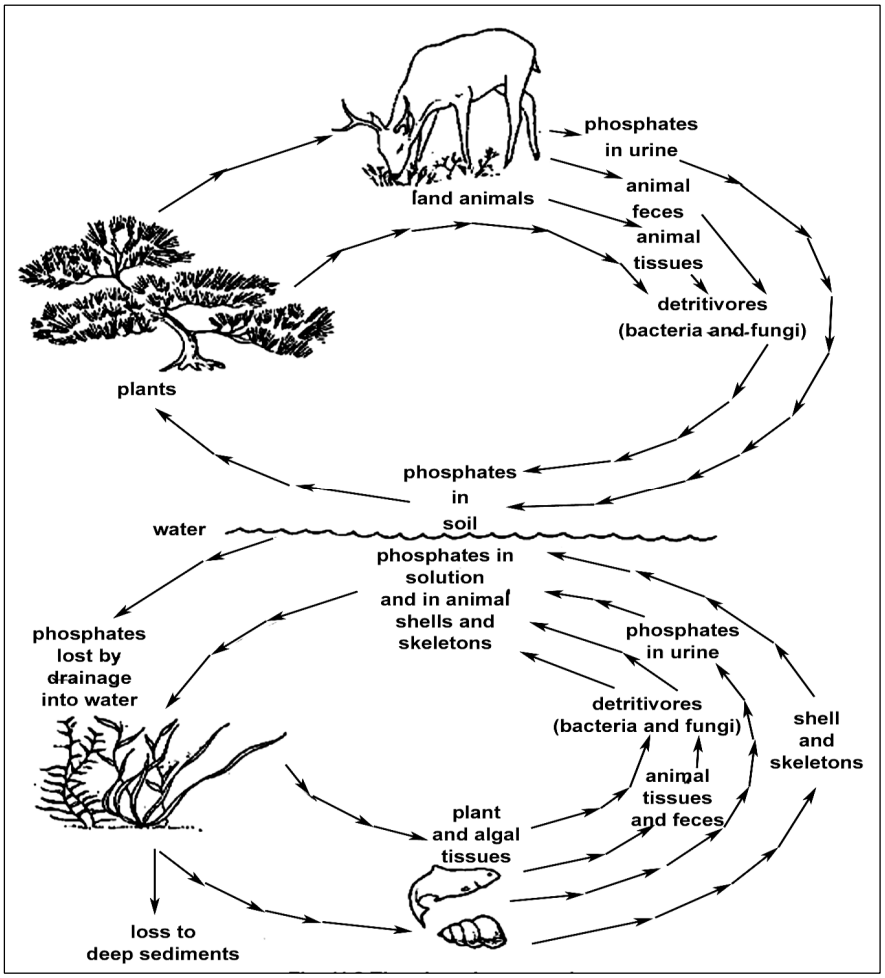

चित्र क्र. 1.17: फॉस्फोरस चक्र

iii. जलीय चक्र (Water or Hydrological Cycle)– पृथ्वी का लगभग 71% भाग जलाच्छादित है। यह जल स्वच्छ रूप में नदियों, तालाबों एवं खारे पानी के रूप में उपस्थित रहता है। सूर्य के प्रकाश के कारण इन जलीय तंत्र में उपस्थित जल का वाष्पीकरण (Evaporation) होता है। यह वाष्प जल ठंडा होने पर बादलों में परिवर्तित होकर वर्षा के जल के रूप में

टिप्पणी

वापस पृथ्वी पर गिरता है। मृदा में मिलने पर जल को पौधे अवशोषित कर लेते हैं। (चित्र क्र. 1.18)

पौधों की पत्तियों में होने वाले वाष्पोत्सर्जन के द्वारा कुछ जल वातावरण में मुक्त हो जाता है। मृदा में उपस्थित जल सतहीय जल गति (Surface water run-off) के कारण समुद्र में मिलता है। इस प्रकार वातावरण में उपस्थित जल विभिन्न माध्यमों के द्वारा जीवधारियों के शरीर से पुनः वायु एवं समुद्र में मिल जाता है।

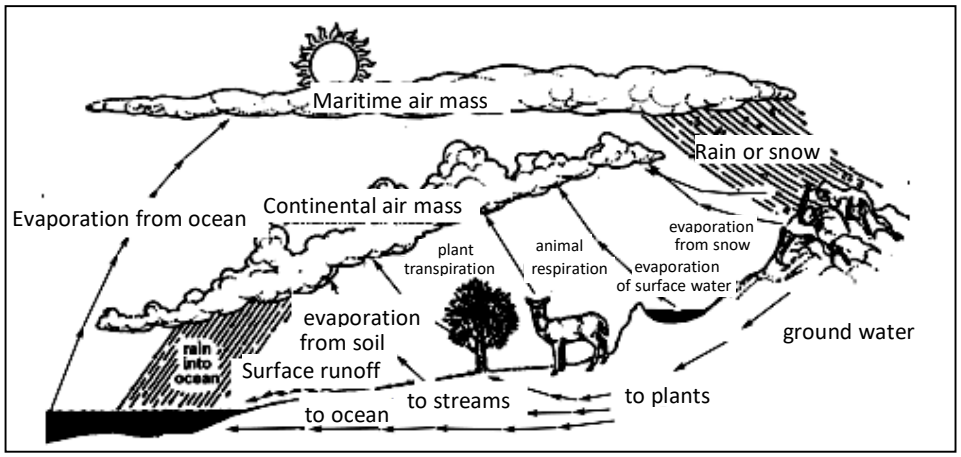

चित्र क्र. 1.18: जलीय चक्र

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

13. प्रकृति में CO_2 की मात्रा होती है –

(अ) 0.3% (ब) 0.03%

(स) 3.0% (द) 79%

14. पुनःनविनीकरण स्त्रोत नहीं है –

(अ) जल (ब) जंगल

(स) कोयला (द) वन्य जीवन

15. प्रकृति में N_2 की मात्र होती है–

(अ) 70% (ब) 79%

(स) 40% (द) 49%

16. चक्र जो कभीकभार पत्थरों के अपक्षय से प्रभावित होता है –

(अ) कार्बन चक्र (ब) नाइट्रोजन चक्र

(स) फॉस्फोरस चक्र (द) ये सभी चक्र

टिप्पणी

17. अमोनिया को नाइट्राइट यौगिकों मे बदलने वाला जीवाणु है–

(अ) नाइट्रोबैक्टर (ब) नाइट्रोसोमोनास

(स) थायोबैसिलस (द) क्लोरोबियम

1.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (स)
2. (स)
3. (द)
4. (ब)
5. (स)
6. (स)
7. (स)
8. (अ)
9. (उ)
10. (अ)
11. (स)
12. (अ)
13. (ब)
14. (स)
15. (ब)
16. (स)
17. (ब)

1.17 सारांश (Summary)

पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत आने वाले सभी प्रकार के पौधे–जीव–जन्तु एवं सूक्ष्मजीव वातावरण को सुचारू रूप से चलाने में उपयोगी होते है। इस इकाई के द्वारा जीवधारियों के स्थानीय एवं भौगोलिक वितरण, उनके व्यवहार को जाना जा सकता है। पारिस्थितिक तंत्र काफी विस्तृत है और इसमें रहने वाले प्राकृतिक समुदाय सामान्य सिद्धांतों पर कार्य करके जीवों एवं उनके वातावरण के अंतर्सम्बन्धों को सुचारू रूप से क्रियाशील रखता है। प्रकृति में उपस्थित आवश्यक तत्व पौधों, जीवों एवं वातावरण में रहकर जैव–भू–रासायनिक चक्र को पूरा करते हैं। इन चक्रों में दोनों जैविक एवं अजैविक घटक भाग लेते हैं और ऊर्जा का प्रवाह संचालित करते हैं।

1.18 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र**– वह पारिस्थितिक तंत्र जो प्राकृतिक होते हैं और उनमें मानव हस्तक्षेप नहीं होता।
- **खाद्य श्रृंखला**– एक समय में कार्यरत अनेक खाद्य श्रृंखलाएँ।
- **स्वपोषी**– वह जीव जो अपना भोजन खुद निर्मित कर सकते हैं।
- **परपोषित**– वह जीव जो दुसरे जीवों पर भोजन के लिए आश्रित या निर्भर करते हैं।

1.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

टिप्पणी

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. पारिस्थितिक विज्ञान के महत्व पर टिप्पणी लिखिए।
2. जीवधारियों के स्तर को संक्षेप में समझाइए।
3. पारिस्थितिक पिरामिड पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. प्राथमिक तथा द्वितीयक उपभोक्ता में अन्तर लिखिए।
5. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह को समझाइए।
6. खाद्य श्रृंखला पर टिप्पणी लिखिए।
7. खाद्य जाल पर टिप्पणी लिखिए
8. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षेप में लिखिए।
   (i) ऊर्जा
   (ii) उत्पादकता
   (iii) खाद्य श्रृंखला
   (iv) पारिस्थितिक पिरामिड्स
9. एक तालाब में भोजन श्रृंखला पर टिप्पणी लिखिए।
10. तालाब का जीवभार के पिरामिड पर टिप्पणी लिखिए व चित्र बनाइए।
11. एक सन्तुलित पारिस्थितिक तंत्र से आप क्या समझते हैं?
12. पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
13. खाद्य श्रृंखला एवं खाद्य जाल पर टिप्पणी लिखिए।
14. अजैविक घटक पर टिप्पणी लिखिए।
15. नाइट्रोजन चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
16. जैव–भू–रसायन चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
17. कार्बन चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
18. गैसीय संघटन पर टिप्पणी लिखिए।
19. सल्फर चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
20. फॉस्फोरस चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
21. जल चक्र पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. पारिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं?
2. पर्यावरण जीव विज्ञान के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
3. पारिस्थितिक के महत्व का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. पर्यावरणीय जीव विज्ञान का अन्य विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिए।
5. पर्यावरणीय जीव विज्ञान में जीवधारियों के स्तरों पर प्रकाश डालिए।
6. पारिस्थितिक तंत्र पर एक निबन्ध लिखिए।
7. पारिस्थितिक तंत्र से आप क्या समझते हैं? एक पारिस्थितिक तंत्र के क्रियात्मक घटकों का वर्णन कीजिए।
8. एक जलीय परितन्त्र में ऊर्जा के पिरामिड का सचित्र वर्णन कीजिए।
9. पारिस्थितिक तंत्र की मूल संकल्पना की व्याख्या कीजिए। भिन्न–भिन्न प्रकार के पारिस्थितिकीय पिरामिडों का वर्णन कीजिए।
10. पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य श्रृंखला एवं खाद्य जाल को उदाहरण साहित समझाइए।
11. पारिस्थितिक तंत्र से आप क्या समझते हैं? विभिन्न पिरामिड्स का वर्णन कीजिए।
12. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह का वर्णन कीजिए।
13. पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा दीजिए। पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह का वर्णन कीजिए।
14. पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा दीजिए। पारिस्थितिक तंत्र की संरचना तथा कार्यविधि समझाइए।
15. जलीय तंत्र को भोजन श्रृंखला के सन्दर्भ में समझाइए।
16. पारिस्थितिक तंत्र क्या है? इसके विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।
17. बायोमास के पिरामिड को समझाइए।
18. पारिस्थितिक तंत्र से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में जलीय पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के पिरामिड का सचित्र वर्णन कीजिए।
19. एक पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक एवं जैविक घटकों का वर्णन कीजिए।
20. पारिस्थितिक पिरामिड क्या होते हैं? पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न पारिस्थितिक पिरामिडों का वर्णन कीजिए।
21. जैव–भू–रासायनिक चक्र से आप क्या समझते हैं? कार्बन चक्र को विस्तार से समझाइए।

टिप्पणी

22. जैव–भू–रासायनिक चक्र (बायोजीयोकैमिकल चक्र) से आप क्या समझते हैं? विस्तृत वर्णन कीजिए। नाइट्रोजन चक्र का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
23. भू–जैव–रासायनिक चक्र का वर्णन कीजिए तथा पारिस्थितिक तंत्र में इनका महत्व समझाइए।
24. नाइट्रोजन चक्र और इसकी विभिन्न प्रक्रियाओं में सूक्ष्मजीवों की भूमिका को समझाइए।
25. अवसादी चक्र का क्या अर्थ है? फॉस्फोरस अथवा सल्फर चक्र को रेखाचित्र द्वारा समझाइए।
26. पदार्थों के चक्र का क्या अर्थ है? कार्बन चक्र का वर्णन कीजिए।
27. जल चक्र से आप क्या समझते हैं? जल चक्र को रेखाचित्र द्वारा समझाइए।

1.20 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. टेक्नोलॉजी – मोहन पी. अरोरा
2. कॉलेज बॉटनी – एस. सुन्दरा राजन

टिप्पणी

इकाई 2 पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological Adaptations)

संरचना (Structure)

2.0 परिचय

2.1 उद्देश्य

2.2 पारिस्थितिक अनुकूलनः जल के लिए पादपों में आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ

- 2.2.1 जलोद्भिद पौधे
  - 2.2.1.1 जलोद्भिद पौधों के विशिष्ट लक्षण
  - 2.2.1.2 जलीय पौधों का वर्गीकरण
  - 2.2.1.3 जलीय पौधों में आकारिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
  - 2.2.1.4 जलीय पौधों में शारीरिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
  - 2.2.1.5 जलीय पौधों में कार्यिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
- 2.2.2 मरुद्भिद पौधे
  - 2.2.2.1 मरुद्भिद पौधों के विशिष्ट लक्षण
  - 2.2.2.2 मरुद्भिद पौधों का वर्गीकरण
  - 2.2.2.3 मरुद्भिद पौधों में आकारिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
  - 2.2.2.4 मरुद्भिद पौधों में शारीरिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
  - 2.2.2.5 मरुद्भिद पौधों की कार्यिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
- 2.2.3 लवणोद्भिद पौधे

2.3 पारिस्थितिक अनुकूलनः तापमान तथा प्रकाश के लिए पादपों में आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ

- 2.3.1 तापमान के प्रति पादप अनुक्रियाएँ या अनुकूलन अनुक्रियाएँ
  - 2.3.1.1 तापकालिता
  - 2.3.1.2 बसन्तीकरण
- 2.3.2 प्रकाश के प्रति पादप अनुक्रियाएँ या अनुकूलन
  - 2.3.2.1 दीप्तिकालिता

2.4 पादप अनुक्रमण

- 2.4.1 पादप अनुक्रमण के प्रकार
- 2.4.2 अनुक्रमण के कारण
- 2.4.3 अनुक्रमण के विभिन्न चरण

2.5 पादप अनुक्रमण के उदाहरण

- 2.5.1 जलक्रमक (हाइड्रोसियर)
- 2.5.2 मरुक्रमक (जीरोसियर)

2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 मुख्य शब्दावली

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय (Introduction)

वातावरण में अलग–अलग प्रकार के पौधे पाये जाते हैं। लम्बी अवधि तक एक ही वातावरण में रहने के कारण जब यह पौधे किसी नये वातावरण में रहते हैं तो उस

वातावरण के अनुसार सामंजस्य स्थापित करने के लिये कुछ आकारिकीय (Morphological), शारीरिकीय (Anatomical) एवं कार्यिकीय परिवर्तन (Physiological) अनुक्रियाएँ प्रदर्शित करते हैं। इन समायोजनों (Adjustment) को पर्यावरणीय या पारिस्थितिकीय अनुकूलन (Environmental or Ecological adpatation) कहते हैं।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य (Objectives)

अनुकूलन, विकास क्रिया का एक महत्वपूर्ण परिणाम होता है, जो पौधों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। यह पौधों की वृद्धि, प्रजनन एवं अन्य सभी क्रियाओं के लिए अति आवश्यक होता है। इस अध्याय के द्वारा पौधों में होने वाले अनुकूलन की जानकारी प्राप्त होगी एवं उपयोगी पौधों की खेती करने में यह बहुत महत्वपूर्ण होगा।

2.2 पारिस्थितिक अनुकूलनः जल के लिए पादपों में आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ (Ecological Adaptations : Morphological, Anatomical and Physiological Responses of Plants to water)

2.2.1 जलोद्भिद पौधे (Hydrophytes)

वार्मिंग **(Warming, 1909)** ने जल सम्बन्धों (Water relationships) के आधार पर पौधों को निम्नलिखित चार समूहों में वर्गीकृत किया है –

1. जलोद्भिद पौधे (Hydrophytes)
2. समोद्भिद पौधे (Mesophytes)
3. मरुद्भिद पौधे (Xerophytes)
4. लवणोद्भिद पौधे (Halophytes)

वह पौधे जो कि पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से जल में उगते या रहते हैं, वे जलोद्भिद पौधे (Hydrophytes) कहलाते हैं। यहाँ Hydro का अर्थ जल (Water) एवं Phyton का अर्थ पौधे होता है। यह पौधे तालाबों (Ponds), झीलों (Lakes), नदियाँ, समुद्र आदि में पाये जाते हैं।

2.2.1.1 जलोद्भिद पौधों के विशिष्ट लक्षण (Characteristic Features of Hydrophytes)

1. जलीय पौधों के बाह्य त्वचा में उपत्वचा (cuticle) का अभाव होता है।
2. सम्पूर्ण पौधा जल एवं खनिज पदार्थों का अवशोषण करता है।

टिप्पणी

3. जलीय पौधों में मूल तंत्र का अभाव होता है अथवा यह अल्प विकसित होते हैं।
4. इन पौधों में यांत्रिक (Mechanical) एवं संवहनी (Vascular) ऊतक अनुपस्थित या अल्पविकसित होते हैं।
5. तने के अन्दर बड़े–बड़े अन्तरकोशिकीय अवकाश (Intercellular spaces) पाये जाते हैं, जिनसे वायु संचार होता है और पौधे हल्के होकर पानी पर तैरते हैं।
6. पत्तियों में रंध्रों (Stomata) का अभाव होता है। अगर यह उपस्थित भी होते हैं तो वे अक्रियाशील (Nonfunctional) होते हैं।
7. पत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं, एक वह जो पानी के अन्दर और दूसरी पानी के ऊपर तैरते हुए पायी जाती है। इसे हेटेरोफीली (Heterophylly) कहते हैं।
8. कुछ पौधों में पुष्पवृत्त एवं पर्णवृत्त बड़े एवं फूले हुए होते हैं।

2.2.1.2 जलीय पौधों का वर्गीकरण

(Classification of Hydrophytic Plants)

स्कल्थोर्पे (Sculthorpe, 1976) के अनुसार जलीय पौधे मुख्यतः दो समूह में विभाजित किये गये हैं।

(अ) आधार से जुड़े हुए जलीय पौधे

(ब) मुक्ताप्लावी जलीय पौधे

(अ) आधार से जुड़े हुए जलीय पौधे (Hydrophytes Attached to the Substratum)– ये तीन प्रकार के पाये जाते हैं।

1. **प्रक्षेपित जलीय पौधे (Emergent hydrophytes)**
2. **प्लावी पत्तीयुक्त जलीय पौधे (Floating leaves hydrophytes)**
3. **जलनिमग्न जलीय पौधे (Submerged hydrophytes)**

1. **प्रक्षेपित जलीय पौधे (Emergent hydrophytes)**– इसके अंतर्गत ऐसे जलीय पौधे आते हैं जो तालाब के आधारीय भाग से स्थिर रहते हैं। उदाहरण–टायफा *(Typha)* आदि।
2. **प्लावी पत्तीयुक्त जलीय पौधे (Floating leaves hydrophytes)**– इसके अंतर्गत वह पौधे आते हैं, जिनकी पत्तियाँ पानी पर तैरती हैं (*Wolffia, Lemna* etc)। यह दो प्रकार के होते हैं। (चित्र क्र. 2.1)

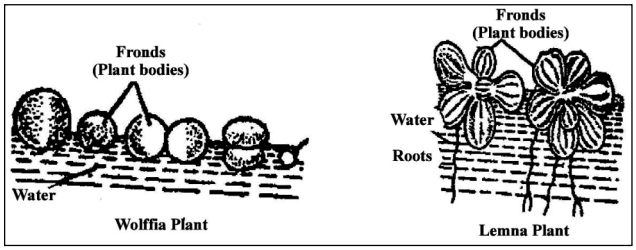

चित्र क्र. 2.1: स्वतन्त्र प्लावी पौधे–वॉल्फिया एवं लेम्ना

(i) स्टोलनयुक्त पौधे (Stoloniferous Plants)– इस प्रकार के पौधों का तना रेंगनेवाला, स्टोलनयुक्त जल पर तैरने वाली पत्तियाँ पाई जाती हैं। **उदाहरण**– पौटेमोगेटॉन नेटेन्स *(Potamogeton natans)*

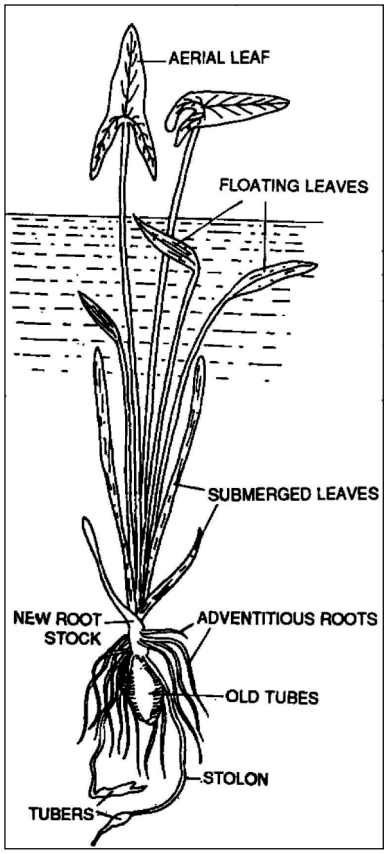

चित्र क्र. 2.2: जलीय पौधों में पत्तियों के प्रकार

(ii) राइजोमयुक्त अथवा घनकन्दयुक्त पौधे (Rhizomatous or cormous plants)– इन पौधों का यह नाम इनके राइजोम या घनकन्द के रूप जैसे तने के कारण है। इनके राइजोम तालाब की तली पर उपस्थित मिट्टी में जड़ों की सहायता से स्थिर रहते हैं पर इनकी पत्तियाँ एक लम्बे पर्णवृत्त (Long petiole) के द्वारा जल के सतह पर तैरती है। उदाहरण *(Nymphaea)*, इक्र्निया *(Eicchornia)*, साल्विनिया *(Salvinia)*, ऐजोला *(Azolla)* आदि।

3. **जलनिमग्न जलीय पौधे (Submerged Hydrophytes)**– वह जलीय पौधे जो पूर्ण रूप से जल में डूबे रहते हैं जलनिमग्न पौधे कहलाते हैं। यह निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(i) सूकायवत् प्रकार (Thalloid Type)– इस प्रकार के जलीय पौधों के शरीर बेलनाकार (Cylindrical), चपटे (flattened), विसर्पी (Creeping) होते हैं। इनमें (Polymorphic thallus) बहुरूपी सूकायुक्त पाया जाता है जिससे सीधी या रेंगने वाली

टिप्पणी

(Trailing) द्वितीयक शाखाएँ निकलती है। उदाहरण– पोडोस्टीमम *(Podostemum),* पोटोमोजिटोन *(Potomogeton)* आदि। (चित्र क्र. 2.3)

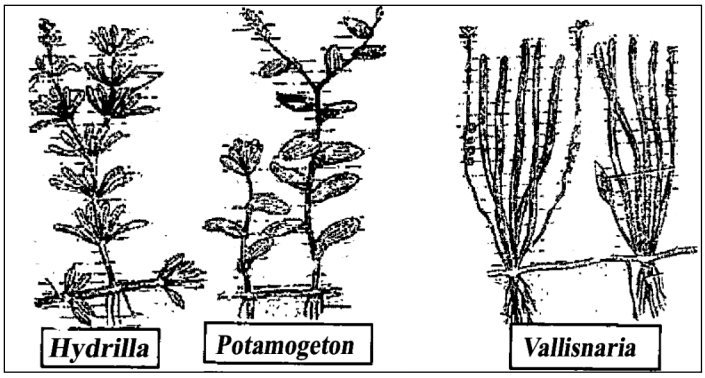

चित्र क्र. 2.3: जलनिमग्न पौधे

(ii) कॉलीसेण्ट प्रकार (Caulescent Type)– इस प्रकार के जलीय पौधों के तने लम्बे होते है, जिनमें उपस्थित पर्व सन्धियों से पत्तियों का उद्‌गम होता है।

उदाहरण– हाइड्रिला *(Hydrilla)*

(iii) रोजेट प्रकार (Rosette Type)– इस प्रकार के जलीय पौधों में पायी जाने वाली पत्तियाँ बड़ी एवं रेडिकल (radical) और राइजोम के चारों ओर रोजेट क्रम में पायी जाती है। उदाहरण–वैलिसनेरिया *(Vallisneria)* आदि।

(ब) मुक्त प्लावी पौधे (Free Floating Plants)– वह पौधे जो जल में मुक्त रूप से तैरते रहते है इस समूह के अन्तर्गत पाये जाते है। कुछ पौधों में पूर्ण विकसित जड तंत्र पाया जाता है और यह मुख्यतः उथले जल में पाये जाते है। **उदाहरण** – इकार्निया *(Eichhornia)*, ट्रापा *(Trapa)*, साल्विनिया *(Salvinia)* आदि।

जलीय अवस्था में सामंजस्य स्थापित करने के लिए जलीय पौधों में मुख्यतः तीन प्रकार की अनुक्रियाएँ (Responses) या अनुकूलन (adaptations) पाये जाते हैं।

1. आकारिकीय अनुक्रियाएँ अनुकूलन (Morphological adaptations)
2. शारीरिकीय अनुक्रियाएँ अनुकूलन (Anatomical adaptations)
3. कार्यिकीय प्रकार्यात्मक अनुक्रियाएँ अनुकूलन (Physiological adaptations)

2.2.1.3 जलीय पौधों में आकारिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Morphological Adaptations in Hydrophytic Plants)

जलीय पौधों के विभिन्न भागों में अलग–अलग अनुक्रियाएँ या अनुकूलन देखे जाते हैं। –

टिप्पणी

(i) जड़ों में अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Responses or Adaptations in Roots)–

1. मुख्यतः जड़ तंत्र का कोई महत्वपूर्ण कार्य न होने पर यह अल्पविकसित, अपस्थानिक एवं छोटी अशाखित होती हैं।
2. जलीय पौधों का सम्पूर्ण शरीर जल अवशोषण का कार्य करता है इसलिए इसकी जड़ों में मूल रोम (root hairs) व मूल टोप (root cap) नहीं पाये जाते।

(ii) तने में (In Stem)

1. जलीय पौधों में पाया जाने वाला तना लम्बा, पतला एवं लचीला होता है।
2. कुछ जलीय पौधों में, तना राइजोम के रूप में पाया जाता है।

(iii) पत्तियों में (In Leaves)

1. कुछ जलीय पौधों में कई प्रकार की पत्तियाँ पायी जाती हैं, जिसे विषमपर्णता (Heterophylly) कहते हैं। इन पौधों में मुख्यतः तीन प्रकार की पत्तियाँ पायी जाती है, जैसे की– (अ) जलमग्न पत्तियाँ (Submerged leaves) (ब) प्लावित पत्तियाँ (Floating leaves) (स) वायवीय पत्तियाँ (Aerial leaves) (चित्र क्र. 2.3)
2. जलमग्न पौधों में पायी जाने वाली पत्तियाँ पतली (thin), लम्बी (long) एवं फीतेनुमा (ribbon-shaped) होती है।
3. प्लावी पौधों में पायी जाने वाली पत्तियाँ बड़ी, चपटी (flat), पूर्ण (Entire), प्लावी (floating), एवं इनकी बाह्य सतह पर मोम (wax) की परत (layer) पायी जाती है। इनके पर्णवृन्त (Petiole) लम्बे, लचीले, स्पंजी एवं श्लेष्म वाले होते हैं, जिनके कारण पत्तियाँ जल की सतह पर तैरती हैं।
4. कुछ जलीय पौधों की पत्ति के पर्णवृन्त (Petiole), फूले हुए (Swollen) एवं स्पंजी (Spongy) जिसके अन्दर हवा भरी हुयी होती हैं जो पौधों को जल की सतह पर तैरने में मदद करते हैं।

2.2.1.4 जलीय पौधों में शारीरिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Anatomical Responses or Adaptations in Hydrophytes)-

शारीरिक अनुकूलन मुख्यतः तने में दिखाई देता है–

1. तने एवं पत्तियों की बाह्म त्वचा क्लोरोफिल से बनी हुई होती है। इनमें उपत्वचा (Cuticle) नहीं पायी जाती।
2. इन पौधों के ऊतक छिद्रित (Spongy) होते हैं। इन ऊतकों में बड़े अन्तर कोशिकीय अवकाश (Intercellular spaces) पाये जाते हैं, जिनमें हवा भरी होती है। यह वायु गुहा पौधे के प्रत्येक अंग में पायी जाती है, जो पौधे को तैरने एवं गैसीय आदान–प्रदान में सहाय प्रदान करती है।

टिप्पणी

3. रन्ध्र (Stomata) अनुपस्थित अथवा क्रियाहीन (Non-functional) होते हैं।
4. जलीय पौधों में संवहनी ऊतक (Vascular tissues) एवं यांत्रिकी ऊतक (Mechanical tissues) अल्पविकसित या अनुपस्थित होते हैं।
5. जलीय पौधों में द्वितीयक वृद्धि नहीं पायी जाती है।
6. जलीय पौधों की पत्तियों में मीजोफिल ऊतक (Mesophyll tissues) पेलिसेड (Palisade) एवं स्पंजी पैरेनकायमा (Spongy parenchayma) में विभेदित (Differentiate) नहीं होते। (चित्र क्र. 2.4)

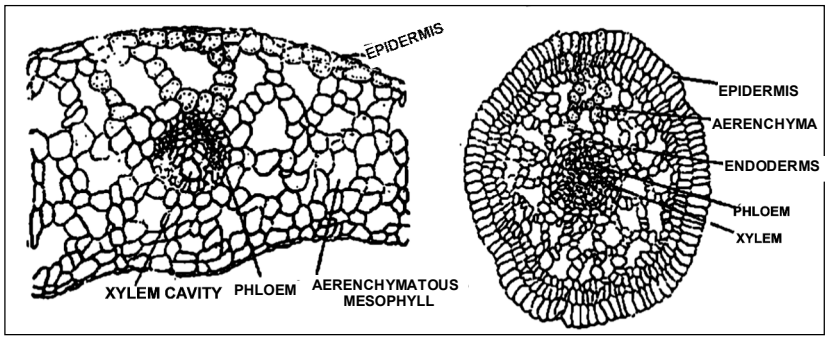

चित्र क्र. 2.4: (a) हाइड्रिला की पत्ती की खडी काट
(b) हाइड्रिला तने की अनुप्रस्थ काट

2.2.1.5 जलीय पौधों में कार्यिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Physiological Responses or Adptations in Hydrophtes) –

1. जलीय पौधों में परासरण दाब (Osmotic pressure) अत्यंत कम होता है।
2. जलीय पौधों की बाह्य त्वचा में क्लोरोफिल (Chlorophyll) पाया जाता है जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पूर्ण करता है।
3. श्वसन क्रिया एवं गैसों के आदान–प्रदान में ऐरेनकायमेटस ऊतक सहायता करते हैं।
4. जल में रहकर अपने जलमग्न भाग को घर्षण (friction), सड़न (Decaying) एवं शुष्कन (desiccation) से बचाने के लिए यह जलीय पौधे श्लेष्म (mucilage) स्रावित करके अपने आप को सुरक्षित रखते हैं।
5. जलीय पौधों में पुष्पन (flowering) एवं फल निर्माण कम देखा जाता है।

2.2.2 मरुद्भिद पौधे (Xerophytes)

वह पौधे जो उच्च तापमान एवं मृदा में पानी की कमी वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं, उन्हें मरुद्भिद (Xerophytes) कहते हैं। इस तरह के क्षेत्रों को शुष्क आवासीय क्षेत्र कहा जाता है और यह मरुस्थल (desert), उष्ण सूखे क्षेत्रों (hot arid zones), बालूयुक्त पहाड़ियों (Sandy hills) आदि वाले होते हैं। यह शब्द, Xeros का अर्थ dry तथा phyton का अर्थ पादप (plants) होता है इन दोनों से मिलकर बना है।

2.2.2.1 मरुद्भिद पौधों के विशिष्ट लक्षण
(Characteristics Features of Xerophytes)

टिप्पणी

1. इन पौधों के बाहय त्वचा मे उपत्वचा (cuticle) पायी जाती है।
2. मूल तंत्र सुविकसित होता है।
3. जड़ें बहुत गहराई तक भूमि में पानी ग्रहण करने के लिए प्रवेश करती है।
4. इन पौधों मे यांत्रिक (Mechanical) एवं सवंहनी ऊतक (Vascular tissue) उपस्थित होते हैं।
5. तने के अन्दर अन्तःकोशिकीय अवकाश छोटे आकार के होते है।
6. पत्तियों में रंध्र (stomata) धँसे (sunken) हुये होते है एंव निचली एपीडर्मिस पर पाये जाते है।
7. पत्तियाँ आकार मे छोटी, कुछ पौधों मे काँटों मे रूपान्तरित होती हैं। (चित्र क्र. 2.5)

2.2.2.2 मरुद्भिद पौधों का वर्गीकरण (Classification of Xerophytes)

मरुद्भिद पौधों को उनकी आकारिकी (Morphology), कार्यिकी (Physiology) एवं जीवन चक्र की पद्धति (Life cycle pattern) के आधार पर विभिन्न समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

1. **अल्पकालिक या शुष्कता पलायनी पौधे (Ephemerals or Drought Escaping Plants)**– इस श्रेणी में आनेवाले पौधों का जीवन चक्र छोटा एवं एकवर्षीय होता है और यह वर्षा ऋतु के समय फूल, फल तथा बीज बनाते हैं। वर्षा ऋतु के अन्त तक यह अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं। शुष्क मौसम आने पर यह बीज के रूप में रहकर इस खराब मौसम से बच जाते हैं। उदाहरण–आर्जीमोन मैक्सिकाना *(Argemone mexicana)* आदि।

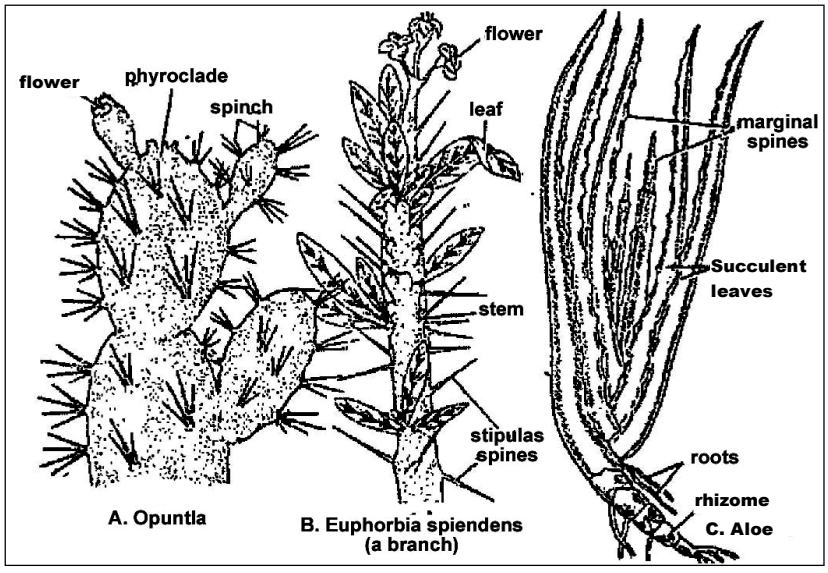

चित्र क्र. 2.5: मरुद्भिद पौधों मे आकारिकीय लक्षण

टिप्पणी

2. **शुष्कतारोधी अथवा माँसल पौधे (Drought Resisting or Succulent Plants)**– इस प्रकार के मरुद्भिद पौधे बहुवर्षीय (Perennial) होते हैं। ये पौधे बाह्य पर्यावरणीय शुष्कता (external environmental dryness) को सहन करने के लिए शारीरिक भाग मांसल बनाकर इसमें वर्षा के समय अत्यधिक मात्रा में जल को संग्रहित करके रखते हैं। इसलिए इन पौधों को शुष्कतारोधी या माँसल पौधे कहा जाता है। यह पौधे तीन प्रकार से जल संग्रहण प्रदर्शित करते हैं।

(अ) माँसल तने (Succulent stem) के रूप में, उदाहरण– नागफनी *(Opuntia)*, यूफोर्बिया सप्लेन्डेन्स *(Euphorbia splendence)*।

(ब) माँसल पत्ती (Succulent Leaves), उदाहरण– ब्रायोफिलम *(Bryophyllum)*, ऐलोय *(Aloe)*।

(क) माँसल जड़ें (Succulent roots), उदाहरण – सतावर *(Asparagus)*

इस प्रकार के पौधों की जड़ें मृदा में तन्तुवत होती है। पौधे के विभिन्न भाग ह्रासित (reduced) होते हैं। पत्तियाँ काँटों (spines) में रूपांतरित (modified) हो जाती है। उदाहरण– नागफनी, इस पौधे का तना हरा, चपटा, गद्देदार होता है और CAM पथ के द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को सम्पन्न कराता है ऐसे तनों को पर्णाभ वृत्त **(Phylloclade)** कहते हैं। पत्तियाँ काँटों में रूपांतरित हो जाती है। रंध्र दिन में बन्द और रात्रि मे खुल जाते हैं। ऐस्पैरेगस में पर्णवृन्त (petiole), प्रकाश–संश्लेषण का कार्य करता है, इसे **क्लेडोड** कहते हैं। (चित्र क्र. 2.6)

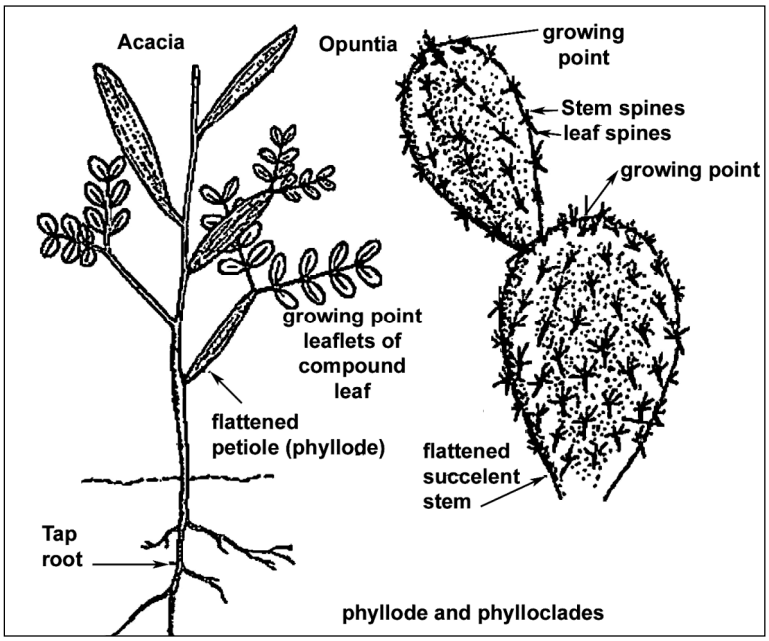

चित्र क्र. 2.6: फिल्लीड एवं पर्णाभ वृत्त

टिप्पणी

3. **शुष्कता सहिष्णु अथवा अमाँसल पौधे (Drought Enduring or Non-Succulent Plants)**– इस प्रकार के पौधे आन्तरिक (Internal) एवं बाह्य पर्यावरणीय शुष्कता को आसानी से सहन कर लेते हैं इसलिए इन्हें वास्तविक मरुद्भिद (True xerophytes) एवं यूजीरोफाइट्स (Euxerophytes) भी कहा जाता है। यह पौधे काष्ठीय वृक्ष (woody trees), काष्ठीय झाड़ियाँ (woody shrubs) अथवा शाक (herbs) होते हैं। इन पौधों की जड़ें भूमि में गहराई से जल अवशोषण करने के लिए अत्यधिक विकसित एवं लम्बी होती है। उदाहरण– आकरा *(Calotropis procera)*, बबूल *(Acacia nilotica)* आदि।

2.2.2.3 मरुद्भिद पौधों में आकारिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Morphological Responses or Adaptations in Xerophytic Plants)

(अ) जड़ों में (In roots)

1. इस प्रकार के पौधों की जड़ें अत्यधिक लम्बी होती हैं।
2. इन पौधों की जड़ों के अग्र भाग में मूलटोप (root cap) तथा जड़ में मूल रोम पाये जाते हैं।
3. कुछ शाकीय मरुद्भिद की जड़ें माँसल होकर जल को संग्रहित करने में मदद करते हैं, **उदाहरण– ऐस्पेरेगस *(Asparagus)***

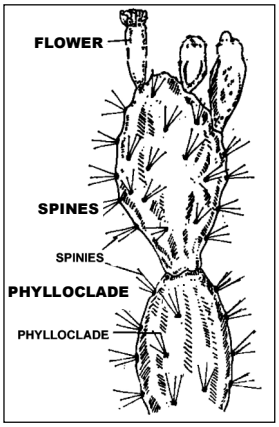

चित्र क्र. 2.7: मरुद्भिद पौधा–नागफणी

4. कुछ मरुद्भिद की जड़ों में अपस्थानिक कलिकाएँ (Adventitious buds) पायी जाती है, जो प्रजनन का कार्य करती है।

(ब) तनों में (In stem)

1. कुछ मरुद्भिद पौधों में तना भूमिगत (underground) होता है और भोजन संग्रह करने में एवं प्रजनन के कार्य में सहायता प्रदान करता है।
2. मुख्यतः मरुद्भिद पौधों के तने छोटे, काष्ठीय (woody), शुष्क, कठोर (Hard), मजबूत (Rigid) होते है।
3. सूर्य के तेज प्रकाश से अपने आप को बचाने के लिए इन पौधों के तने पर रोम (Hairs) एवं मोम (Wax) की परत भी पाई जाती हैं।
4. कुछ मरुद्भिद पौधों में तना हरा, मांसल, चपटा पत्तीनुमा हो जाता है, इसे फिल्लोक्लेड (Phylloclade) कहते हैं। तना प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) की क्रिया करके भोजन निर्माण करता है। (चित्र क्र. 2.7)

टिप्पणी

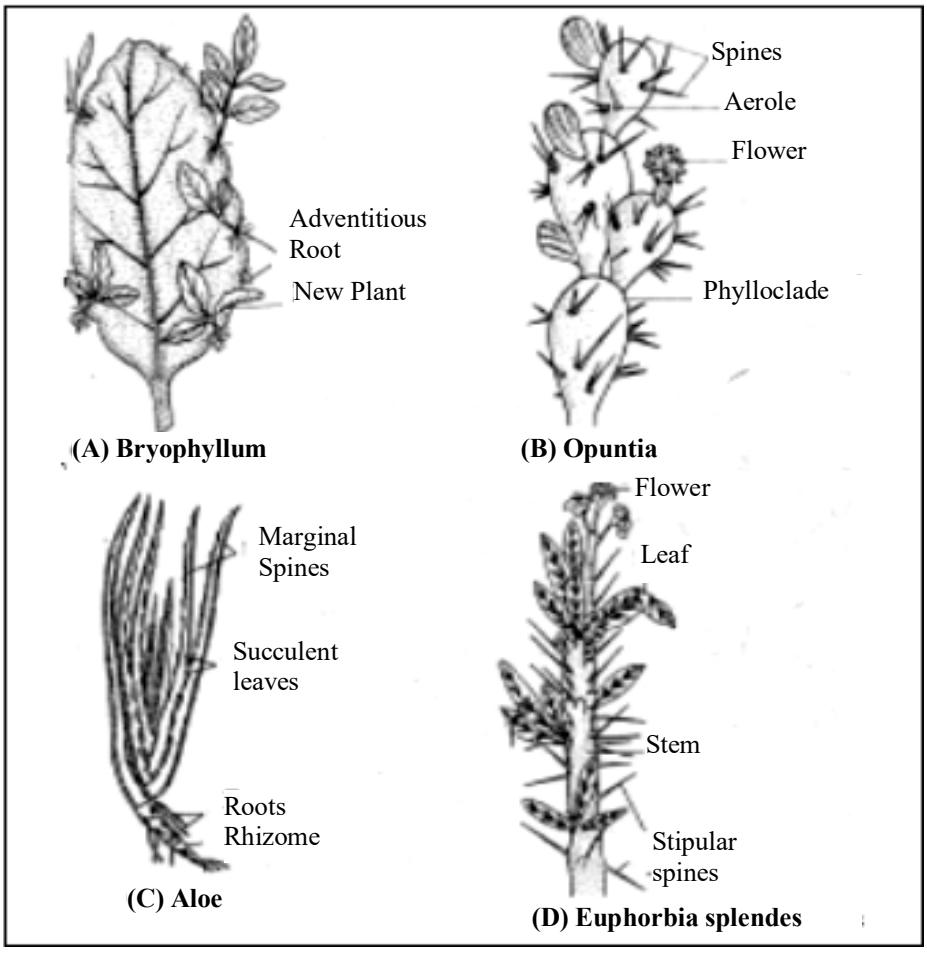

चित्र क्र. 2.8: रसदार मरूद्भिद

(स) पत्तियों में (in leaves)–

1. तना पत्तियाँ काटेनुमा हो जाती है, इस कारण से वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है। **उदाहरण–नागफनी *(Opuntia)*** (चित्र क्र. 2.7)
2. मरुद्भिद पौधों की पत्तियाँ आकार में छोटी होती है, जिससे अधिक वाष्पोत्सर्जन की क्रिया नहीं हो पाती। **उदाहरण–केजुराइना *(Casurina)*** (चित्र क्र. 2.8)
3. मरुद्भिद पौधों के कुछ प्रकार में पर्णवृन्त (Petiole) चपटा होकर प्रकाश–संश्लेषण का कार्य करता है। इसे फिल्लोड (phyllode) कहते हैं। **उदाहरण–अकेसिया *(Acacia).*** (चित्र क्र. 2.9)

टिप्पणी

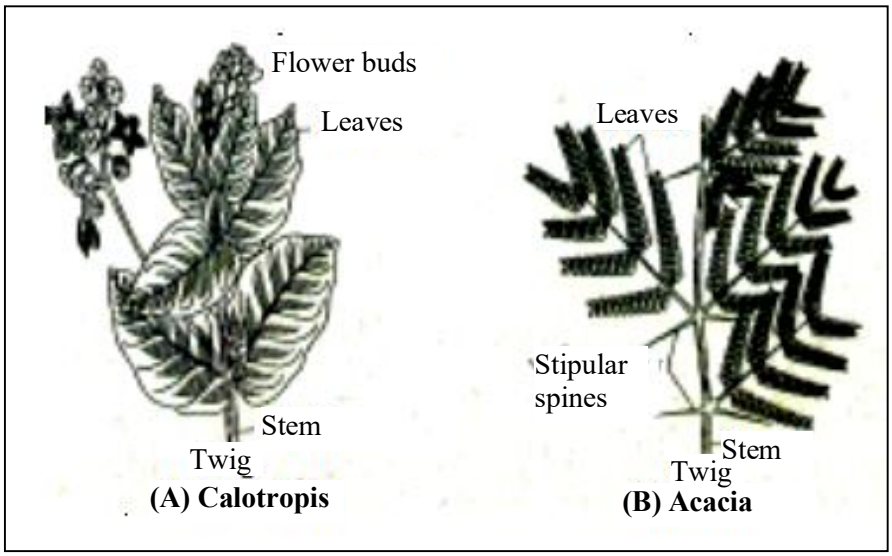

चित्र क्र. 2.9: गैर–रसदार बारामासी मरूद्भिद पौधे

4. कुछ पौधों की पत्तियाँ मोटी, गद्देदार एवं मांसल होती हैं, जो पौधों को अधिक मात्रा में जल संचित करने में सहायता प्रदान करती हैं।
5. मरुद्भिद पौधों के कुछ प्रकार में अनुपत्र (stipules) रूपांतरित होकर काँटे बन जाते हैं । **उदाहरण– बेर *(Zizyphus jujuba)***
6. कुछ मरुद्भिद पौधों की पत्तियाँ चमकदार (shiny) होती हैं और प्रकाश को परावर्तित करने में सहायता करती है। **उदाहरण– कनेर**

2.2.2.4 मरुद्भिद पौधों में शारीरिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Anatomical Responses or Adaptations in Xerophytic Plants)

1. मरुद्भिद पौधों के तने तथा पत्तियों की बाह्यत्वचा के ऊपर क्यूटिकल (cuticle) की मोटी परत पायी जाती है।
2. कुछ मरुद्भिद पौधों की एपिडर्मिस बहुस्तरीय (multilayered) होती है। एपिडर्मिस में लिग्निन भी उपस्थित रहता है।
3. एपिडर्मिस की परत के ऊपर रोम पाये जाते हैं, जो सूर्य की तेज रोशनी को इस परत पर सीधे नहीं पड़ने देते।
4. पत्तियों की निचली एपीडर्मिस पर धँसे हुए स्टोमेटा पाए जाते हैं। जिनकी गुहाओं में रोम पाये जाते हैं।
5. मोटी भित्ति वाली स्क्लैरेनकायमी कोशिकाओं से बनी हुई हाइपोडर्मिस (Hypodermis) होती है, जो आंतरिक ऊतकों को सूर्य के तीव्र प्रकाश से सुरक्षित रखती है और जल के वाष्पीकरण को भी रोकती है।

टिप्पणी

6. पत्तियों में उपस्थित मीजोफिल, पैलिसेड ऊतक (Palisade tissue) एवं स्पंजी ऊतक (Spongy tissues) में भिन्नत होता है।
7. तने के वल्कुट (cortex) में क्लोरेनकाइमा (chlorenchyma) उपस्थित रहता है।
8. ऊतकों में अन्तर कोशिकीय अवकाश (Intercellular spaces) या तो अनुपस्थित होती है या आकार में छोटी होती हैं।
9. यांत्रिक ऊतक (Mechanical tissue) उपस्थित रहते हैं। इनसे शरीर को मजबूती प्राप्त होती है।
10. दारु (Xylem) एवं फ्लोएम पोषवाह (phloem), दोनों संवहनी ऊतक पूर्ण रूप से विकसित होते हैं।

कनेर (नीरियम) पत्ती की खड़ी काट (Nerium: T.S. of Leaf) –

इस मरुद्भिद पौधे की पत्ती की एपीडर्मिस के ऊपर मोटी क्यूटिकल की परत पायी जाती है। एपीडर्मिस की निचली सतह पर धँसे हुए स्टोमेटा पाये जाते हैं। मीजोफिल पेलीसेड तथा स्पंजी ऊतक में भिन्नित रहता है। स्पंजी पैरेन्काइमा की कोशिकाओं में बड़े आकार के अन्तरकोशिकीय अवकाश पाए जाते हैं। पत्ती के मिडरिब (midrib) भाग में एक बड़ा संवहन बण्डल पाया जाता है जबकि अनेक छोटे संवहन बण्डल समान्तर क्रम में विन्यस्त रहते हैं। प्रत्येक संवहन बण्डल कन्जोइण्ट, कोलेटरल एवं बन्द (Closed) होता है तथा चारों ओर से पैरेन्काइमेटस कोशिकाओं से बनी बण्डल शीथ (bundle sheath) द्वारा घिरा रहता है। (चित्र क्र. 2.10)

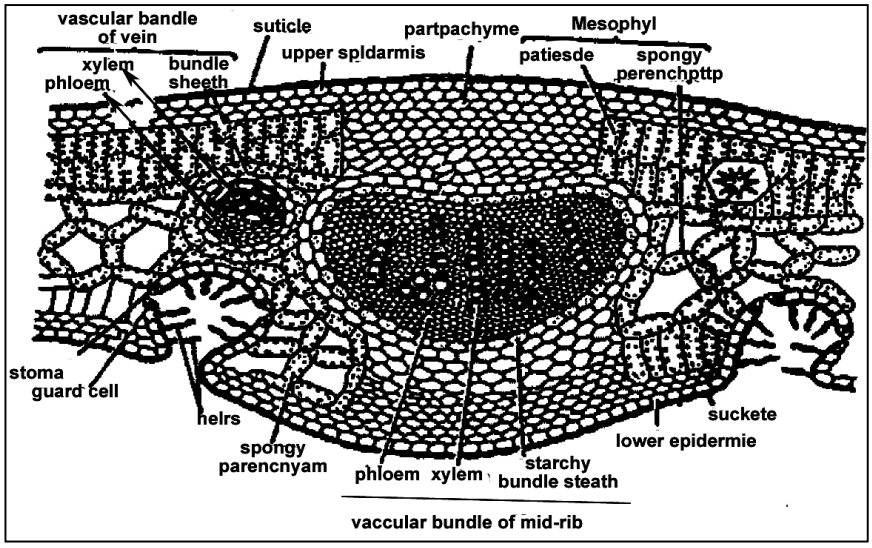

चित्र क्र. 2.10: निरीयम पत्ती की काट

2.2.2.5 मरुद्भिद पौधों की कार्यिकीय अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Physiological Adaptations of Xerophytes)

टिप्पणी

1. मरुद्भिद पौधों में अधिक परासरण दाब (OP) पाया जाता है जिसके फलस्वरूप निर्जलीकरण नहीं हो पाता है।
2. इस प्रकार के पौधे में पालीसैकेराइड्स जैसे सेल्युलोज (Cellulose), वसा, सुबेरिन (Suberin), क्यूटिन (Cutin) आदि की संश्लेषण दर अधिक होती है।
3. इन पौधों के कोशिका द्रव्य की सान्द्रता (Concentration) अधिक होती है। इनकी कोशिकाएँ अधिक पारगम्यता (Permeability) प्रदर्शित करती है।
4. मरुद्भिद पौधों में पूर्वकालिक पुष्पन एवं फलन होता है।
5. इन पौधों में C_4 पथ पाया जाता है। इन पौधों में उच्च ताप पर प्रकाश–संश्लेषण की दर उच्च रहती है और यह कम जल का उपयोग करते हैं।
6. मरुद्भिद पौधों में केटेलेज (Catalase), एमाइलेज (Amylase), पर–ऑक्सीडेज (Peroxidase), प्रोलीन (Proline) नामक अमीनो अम्लों की अधिकता पायी जाती है।
7. इन पौधों में ताप प्रधान प्रोटीन्स (heat shock proteins) पाये जाते हैं। इन प्रोटीन्स को चेपरोनिन्स (Chaperonins) कहा जाता है।
8. कई मरुद्भिद पौधों में रात्रि में रन्ध्र (Stomata) खुलते हैं और वायुमण्डल में उपस्थित O_2 को अवशोषित कर विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्लों का निर्माण करते हैं। दिन में इन कार्बनिक अम्लों का ऑक्सीकरण (Oxidation) होता है और CO_2 उत्पन्न होती है जो भोजन निर्माण के लिए प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया में उपयोग हो जाती है। इन पौधों में दिन के समय रन्ध्र बन्द रहने पर जल की हानि नहीं हो पाती है।

2.2.3 लवणोद्भिद पौधे (Halophytes)

कुछ स्थानों मे लवणों की सान्द्रता बहुत अधिक होती है। इन स्थानों पर उगने वाले पौधों को **लवणोद्भिद** पौधे (Halophytes) या मैग्रूंव पौधे या मैग्रूंव वनस्पति कहते है। ऐसे स्थानों की मृदा शुष्क होती हैं और दलदलों में पायी जाती है। भारत में कोलकाता के पास हुगली नदी एवं समुद्र के मुहाने पर स्थित भाग में पाये जाते है इन्हे सुन्दरबन कहते है। यहाँ पर पाये जाने वाले पौधे राइजोफोरा *(Rhizophora)*, ऐकेन्थस *(Acanthus)*, ऐविसीनिया *(Avicenia)* आदि होते है। इन पौधों मे तने के निचले भाग से मजबूत जड़े निकलती है जिन्हे अवस्तम्भी स्कम्भ मूल (stilt prop roots) कहते है।

खनिज लवण अधिक एवं ऑक्सीजन की कमी के कारण इन पौधों की जड़े दलदल से बाहर आती है। इन्हें श्वसन मूल (Respiratory roots) या न्यूमेटोफोर (Pneumatophores) कहते है। (चित्र क्र. 2.11, 2.12, 2.13)

टिप्पणी

इन पौधों मे बीज फल के अन्दर रहते हुए ही अपने मातृ पौधे के उपर ही अंकुरण प्रारम्भ कर देते है और मातृ पौधे से ही भ्रूण पोषण प्राप्त करता रहता है। इसे विविपैरी (Vivipary) कहते है।

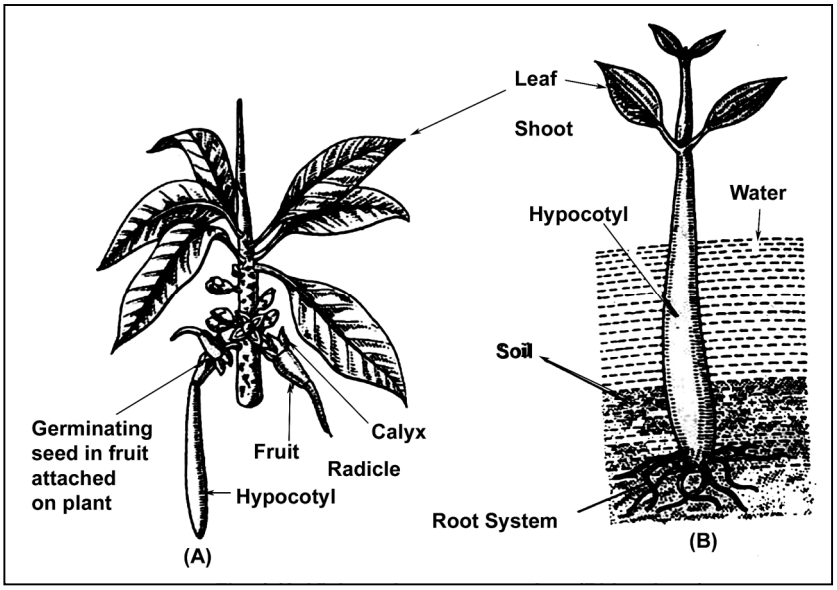

चित्र क्र. 2.11: लवणोद्भिद में विविपैरी

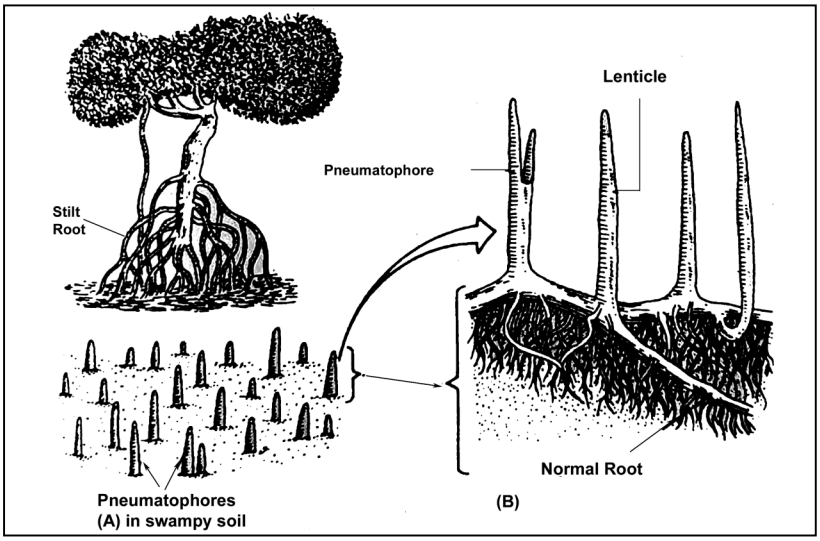

चित्र क्र. 2.12: (A) लवणोद्भिद में न्यूमेटोफोर (B) दलदली क्षेत्र

टिप्पणी

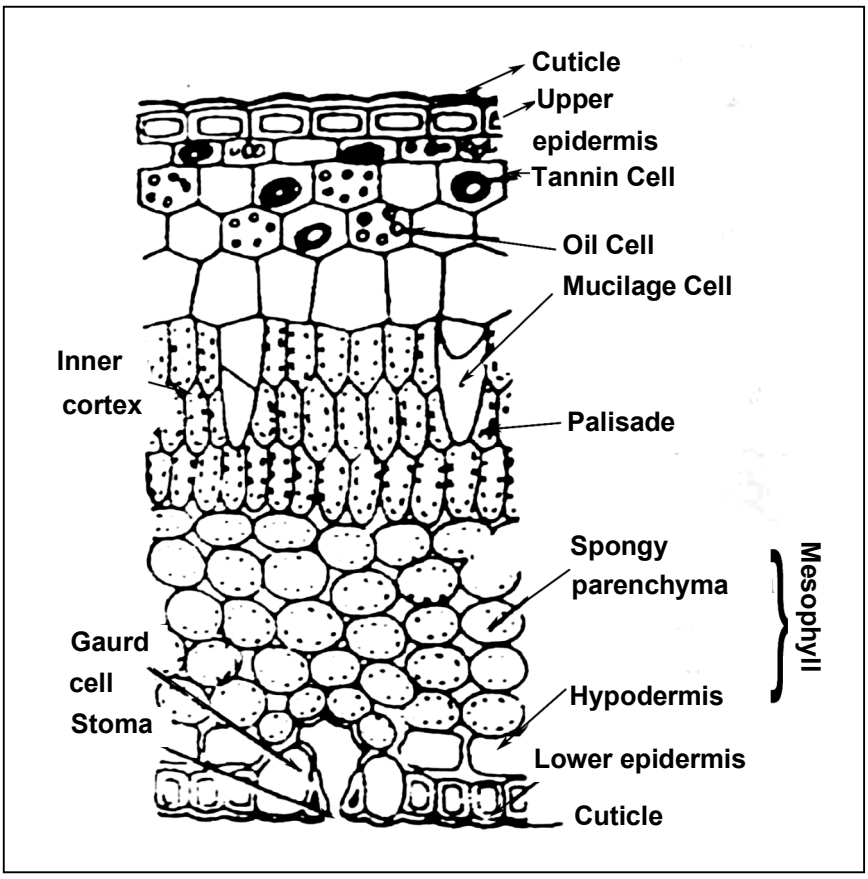

चित्र क्र. 2.13: राइजोफोरा : पत्ति का T.S.

यह पौधे मे मरूद्भिद लक्षण प्रदर्शित करते हैं। इनका तना मांसल, पत्तियाँ छोटी, मोटी एवं कटीली होती हैं।

अपनी प्रगती जाँचिए Check Your Progrss)

1. नागफनी में फिल्लोक्लेड रूपान्तरण है –

   (अ) तना का (ब) पत्ती का

   (स) जड का (द) उपर्युक्त सभीं

2. वायवीय श्वसन मूलें या न्यूमेटोफोर पाये जाते हैं–

   (अ) जलीय पौधों में (ब) मरूद्भिद पौधों में

   (स) समोद्भिद पौधों में (द) दलदली पौधों में

3. धँसे हुए रन्ध्र पाये जाते हैं –

   (अ) जलीय पौधों में (ब) मरूद्भिद् पौधों में

   (स) समोद्भिद पौधों (द) उपर्युक्त सभी में

टिप्पणी

4. कम विकसित संवहन बण्डल पाए जाते हैं –

(अ) जलीय पौधों में (ब) मरूद्भिद् पौधों में

(स) समोद्भिद पौधों में (द) उपर्युक्त सभी में

5. मुक्त प्लावी पौधों का उदाहरण हैं –

(अ) ट्रापा (ब) इकॉर्निया

(स) उपर्युक्त दोनों (द) उपर्युक्त कोई नहीं

2.3 पारिस्थितिक अनुकूलनः तापमान तथा प्रकाश के लिए पादपों में आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय अनुक्रियाएँ (Ecological Adaptations: Morphological, Anatomical and Physiological Responses of Plants to Temperature and Light)

2.3.1 तापमान के प्रति पादप अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Plant Responses or Adaptations to Temperature)

पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीवधारियों की वृद्धि एवं उनमें होने वाली प्रक्रियाएँ तापक्रम एवं प्रकाश काल पर आधारित होती हैं। यह महत्वपूर्ण जलवायवीय कारक होते हैं और पौधों की रासायनिक अभिक्रियाओं पर नियंत्रण रखते हैं।

तापमान के आधार पर पृथ्वी पर पादपों का वितरण निम्न चार प्रकार से किया जा सकता है–

1. **मेगाथर्म्स (Megatherms)**– इस प्रकार पौधों को अपने परिवर्धन एवं वृद्धि के लिए पूरे वर्ष स्थिर उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के पौधे उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (tropical zones) में पाए जाते हैं।
2. **मध्यतापीय (Mesotherms)**– इस प्रकार के पौधों को वर्ष के कुछ समय ही निम्न तापमान की आवश्यकता पड़ती है। यह पौधे उष्ण कटिबंधीय तथा उप–उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं।
3. **माइक्रोथर्म्स (Microtherms)**– इस प्रकार के पौधों को वर्ष भर निम्न तापमान की आवश्यकता पड़ती है। यह पौधे 3600 मीटर ऊँचाई (attitude) वाले प्रदेशों में पाये जाते हैं।
4. **हिकिस्टोथर्म्स (Hekistotherms)**– इस प्रकार के पौधों को बहुत कम तापमान की आवश्यकता होती है। यह 4,800 से 3,600 मीटर की ऊँचाई वाले शीतोष्ण (temperate) प्रदेशों में पाये जाते हैं।

तापमान में होने वाले उतार–चढ़ावों को सहन करने के लिए पौधों में विभिन्न प्रकार के आकारिकीय (Morphological) एवं प्रकार्यात्मक कार्यिकीय (Physiological)

अनुकूलन (Adaptations) उत्पन्न करते हैं जिससे वे उस वातावरण में अच्छे से वृद्धि कर सकें।

टिप्पणी

कुछ प्रमुख अनुकूलन इस प्रकार हैं–

1. परासरण सान्द्रता में वृद्धि (Increase in osmotic concentration), कम ताप से अपने आप को सुरक्षित रखने के लिए कुछ पौधे अपनी परासरण सान्द्रता में वृद्धि कर लेते हैं।
2. अपना जीवन चक्र कायम रखने के लिए पौधे कम एवं अधिक तापमान से अपने आपको पूरी तरह नष्ट होने से बचाने के लिए बीजाणु, सिस्ट, बीज आदि का निर्माण करते हैं।
3. प्रतिकूल तापमान पर पौधों के बीज प्रसुप्त अवस्था में चले जाते हैं। जब अनुकूल तापमान इन बीजों को प्राप्त होता है, तो वह अंकुरित होकर नये पौधे का निर्माण करते हैं।

2.3.1.1 तापकालिता (Thermoperodicity)

पौधों की आकारिकीय, शारीरिकीय, प्रकार्यात्मक एवं प्रजनन प्रक्रियाओं को तापमान प्रभावित करता है। पौधों में पुष्पन (flowering) की क्रिया के लिए समुचित तापमान होना बहुत जरूरी होता है। पौधों का तापमान में होने वाले विभिन्न उतार–चढ़ाव के प्रति अनुक्रिया प्रदर्शित करना तापकालिता (Thermoperiodism) अथवा थर्मोपिरियोडिसिटी (Thermoperiodicity) कहलाती है। एकवर्षीय पौधों में वृद्धि शरद ऋतु के प्रारंभ में होती है तथा ग्रीष्म ऋतु में पुष्पों का निर्माण होता है। द्विवर्षीय पौधों (Biennial plants) में प्रथम वर्ष में कायिक वृद्धि (Vegetative growth) होती है तथा कम तापमान वाली शीत ऋतु के बाद इन पौधों में पुष्पन की क्रिया होती है। कुछ पौधों में कम तापमान उपचार (low temperature treatment) के पश्चात् ही पुष्पन देखा जाता है।

2.3.1.2 बसन्तीकरण (Vernalization)

बसन्तीकरण (Vernalization) शब्द का उद्‌गम रूसी भाषा के वेरोवाइजेशन **(Varovization)** शब्द से हुई है। यह नाम सर्वप्रथम लाइसेन्को **(Lysenko, 1938)** ने निम्न ताप उपचार द्वारा हुई पुष्पन की क्रिया पर दिया था।

कुछ ऐसे पौधे भी पाये जाते हैं, जिन्हें पुष्पन के लिए एक निश्चित अवधि के निम्न तापमान की आवश्यकता होती है। अपने प्रयोगों के द्वारा यह बसन्तीकरण सर्वप्रथम किलपर्त **(Kilpart, 1857)** ने गेहूँ के पौधों पर कार्य करते समय दर्शाया था। इन्होंने अपने प्रयोगों के द्वारा गेहूँ की शरद किस्म को कम तापमान (0 से 50^0C) पर उपचारित करके बसन्त किस्म में परिवर्तित किया था। पेटकस राई की एकवर्षीय एवं द्विवर्षीय प्रजातियाँ पाई जाती है। बसन्त प्रजाति एकवर्षीय रोजेट वृद्धि वाली होती है। शरद प्रजाति द्विवर्षीय होती हैं पर जब बीज अवस्था में इस पर बसन्तीकरण किया जाता है तो यह बसन्त प्रजाति की तरह व्यवहार करने लगती है। (चित्र क्र. 2.14)

टिप्पणी

पौधों के प्रकार पर बसन्तीकरण का स्थान अलग–अलग होता है। एकवर्षीय पौधों के अंकुरित बीजों पर बसन्तीकरण किया जाता है। द्विवर्षीय एवं बहुवर्षीय पौधों में शीत उपचार का स्थल उनके तने, पत्ति आदि पर उपस्थित वृद्धि अग्रक (growing apices) या अग्रस्थ कलिकाएँ (apical buds) होती है।

लाइसेन्को **(Lysenko, 1934)** के अनुसार प्रकाश (light) एवं तापमान पौधों की पुष्पन क्रिया पर प्रभाव डालते है। प्रकाश के कारण पौधों में फोटोफेज (Photophase) पायी जाती हैं। बसन्तीकरण (Vernalization) के प्रभाव से पौधों में थर्मोफेज (Thermophase) की शुरूआत होती है। शीत उपचार के फलस्वरूप एक हार्मोन वर्नेलिन (Vernalin) का निर्माण होता है, जो पुष्पन हार्मोन फ्लोरिजन (florigen) के द्वारा पुष्पन की क्रिया करता है।

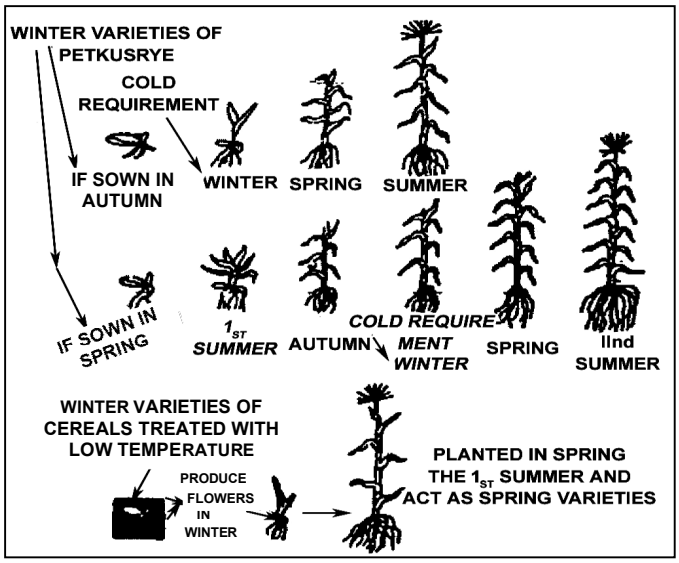

चित्र क्र. 2.14: बसन्तीकरण शरद पेटक्स राई प्रजाति में

लैंग एवं मेल्चर्स (Lang and Melchers, 1947) – के अनुसार पौधों को शीत उपचार देने पर A नामक पदार्थ का निर्माण होता है जो फिर ताप सहिष्णु पदार्थ (Thermolabile substance) B में परिवर्तित हो जाता है। यह पदार्थ B सामान्य तापमान में एक स्थायी उत्पाद बनाता है, C जो वर्नेलिन हार्मोन होता है और यह फ्लोरिजन के साथ पौधे में पुष्पन कराता है। पदार्थ B को अधिक तापमान मिलने पर यह D नामक पदार्थ बनाता है जिससे पुष्पन नहीं हो पाता है। इसे डीवर्नेलाइजेशन (Devernalization) कहते हैं।

बसन्तीकरण को कई कारक प्रभावित करते हैं, जैसे की पौधे की आयु, पौधे के पास ऑक्सीजन (Oxygen) एवं जल (Water) की उपस्थिति तथा कम तापमान की अवधि।

आज के समय में बसन्तीकरण का बहुत महत्व देखा गया है। इस विधि का इस्तेमाल करके एकवर्षीय पौधों को द्विवर्षीय पौधों में आवश्यकता के अनुसार बदला जा सकता है। बसन्तीकरण होने के बाद पौधे में शुष्कता प्रतिरोधकता बढ़ जाती है। क्लोरोप्लास्ट की मात्रा अधिक होने के कारण अधिक प्रकाश संश्लेषण

(Photosynthesis) की क्रिया होती है, जिससे अधिक भोजन का निर्माण होता है और पौधा एवं उससे बनने वाले बीज अच्छे और स्वस्थ होते हैं।

टिप्पणी

2.3.2 प्रकाश के प्रति पादप अनुक्रियाएँ या अनुकूलन (Responses or Adaptations of Plants to Light)

प्रकाश एक महत्वपूर्ण कारक होता है, जिसके कारण पौधों में वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश–संश्लेषण आदि प्रमुख कार्यिकीय क्रियायें पूरी होती हैं। हर पौधे की प्रकाश आवश्यकता अलग होती है। पौधे प्रकाश की उपलब्धता के आधार पर कई अनुकूलन करते हैं। पौधों को प्रकाश की आवश्यकता के आधार पर दो प्रकारों में विभाजित किया गया है–

1. हेलियोफाइट्स / प्रकाशरागी या आतपोद्भिद

हैलोफाइट्स (Heliophytes) या फोटोफिलस **(Photophilous)** ऐसे पोधे होते हैं, जिनकों अच्छी वृद्धि के लिये तीव्र प्रकाश की आवश्यकता होती है। उदाहरण – सूर्यमूखी, एकेशिया, पापुलँस आदि। कुछ आतपोद्भिद (Heliophytes) की जातियाँ छाया मे अच्छी प्रकार से उगती हैं इन्हें विकल्पी छायापोद्भिद (Facultative Sciophytes) कहते हैं कुछ आतपोद्भिद पौधे तीव्र प्रकाश में ही उगते है, उन्हे अविकल्पी आतपोद्भिद (Obligate Heliophytes) कहा जाता है।

2. सायोफाइट्स / छायारागी (Sciophytes/Scotophilous) या छायापोद्भिद

छायारागी सायोफाइट्स (Sciophytes) या छायापोद्भिद या स्कोटोफिलस (Scotophilous)– ऐसे पौधे होते हैं, जिनको वृद्धि के लिये कम तीव्रता वाले प्रकाश की आवश्यकता होती है। छायारागी की कुछ जातियाँ तीव्र प्रकाश को भी सहन कर सकती है, इन्हें वैकल्पिक आतपोद्भिद् (facultative heliophytes) कहा जाता है। ऐसे पौधे जो तीव्र प्रकाश नहीं सहन कर पाते, उन्हें पूर्ण छायारागी पौधे (Obligate Sciophytes) कहा जाता है। उदाहरण टैक्सस *(Taxus)*, ऐबीज *(Abiese)*।

फोटोफिल्स / प्रकाशरागी एवं स्कोटोफिल्स / छायारागी पौधों में अंतर (Differencs between photophilous and scotophilous plants)

	फोटोफिल्स या प्रकाशरागी	स्कोटोफिल्स या छायारागी
1.	इन पौधों को तीव्र प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है।	इन पौधों को अल्प प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है।
2.	पौधे छोटे होते हैं इस कारण से इनकी पर्व संधियाँ भी छोटी होती है।	पौधे लम्बे होते हैं इसलिए इनकी पर्व संधियाँ लम्बी होती हैं।
3.	इनकी पत्तियाँ छोटी संकरी होती है।	इनकी पत्तियाँ चौड़ी होती हैं।
4.	पत्तियाँ समपार्श्विक (Isolateral) होती है।	पत्तियाँ पृष्ठाधारी (Dorsiventral) होती हैं।

टिप्पणी

5.	पत्तियों की बाह्यत्वचा मोटी एवं क्यूटिकल युक्त होती है।	पत्तियों की बाह्यत्वचा पतली क्युटिकल विहीन होती है।
6.	बाह्म त्वचा में क्लोरोफिल अनुपस्थित रहता है।	बाह्म त्वचा में क्लोरोफिल उपस्थित रहता है।
7.	पत्तियों की निचली सतह पर रंध्रों की संख्या अधिक होती हैं।	पत्तियों की दोनों सतह पर रन्ध्रों की संख्या समान होती है।
8.	इन पौधों में रंध्र धँसे (Sunken) हुए होते हैं।	इन पौधों के रंध्र सामान्य प्रकार तथा पत्ती की सतह पर पाये जाते हैं।
9.	इन पौधो में पेलीसेड ऊतक विकसित एवं स्पंजी ऊतक अल्पविकसित होता है।	इन पौधों में पेलीसेड ऊतक अल्पविकसित एवं स्पंजी ऊतक विकसित होता है।
10.	इन पौधों में अन्तरकोशिकीय अवकाश छोटे होते हैं।	इन पौधों में अन्तरकोशिकीय अवकाश बड़े होते हैं।
	उदाहरण– सूर्यमुखी, पापुलस आदि।	**उदाहरण**– टेक्सस, ऐबीज आदि।

2.3.2.1 दीप्तिकालिता (Photoperiodism)

आवृत्तबीजी पौधों (Angiospermic plants) में पुष्पन की क्रिया के बाद फलों एवं बीजों का निर्माण होता है। पौधों में पुष्पन की क्रिया के लिए दिन की निश्चित लम्बाई की आवश्यकता होती है। पुष्पन की क्रिया के लिए आवश्यक प्रकाश की समयावधि अथवा दिन और रात की आपेक्षिक समयावधि जो पुष्पन की क्रिया के लिए आवश्यक होती है, उसे दीप्तिकाल (Photoperiod) कहते हैं। पौधों का दीप्तिकाल (Photoperiod) के प्रति अनुक्रिया (response) प्रदर्शित करना ही दीप्तिकलिता (Photoperiodism) कहलाता है। सर्वप्रथम **गार्नर** और **एलार्ड (Garner and Allard, 1920)** ने तम्बाकू के पौधे की एक किस्म मैरीलैण्ड मैमोथ *(Maryland mammoth)* पर अध्ययन करने पर यह पाया कि पुष्पन के लिए पौधों को सभी आवश्यकताओं के साथ प्रकाश की उचित अवधि भी देना जरूरी होता है। उन्होंने इस अनुक्रिया को दीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहा। (चित्र क्र. 2.15)

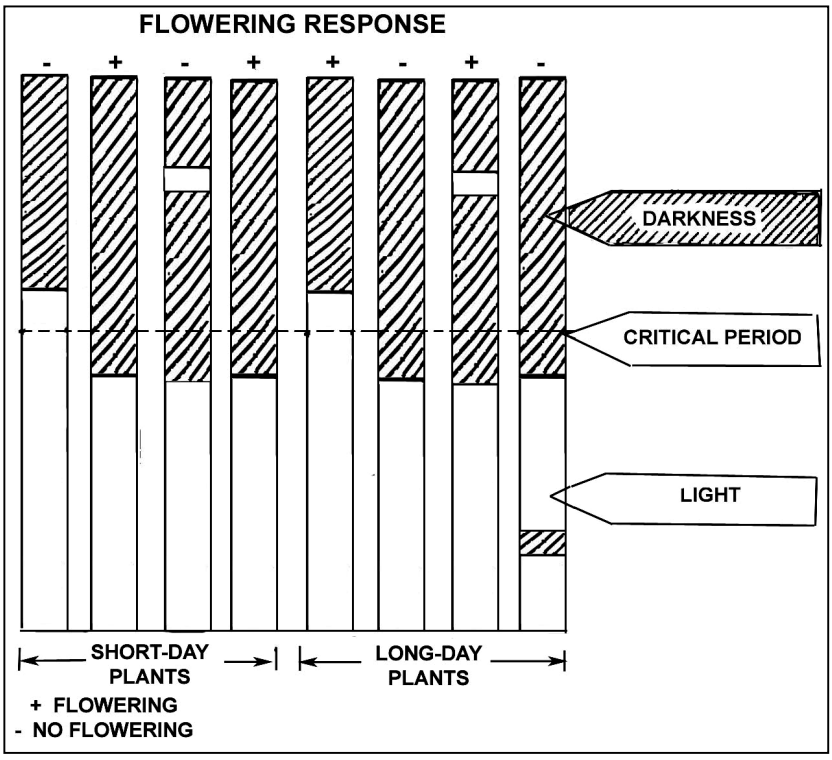

चित्र क्र. 2.15: प्रकाश एवं अन्धकार अवधि का पुष्पन पर प्रभाव

I. दीप्तिकाल के आधार पर पौधों को विभिन्न तीन समूहों में विभाजित किया

1. अल्प प्रदीप्तकाली पौधे या छोटे दिन वाले पौधे (Short Day Plants = SDP)
2. लम्बे दिन वाले पौधे (Long Day Plants = LDP)
3. दिवस निरपेक्ष पौधे (Day Neutral Plants = DNP)
4. मध्यवर्ती प्रदीप्तकाली पौधे (Intermediate Day Plants)
5. अल्प–दीर्घ प्रदीप्तकाली पौधे (Short day-Long day Plants-SDLDP)
6. दीर्घ–अल्प प्रदीप्तकाली पौधे (Long day-Short day Plants LDSDP)

1. **अल्प प्रदीप्तकाली पौधे या छोटे दिन वाले पौधे (Short Day Plants)**– इस प्रकार के पौधों को पुष्पन क्रिया के लिये अपेक्षाकृत दीप्तिकाल (8 से 10 घंटे) एवं 14 से 16 घण्टे की अन्धकार अवस्था की आवश्यकता होती है। इन्हें अल्प प्रदीप्तिकालीन पौधे अथवा लम्बी रात्रि वाले पौधे **(Long night plants)** भी कहते हैं। उदाहरण–तम्बाकू *(Nicotiana tobaccum)*, कपास *(Gossypium hirsutum)*। छोटे दिन वाले पौधे को अगर अंधकार या रात्रि की अवधि में सफेद या लाल रंग का प्रकाश अल्प समय के लिए दिया जाता है तो उनमें पुष्पन नहीं देखा जाता। इन पौधों को जब लाल

टिप्पणी

रंग के प्रकाश में अनावरित करने के पश्चात् दूरस्थ लाल **(Far red)** प्रकाश में अनावरित किया जाता है तब इनमें पुष्पन की क्रिया देखी जाती है। इन पौधों को दीर्घ रात्रि वाले पौधे **(Long night plants)** भी कहा जाता है।

2. **दीर्घ प्रदीप्तकाली या लम्बे दिन वाले पौधे (Long day Plants-LDP)**– इस प्रकार के पौधों को पुष्पन क्रिया के लिए दीप्तिकाल 12 घंटे से अधिक एवं छोटी रात्रि या अंधकार की आवश्यकता होती है। इन्हें दीर्घ प्रदीप्तिकालीन पौधे कहा जाता है। उदाहरण– गेहूँ *(Triticum aestivum),* मटर *(Pisum sativum)*। इन पौधों को अल्प रात्रि वाले पौधे **(Short night plants)** भी कहा जाता है।

3. **दिन उदासीन या दिवस निरपेक्ष पौधे (Day Neutral Plants)**– इस प्रकार के पौधों को पुष्पन के लिए विशेष दीप्तिकाल (Photoperiod) की आवश्यकता नहीं होती है। ये पौधे निरन्तर प्रकाश अथवा अन्धकार की दशा में भी पुष्पन की क्रिया प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण– सूर्यमुखी, टमाटर आदि।

4. **मध्यस्थ या मध्यवर्ती प्रदीप्तकाली पौधे (Intermediate Plants)**– इस प्रकार के पौधों को पुष्पन क्रिया के लिए 12 से 15 घंटे दीप्तिकाल की आवश्यकता पड़ती। इस निश्चत दीप्तिकाल से कम या ज्यादा होने पर इनमें पुष्पन की क्रिया नहीं होती। उदाहरण – एण्ड्रोपोगॉन *(Andropogon)*, मिकेनिया *(Michania)* आदि।

5. **अल्प–दीर्घ प्रदीप्तकाली पौधे (Short day–Long day Plant-SDLDP)** – कुछ पौधों को पुष्पन की प्रक्रिया सम्पन्न कराने हेतु दो प्रकार के दीप्तिकाल की आवश्यकता होती है। प्रारम्भ में अल्प दीप्तिकाल (Short photo period) और उसके बाद दीर्घ दीप्तिकाल (long photoperiod) की आवश्यकता होती है। अगर यह क्रम उल्टा हो जाये या इस तरह का दीप्तिकाल न प्राप्त हो तो इन पौधों में पुष्पन की क्रिया नहीं देखी जाती है। उदाहरण– कैन्डीटफट *(Iberis amara)* आदि।

6. **दीर्घ–अल्प दिवसीय पौधे (Long day-Short day Plants-LDSDP)**– इस प्रकार के पौधों को पहले दीर्घ दीप्तिकाल (long photoperiods) तथा उसके बाद लघु दीप्तिकाल (short photoperiods) की आवश्यकता होती है। इसके बिना या दीप्तिकाल उल्टा होने पर इन पौधों में पुष्पन नहीं होता। उदाहरण– रात की रानी *(Cestrum nocturnum),* अजूबा *(Bryophyllum)*।

II. **दीप्तिकालिक प्रेरण (Photoperiodic Induction)**– प्रत्येक पौधे को पुष्पन की क्रिया सम्पन्न करने के लिए निर्धारित दीप्तिकाल (appropriate photoperiod) कुछ दिनों के लिए अनावरित करवाना जरूरी होता है। ऐसे पौधों को कुछ समय के अन्तराल पर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रेरण चक्र

(Inductive cycle) प्राप्त होने पर उनमें पुष्पन होता है। इस प्रकार पुष्पन पर प्रेरण चक्रों (Inductive cycles) के प्रभाव को दीप्तिकालिक प्रेरण (photoperiodic induction) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर जैन्थियम स्ट्रामेरीयम *(Xanthium stramarium)* जो एक छोटे दिन वाला पौधा होता है। इसे पुष्पन के लिए दीप्तिकाल 15.5 घंटे एवं 8 घंटे की अंधकार की आवश्यकता पड़ती है। अगर इसे 16 घंटे का दीप्तिकाल एवं 8 घंटे का अंधकार प्रदान किया जाये तो यह पुष्पन प्रक्रिया नहीं प्रदर्शित करता। हालांकि एक बार 15.5 घंटे दीप्तिकाल एवं 8 घंटे का अंधकार प्राप्त हो जाने पर अगर इसे 16 घंटे दीप्तिकाल दिया जाये तो इसमें पुष्पन की क्रिया देखी जाती है। यह दीप्तिकालिक प्रेरण (Photoperiodic induction) के तहत होता है।

III. **दीप्तिकालिक उद्दीपनों को ग्रहण करना (Site of Perception for Photoinduction)**– वैज्ञानिकों **नॉट (Knott, 1934), चेलकयहन (Chailakhyan, 1936)** के अनुसार पौधों में दीप्तिकालिक उद्दीपनों (Photoperiodic stimulus) को ग्रहण करने (perception) का कार्य पत्तियों (leaves) के द्वारा होता है। अध्ययन द्वारा इन्होंने देखा कि अगर पौधे की सभी पत्तियाँ अलग कर दी जायें और उसके पश्चात् आवश्यक प्रेरण चक्र प्रदान किया जाये तो इस पौधे में पुष्पन नहीं देखा जाता। पौधे में केवल एक पत्ती उपस्थित होने पर आवश्यक दीप्तिकालिक प्रेरण चक्र दिये जाने पर पौधे मे पुष्पन की क्रिया पायी जाती है। अध्ययन द्वारा यह देखा गया कि पौधे की एक पत्ती को सही प्रेरण चक्र और बाकी सभी को गलत दीप्तिकालिक प्रेरण चक्र देने पर भी पुष्पन उस पौधे में देखा जाता है।

IV. **दीप्तिकालिक उद्दीपनों का स्थानांतरण (Transmission of Stimulus)** – अध्ययन द्वारा यह ज्ञात किया गया कि पत्तियों में दीप्तिकालिक प्रेरण चक्र (Photo inductive cycle) की अनुक्रिया स्वरूप एक रासायनिक पदार्थ का निर्माण होता है जिसे चेलकहयन (Chailakhyan 1936) ने **फ्लोरिजन** नाम दिया, फ्लोएम के द्वारा स्थानांतरित होकर पौधे के अग्र भागों में पहुँच जाता है तथा वहाँ पर पुष्प कलिकाओं (flower buds) के निर्माण को प्रेरित करता है। इन दीप्तिकालिक उद्दीपनों का स्थानांतरण पौधे की एक शाखा से दूसरी शाखा अथवा ग्राफ्टिंग द्वारा जोड़े गये एक पौधे से दूसरे पौधे तक होता है। (चित्र क्र. 2.16)

टिप्पणी

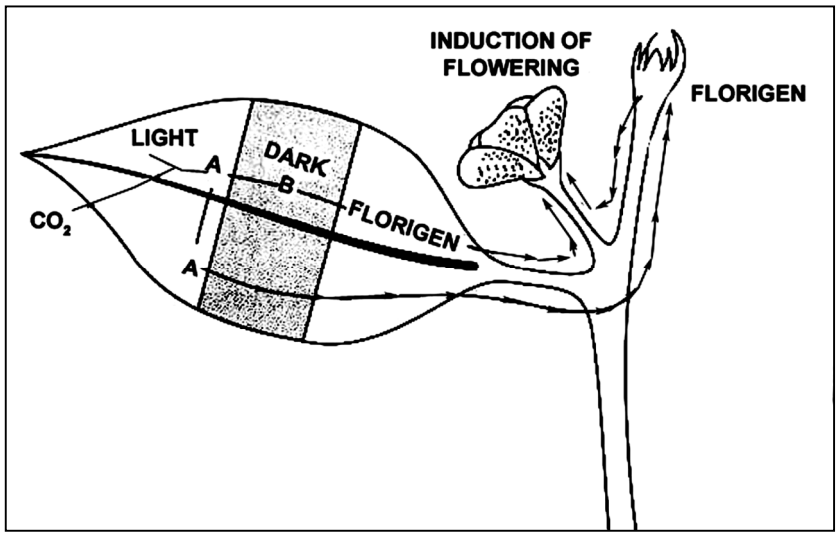

चित्र क्र. 2.16: दीप्तिकालिक उद्दीपनों को ग्रहण करना

V. फायटोक्रोम एवं पुष्पन (Phytochrome and Flowering) – विभिन्न प्रयोगों के द्वारा वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि छोटे दिन वाले पौधों को अंधकार की अवस्था में 660 nm वाली लाल प्रकाश को कुछ समय के लिए अनावरित किया जाता है तो उन पौधों में पुष्पन नहीं हो पाता। यदि इस पौधे में तुरन्त दूरस्थ लाल प्रकाश (far red light) 730 nm का प्रकाश डाला जाता है तो उस पौधे में पुष्पन प्रदर्शित होता है। **बोर्थविक** एवं उनके सहयोगियों ने **(Borthwick et al 1952)** ने इसे लाल–दूरस्थ लाल प्रकाश रीवर्सिबल फोटो–इंडक्शन नाम दिया।

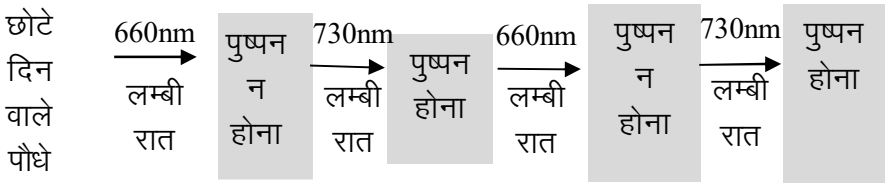

चित्र क्र. 2.17: फायटोक्रोम एवं पुष्पन

यह दो पदार्थों से मिलकर बना होता है–

1. क्रोमैटोफोर (Chromatophore) तथा
2. प्रोटीन (Protein)

1. क्रोमैटोफोर (Chromatophore)– क्रोमैटोफोर एक अचक्रीय (Non Cyclic) एवं खुली श्रृंखला वाला टेट्रापायरॉल (Open chain tetra pyrrol) होता है। प्रत्येक फायटोक्रोम में चार पायरॉल वलय (pyrol rings) एक पंक्ति मे पायी जाती है। तृतीय पायरॉल वलय वाले भाग मे क्रोमोफोर भाग प्रोटीन भाग से जुडा रहता है।

टिप्पणी

2. **प्रोटीन (Protein) फायटोक्रोम**– यह एक बिलिप्रोटीन होता है जो दो रूपों में पाया जाता–

   1. PR– यह फायटोक्रोम 660 nm तरंग दैर्ध्य वाले लाल प्रकाश को अवशोषित करता है। यह नीले–हरे रंग (Blue-green) का होता है।
   2. PFR– यह फायटोक्रोम 730 nm तरंग दैर्ध्य वाले दूरस्थ लाल प्रकाश को अवशोषित करता है। इसका रंग हल्का हरा (light green) होता है। यह दोनों रूप आपस में परिवर्तनशील (Interconvertible) होते हैं।

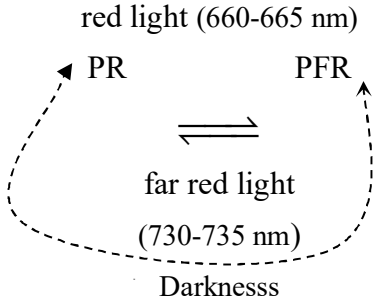

चित्र क्र. 2.18: फाइटोक्रोम वर्णक द्वारा लाल (660-665nm) सुदूर लाल (730-735nm) प्रकाश का अवशोषण तथा PR एवं PFR रूपों में परिवर्तन

PR form 660 nm वाले लाल प्रकाश (red light) को अवशोषित करके PFR Form में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार PFR form 730 nm वाले दूरस्थ लाल प्रकाश (far red light) को अवशोषित करके PR form में परिवर्तित हो जाता है।

VI. दीप्तिकालिता का महत्व (Importance of Photoperiodism)-

1. इस विधि के प्रयोग से किसान अपनी जरूरत के अनुसार एकवर्षी पौधों को द्विवर्षी में और द्विवर्षी पौधों को एकवर्षी पौधों में बदल सकता है। इससे इच्छानुसार फल–फूल प्राप्त कर सकता है।
2. दो अलग पौधों की जातियों में एक ही समय परागण एवं निषेचन को कराकर संकरण करके नई उन्नत किस्मों को प्राप्त किया जा सकता है।
3. आर्थिक महत्व वाले पौधों के लक्षणों में अच्छे परिवर्तन लाये जा सकते हैं। उदाहरण तम्बाकू में पुष्पन क्रिया को रोककर उन पौधों से बड़ी आकार की पत्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।
4. पौधों में बीज अंकुरण को प्रेरित करता है एवं सुषुप्तावस्था को नष्ट कर देता है।
5. आलू के पौधों पर अध्ययन करके यह देखा गया कि दीर्घ दीप्तिकाल मिलने पर इन पौधों से उत्पन्न हुए आलू के कन्द अनियमित आकार

के होते हैं, जबकि छोटे या कम प्रकाश अवधि दिये जाने पर पौधों से चिकने एवं सुडौल आलू प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

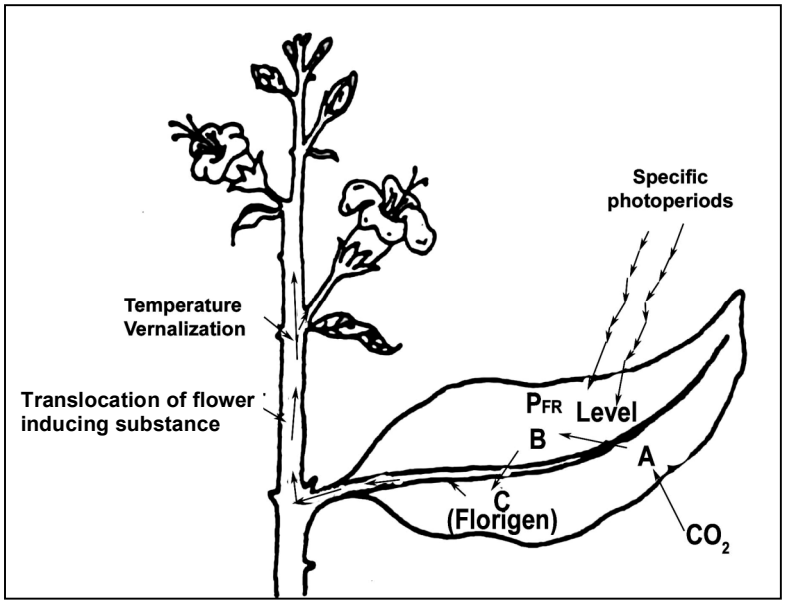

चित्र क्र. 2.19: (A) पुष्पन हार्मोन–फ्लोरिजेन

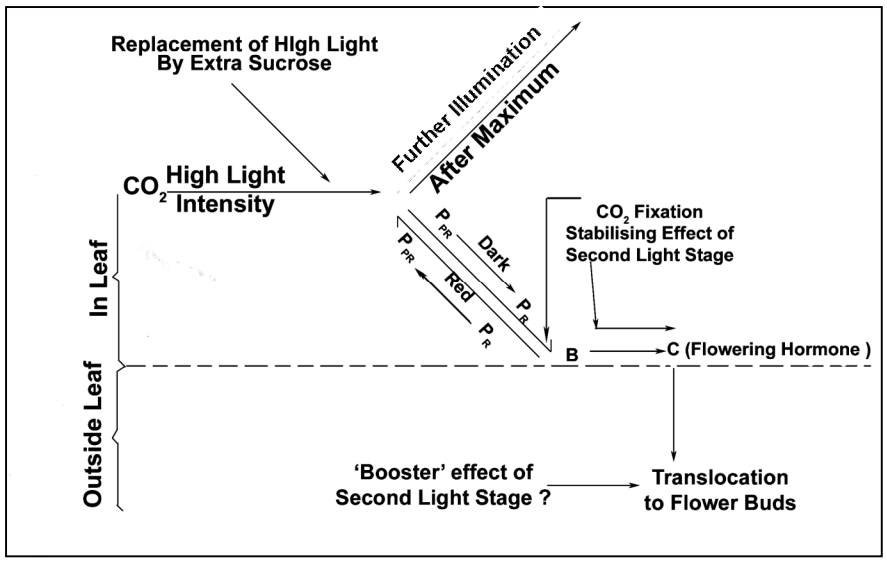

चित्र क्र. 2.19: (B) फ्लोरीजन निर्माण की अवस्थाएँ

VII. पुष्पन हार्मोन–फ्लोरिजेन (Flowering Hormone Florigen)– वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि प्रकाश–उद्दीपित पत्तियों (Photoinduced leaves) में एक पुष्पन उद्दीपन (flowering stimulus) या पुष्पन कारक (flowering factor) बनता है जो फ्लोएम के द्वारा स्थानांतरित होकर अग्रस्थ प्रविभाजी ऊतकों (Apical meristematic tissues) में पहुँचकर पुष्पीय कलिकाओं (flower buds) के

निर्माण की प्रक्रिया को उद्दीप्त करता है। प्रकाश उद्दीप्त पत्तियों में पुष्पन हार्मोन फ्लोरिजेन (florigen) पाया जाता है।

पत्तियों में कार्बन डाइऑक्साइड तथा प्रकाश की उपस्थिति में A नामक पदार्थ बनता है। जो अंधेरे में B पदार्थ में बदल जाता है। B पदार्थ C में बदल जाता है। जिससे फ्लोरीजन हार्मोन का निर्माण होता है। अनुकूल दीप्तिकाल न मिलने पर A पदार्थ X में बदल जाता है, जो पौधे में कायिक वृद्धि करता है। (चित्र क्र. 2.19 A एवं B)

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

6. दीप्तिकालिता की खोज किसने की थी?

   (अ) लाइसेन्को ने (ब) गार्नर एवं एलार्ड ने

   (स) मेल्चर्स ने (द) एलार्ड ने

7. पुष्पन के लिए उत्तरदायी हॉर्मोन हैं –

   (अ) जिबरेलिन (ब) फ्लोरिजेन

   (स) वर्नेलिन (द) ऑक्सिजन

8. फायटोक्रोम का सक्रिय कार्यिकीय रूप है –

   (अ) P_{680} (ब) P_{600}

   (स) P_{730} (द) P_{700}

9. छायादार क्षेत्र में उगने वाले पादप कहलाते हैं –

   (अ) मरूद्भिद (ब) जलोद्भिद

   (स) आतपोद्भिद (द) छायापोद्भिद

10. बसन्तीकरण क्रिया में –

   (अ) अधिक ताप मे उपचार किया जाता है

   (ब) कम ताप में उपचार किया जाता है

   (स) अधिक प्रकाश दिया जाता है

   (द) कम प्रकाश दिया जाता हैं

2.4 पादप अनुक्रमण (Plant Succession)

प्रत्येक जैविक समुदाय (Biotic community) में स्थान (space) एवं समय (time) के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। यह परिवर्तन तब तक जारी रहते हैं, जब तक वह एक स्थिर चरम वनस्पति (Stable climate vegetation) नहीं बन जाता।

टिप्पणी

क्लीमेन्टस (Clements, 1916) के अनुसार अनुक्रमण (succeesion) एक ऐसी प्राकृतिक क्रिया है जिसके द्वारा कोई क्षेत्र क्रमिक रूप से विभिन्न समूहों या जैविक समुदायों (Biotic communicaties) के द्वारा परिपूर्ण हो जाता है।

ओडम (Odum, 1971) ने अनुक्रमण को तीन पैरामीटर्स (parameters) मापदण्डों के अंतर्गत परिभाषित किया–

1. अनुक्रमण समुदाय विकास की क्रमिक प्रक्रिया (successive process) है। समय के अनुसार इसमें उपस्थित प्रजातियों की संरचना एवं समुदायिक प्रक्रियाओं (community processes) में परिवर्तन होते रहते हैं। यह दिशिक (directional) होती है, अतः इसकी भविष्यवाणी की जा सकती है।
2. इसका विकास समुदाय के द्वारा भौतिक पर्यावरण में किये जाने वाले परिवर्तनों के कारण होता है। इस प्रकार अनुक्रमण समुदाय द्वारा नियंत्रित (community controlled) होता है, चाहे अनुक्रमण के क्रम (pattern) परिवर्तनों की दर (rate of changes) आदि का निर्धारण भौतिक पर्यावरण द्वारा ही किया जा रहा हो।
3. इसके द्वारा स्थायी समुदाय (Stabilized community) चरम बिन्दु को प्राप्त कर लेता है। जिसमें प्रति इकाई उपलब्ध ऊर्जा प्रवाह (Per unit of available energy flow) के द्वारा उच्चतम जैवभार (Maximum biomass) एवं जीवों के मध्य होने वाली सहजीवी क्रियाओं (Symbiotic function) पर नियंत्रण रखा जाता है।

2.4.1 पादप अनुक्रमण के प्रकार (Types of Plant Succession)

(अ) उत्पत्ति एवं विकास (Origin & Development) के आधार पर अनुक्रमण को दो प्रकार में विभाजित किया गया है।

1. **प्राथमिक अनुक्रमण (Primary Succession)**– जब अनुक्रमण या जैविक समुदाय (Biotic community) का विकास ऐसे खाली पड़े क्षेत्र में होता है, जहाँ पहले जैविक समुदाय नहीं था तो इसे प्राथमिक अनुक्रमण कहते हैं। उदाहरण – पथरीली चट्टानों तथा रेतीली भूमि।
2. **द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary Succession)**– जब अनुक्रमण ऐसे स्थान पर होता है जहाँ पहले से उपस्थित जैविक समुदाय कुछ कारणवश नष्ट हो जाता हैं तब इसे द्वितीयक अनुक्रमण कहते हैं। उदाहरण आग लग जाने के बाद पुनः उस जगह का विकास होना।

(ब) स्थल (Places) के आधार पर अनुक्रमण को दो प्रकार में विभाजित किया है –

1. **जलक्रमक (Hydrosere)**– इस प्रकार का अनुक्रमण जलाशयों में पाया जाता है, उदाहरण– झील, तालाब।

टिप्पणी

2. **मरुक्रमक (Xerosere)**– इस प्रकार का अनुक्रमण शुष्क क्षेत्रों जहाँ जल की कमी पायी जाती है, वहाँ देखने को मिलते हैं। उदाहरण– नग्न चट्टानों, मृदा आदि।

   यह दो प्रकार का होता है–

   (i) लिथोसियर (Lithosere) नग्न चट्टानों से प्रारम्भ होता है,

   (ii) सैमोसियर (Psammosere) रेतीले क्षेत्र से प्रारम्भ होता है।

(स) वातावरण (Environment) के साथ सम्बन्धों के आधार पर भी अनुक्रमण विभाजित किये गये हैं।

1. **स्वजनित या ऑटोजेनिक अनुक्रमण (Autogenic Succession)**– इस प्रकार के अनुक्रमण में पहले से उपस्थित पादप समुदाय पर्यावरण में परिवर्तन लाते हैं। जिसके कारण वह समुदाय एक नये समुदाय के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है।
2. **परजनित या एलोजेनिक अनुक्रमण (Allogenic Sucession)**– इस प्रकार के अनुक्रमण में बाह्य दशाओं या परिस्थितियों के कारण पहले से उपस्थित समुदाय को नये समुदाय द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है।

(द) पोषण (Nutrition) के आधार पर अनुक्रमण को दो प्रकार में रखा गया है।

1. **स्वयंपोषी अनुक्रमण (Autotrophic Succession)**– जिन स्थानों पर अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic substances) अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, वहाँ इस प्रकार का अनुक्रमण देखा जाता है। इन स्थानों पर हरे पौधे अधिक रहते हैं।
2. **विषमपोषी अनुक्रमण (Heterotrophic Succession)**– इन स्थानों पर कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। यहाँ जीवाणु, कवक आदि भी संख्या में अधिक पाये जाते हैं।

2.4.2 अनुक्रमण के कारण (Causes of Succession)

अनुक्रमण निम्नलिखित कारकों के कारण प्रारम्भ होते हैं।

1. **भू–आकृतिक प्रक्रियाएँ (Physiographic Causes)**– इन कारकों के द्वारा प्राथमिक अनुक्रमण उत्पन्न होता है, जल के द्वारा मृदा अपरदन, वायु आदि।
2. **जलवायवीय प्रक्रियाएँ (Climatic Causes)**– वायु, हिमपात, सूखा आदि के द्वारा पहले से उपस्थिति पादप समुदाय नष्ट हो जाता है और नया उसकी जगह ले लेता है। इन कारकों के कारण द्वितीयक नग्न क्षेत्र (secondary naked areas) की उत्पत्ति होती है।
3. **जैविक कारक (Biotic Factors)**– मनुष्य अपने स्वार्थपूर्ति हेतु प्राकृतिक वनस्पतियों को नष्ट कर देता है। इसी तरह से जन्तु,

जीवाणु, आदि के द्वारा भी पहले से उपस्थित पादप समुदाय नष्ट हो जाता है और द्वितीयक अनुक्रमण का निर्माण करता है।

टिप्पणी

2.4.3 अनुक्रमण के विभिन्न चरण (Various Stages of Succession)

अनुक्रमण की क्रिया निम्नलिखित चरणों में होती है–

1. **नग्नीकरण (Nudation)**– इस स्थान पर पहले से कोई पादप समुदाय नहीं होता इसलिए इसे नग्न क्षेत्र कहा जाता है। उदाहरण–बर्फ गिरने, आँधी–तूफान, आग लगने आदि के कारण यह परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है।
2. **आक्रमण (Invasion)**– इसके तहत क्षेत्र में नई जातियों का आगमन होता है। यह विभिन्न अवस्थाओं में होता है।
3. **प्रवास (Migration)**– बीज, बीजाणु आदि जब एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँच कर अंकुरित हो जाते है।
4. **आस्थापन (Ecesis)**– नये पौधे स्थापित होते हैं। इस क्रिया में अंकुरण, वृद्धि तथा प्रजनन आदि होता है।
5. **समूहन (Aggregation)**– पौधे प्रजनन करके संख्या बढ़ा कर समूह में अपने आप को स्थापित करते हैं। इस प्रक्रिया के कारण उस स्थान पर शाकीय पौधे, घास आदि के झुण्ड दिखाई देते हैं।
6. **प्रतिस्पर्धा (Competition)**– पौधों की संख्या में वृद्धि होने के कारण उनके बीच एक सी आवश्यकताओं के कारण प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो जाती है। यह प्रतिस्पर्धा दो प्रजातियों के बीच जब होता है तो इसे इंटरस्पेसिफिक (Interspecific) या एक ही जाति के दो पौधों के बीच भी होता है, तब इसे इंट्रास्पेसिफिक (Intraspecific) कहते हैं।
7. **अभिक्रिया (Reaction)**– पादप जातियों के रहने पर आवास में परिवर्तन आने लगता है। पौधों के द्वारा वर्ज्य पदार्थों (Wastes) एवं पौधों के स्वयं नष्ट हो जाने पर उस स्थान में ह्यूमस बढ़ जाता है। अतः इन पदार्थों के कारण वह आवास स्थल पौधों की वृद्धि के अनुकूलित होता जाता है। आवास परिवर्तित हो जाने पर नए जाति के उगने वाले पौधों को अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं।
8. **स्थायीकरण (Stabilization)**– नये पौधे आवास में पुनः परिवर्तन की प्रक्रिया को शुरू करते है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि उस स्थान पर चरम वनस्पति (Climax vegetation) का विकास नहीं हो पाता। यह स्थायी होता है और इसके बाद कोई नयी प्रजाति नहीं उगती।

2.5 पादप अनुक्रमण के उदाहरण (Examples of Plant Succession)

टिप्पणी

2.5.1 जलक्रमक / हाइड्रोसियर (Hydrosere)

जलाशयों में प्रारम्भ होने वाले अनुक्रमण को जलक्रमक (Hydrosere) कहते हैं। उदाहरण– तालाब, झील आदि। (चित्र क्र. 2.20)

इनमें निम्नलिखित अवस्थाएँ देखी जाती है–

1. **पादप प्लवक या फाइटोप्लैंक्टॉन अवस्था (Phytoplankton Stage)**– यह जीव तालाब के मध्य भाग में उपस्थित होते है। वह जलक्रमक की प्रथम अवस्था होते हैं, उदाहरण– नील–हरित शैवाल (Blue-gree algae), हरे शैवाल (Green algae), डायएटम्स (Diatoms)। इन्हें जुप्लैंक्टॉन्स (Zooplanktons) अपने भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। पादप प्लवक की मृत्यु हो जाने पर यह कार्बनिक पदार्थ के रूप में मिट्टी तथा सिल्ट के साथ तालाब की तलहटी पर जमा हो जाते हैं।

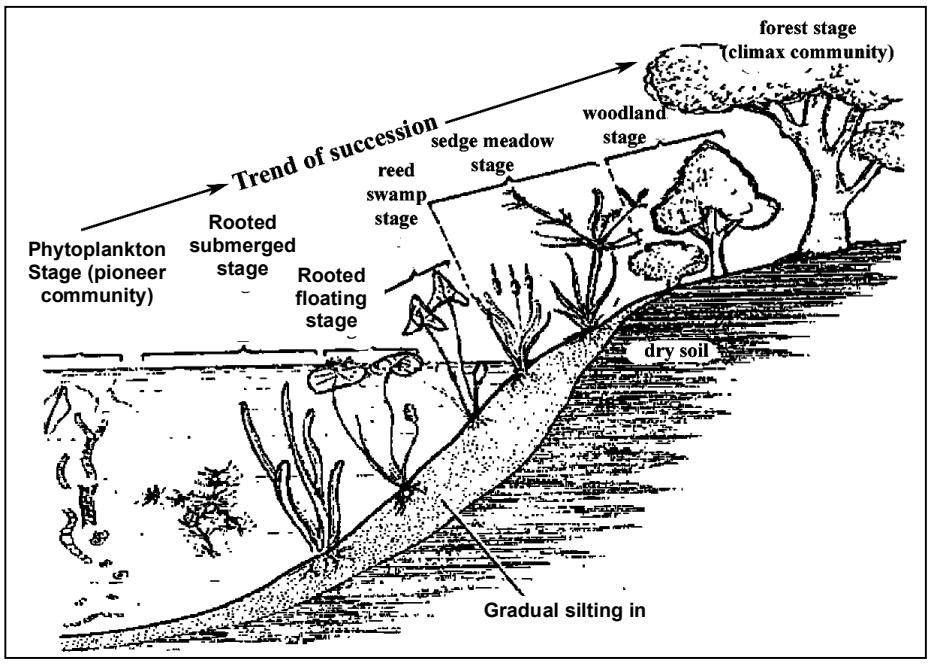

चित्र क्र. 2.20: जलक्रमक की क्रमिक अवस्थाएँ

2. **निमग्न अवस्था (Submerged Stage)**– तालाब की तलहटी पर जमा कार्बनिक पदार्थ तथा मिट्टी में पौधे आसानी से ऊग जाते हैं। जड़युक्त निमग्न (rooted submerged) पौधे, जैसे – हाइड्रिला *(Hydrilla)*, वैलिसनेरिया *(Valisnaria)* आदि।
3. **प्लावन अवस्था (Floating Stage)**– पौधों की मृत्यु के बाद वह तहलटी पर जमा होते जाते हैं, जिसके कारण पानी का स्तर कम

टिप्पणी

होता जाता है जिसके फलस्वरूप प्लावन अवस्था वाले पौधे वृद्धि करते हैं। जैसे – नीलम्बो *(Nelumbo)*, जड़युक्त प्लावी पौधे, स्वतन्त्र प्लावित पौधे (Free floating plants), जैसे ऐजोला *(Azolla)*, साल्विनिया *(Salvinia)* आदि।

इन पौधों के वृद्धि के कारण निमग्न पौधों को समुचित प्रकाश नहीं मिल पाता और वे समाप्त होने लगते हैं। वृद्धि करने वाले पौधों की भी मृत्यु होने पर यह जलाशय की तलहटी में जमा हो जाते हैं और उसकी गहराई कम हो जाती हैं।

4. **रीड स्वेम्प अवस्था (Reed Swamp Stage)**– जलाशय की गहराई में कमी होने के कारण ऐसे पौधे वृद्धि करते है। इनके प्रकाश–संश्लेषी भाग पानी की सतह से ऊपर हवा में रहते हैं। यह पौधे जल को वाष्पोत्सर्जन द्वारा हवा में उड़ा देते हैं और फलस्वरूप जलाशय में पानी की कमी होती है। इस अवस्था में ऐम्फिबियस पौधे वृद्धि करते है।

5. **सेज मिडो अवस्था (Sedge Meadow Stage)**– जलाशय में बहुत ही कम पानी रहने के कारण जालीनुमा वेजीटेशन (Mat like vegetation) वाले पौधे जैसे की सायपेरेसी *(Cyperaceae)*, ग्रैमिनी *(Gramineae*) आदि वृद्धि करते है। वाष्पीकरण के कारण भूमि भी दिखाई देने लगती है और वहाँ पर स्थलीय पौधे वृद्धि करने लगते हैं।

6. **वुडलैण्ड अवस्था (Woodland Stage)**– शुष्क भूमि का निर्माण होने पर झाड़ियों की वृद्धि होने लगती है और फिर छोटे वृक्ष जैसे कि पॉपुलस *(Populus)*, अलमस *(Almus)* आदि।

7. **चरम वन अवस्था (Climax Forest Stage)**– इस अवस्था में बड़े वृक्ष पुराने होने लगते हैं और जलाशय के स्थान पर वनों का निर्माण हो जाता है। उदाहरण– ऐसर *(Acer)*, क्वेरकस *(Quercus)* आदि।

2.5.2 मरुक्रमक (जीरोसियर) (Xerosere)

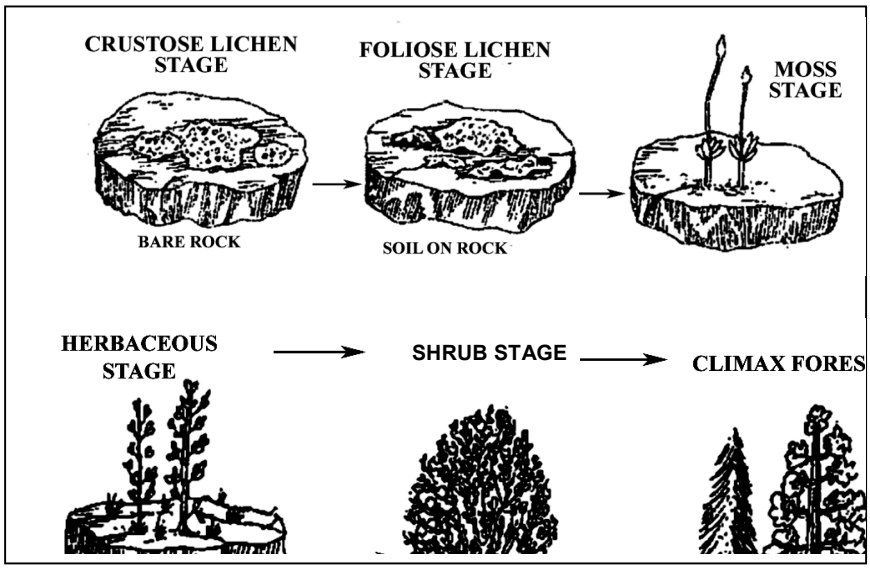

चित्र क्र. 2.21: मरूक्रमक की क्रमिक अवस्थाएँ

जल की कमी वाले क्षेत्रों में मरुक्रमक देखे जाते हैं। इसमें विभिन्न अवस्थाएँ पायी जाती हैं। (चित्र क्र. 2.21)

1. **पर्पटीय लाइकेन्स (Crustose Lichen Stage)**– वह स्थान जहाँ पर तापमान अधिक होता है और इस जगह नमी तथा कार्बनिक पदार्थ नहीं पाये जाते, वहाँ पर पर्पपटीमय लाइकेन्स विकसित होते हैं। यह उच्च शुष्क क्षेत्रों में आसानी से वृद्धि करते हैं और वायु से नमी तथा खनिज पदार्थ अवशोषित करके अपनी वृद्धि एवं प्रजनन करते हैं। वर्षा ऋतु में जल अवशोषित करके यह चट्टानों पर तीव्रता से फैलते हैं। इनके द्वारा अम्ल स्रावित होते हैं जो चट्टानों का विघटन करते हैं। उदाहण–राइजोकार्पोन *(Rhizocarpon)*, हिमेटोमा *(Hematomma)*।

2. **पर्णिल लाइकेन्स अवस्था (Foliose lichens Stage)**– पर्पटीमय लाइकेन्स के द्वारा उत्पन्न पदार्थ तथा उनके होने पर बनने वाले मृत लाइकेन्स के कार्बनिक पदार्थ उच्च प्रकार के लाइकेन्स की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करते हैं। उदाहरण–पारमेलिया *(Parmelia)*, डर्मेटोकार्पोन *(Dermatocarpon)* आदि। इनका थैलस बड़ी पत्ति के आकार का होता है तथा यह अधिक मात्रा में जल अवशोषित करते हैं।

3. **मॉस अवस्था (Moss Stage)** – चट्टान पर मृदा के संचय के कारण शुष्कोद्भिद मॉस (Xerophytic moss) के विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ निर्मित होती है।

   उदाहरण– पॉलिट्राइकम *(Polytrichum)*, टॉरटुला *(Tortula)*।

टिप्पणी

4. **शाकीय अवस्था (Herbaceous Stage)**– लाइकेन्स आदि की मृत्यु एवं अपघटन के परिणामस्वरूप चट्टान पर मृदा की एक मोटी चादर का निर्माण होता है। जिससे कि इसमें पानी धारण करने की क्षमता अधिक होती है और फिर उस नमी वाले स्थान पर शाकीय पौधे वृद्धि करने लगते है।

5. **झाड़ी अवस्था (Shrub Stage)**– शाकीय पौधों के कारण माँस आदि को सूर्य की रोशनी नहीं मिल पाती जिससे इनकी मृत्यु हो जाती है। मृदा के स्तर में भी वृद्धि होती है जिससे परिस्थितियाँ झाड़ीनुमा पौधों के विकास के लिए उपयुक्त हो जाती है, उदाहरण– ऱ्हास *(Rhus)*, फायटोकार्पस *(Phytocarpus)* आदि।

6. **वन चरम अवस्था (Forest Climax Stage)**– इस परिस्थिति में बड़े वृक्ष वृद्धि करने लगते हैं। उदाहरण– ओक *(Oak)*, कोनिफर्स *(Conifers)* आदि। इससे भूमि में नमी और वायु की आर्द्रता में वृद्धि होती है। वृक्षों की संख्या में वृद्धि होने पर कोई दूसरी पादप प्रजाति इन्हें विस्थापित नहीं कर पाती, इसलिए इसे चरम अवस्था कहते हैं।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

11. चरम अवस्था (climax stage) पाई जाती है–

(अ) अनुक्रमण के प्रारम्भ में (ब) अनुक्रमण के मध्य में

(स) अनुक्रमण के अन्त में (द) इनमें से किसी में नहीं

12. मरूक्रमक में (xerosere) पाई जाती है–

(अ) फोलियोज लाइकेन अवस्था (ब) फ्लोटिंग अवस्था

(स) रीड स्वैम्प अवस्था (द) ये सभी

13. दो विभिन्न समुदायों के बीच वानस्पतिक समूह को क्या कहते हैं?

(अ) इकोटाइप (ब) इकोटोन

(स) इकैड (द) इकोड

14. रेतीले स्थान से आरम्भ होने वाला अनुक्रमण कहलाता है–

(अ) मरूक्रमक (ब) जलक्रमक

(स) सैमोसियर (द) लिथोसियर

15. जलाशाय में तट का निर्माण किस अवस्था में होता है–

(अ) निमग्न अवस्था (ब) रीड स्वैम्प अवस्था

(स) प्लैंकटॉन अवस्था (द) प्लावित अवस्था

टिप्पणी

2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answer to Check Your Progress)

1. (अ)
2. (द)
3. (ब)
4. (अ)
5. (स)
6. (ब)
7. (ब)
8. (स)
9. (द)
10. (ब)
11. (स)
12. (अ)
13. (ब)
14. (स)
15. (स)

2.7 सारांश (Summary)

जीव एवं पौधे अनुकूलित वातावरण में अधिक विकास प्रदर्शित करते हैं। नये वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने के लिए यह आकारिकीय, शारीरिकीय एवं कार्यिकीय परिवर्तन एवं अनुक्रियाएँ करते हैं। पौधों में अनुकूलन, विकास क्रिया का एक महत्वपूर्ण परिणाम होता हैं। पर्यावरणीय तापमान एवं प्रकाश के प्रति पादप अनुकूलन की जानकारी के द्वारा खेती, वानिकी आदि में यह ज्ञान उपयोगी होता हैं। इस इकाई में पादप अनुक्रमण की जानकारी भी प्राप्त होती है जिसके द्वारा किसी वनस्पति का जीवन–वृत्त जाना जा सकता है। किसी भी अनुक्रमण में वनस्पतियों की सर्वप्रथम उत्पत्ति होती है, फिर विकास होता है, संपूर्ण क्षेत्र विभिन्न प्रकार के पादप समुदायों के द्वारा परिपूर्ण हो जाता। कई परिवर्तनों के बाद इस क्षेत्र मे एक स्थायी चरम वनस्पति की स्थापना हो जाती है।

2.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **जलोद्भिद पौधे**– वह पौधे जो पूर्णरूप से अथवा आंशिक रूप में जल में डुबे हुए उगते है।
- **मरूद्भिद पौधे**– वह पौधे जो शुष्क आवासीय क्षेत्र जहाँ जल की कमी होती है वहाँ उगते है।
- **लवणोद्भिद पौधे**– लवणों की अधिक सान्द्रता वाली मृदा मे उगने वाले पौधे।
- **तापकालिता**– पौधों का तापमान में होने वाले विभिन्न उतार–चढावों के प्रति अनुक्रिया प्रदर्शित करना।
- **फोटोफिलस या हेलियोफाइट्स पौधे**– वह पौधे जिन्हें वृद्धि हेतु तीव्र प्रकाश की आवश्यकता होती है।
- **सयोफाइट्स या स्कोटोफिल्स पौधे**– वह पौधे जिन्हें वृद्धि हेतु अल्प प्रकाश की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

- **पारिस्थितिक अनुक्रमण**– किसी विशिष्ट क्षेत्र मे जीविय समुदाय की स्थापना तथा विकास होता है।
- **इसेसिस**– किसी बंजर भूमि या नग्न क्षेत्र मे प्रारंभिक पौधों के स्थापित होने की प्रक्रिया को कहते हैं।
- **जलक्रमक**– वह अनुक्रमक जो जलकायों से प्रारम्भ होता है।
- **मरूक्रमक**– वह अनुक्रमक जो शुष्क क्षेत्रों में प्रारम्भ होता है।
- **लिथोसियर**– वह अनुक्रमक जो नग्न स्थलों या चट्टानों से प्रारम्भ होता है।
- **सैमोसियर**– वह अनुक्रमक जो रेतिले स्थल पर प्रारम्भ होता है।

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जलोद्भिद पौधे हाइड्रिला के तने की अनुप्रस्थ काट का नामांकित चित्र बनाइए।
2. एक मरूद्भिद द्विबीजपत्री पौधे की पत्ती के ऊर्ध्वाधर अनुप्रस्थ काट का कोशिकीय नामांकित चित्र बनाइए।
3. मरूद्भिद पौधों के शरीर रचनात्मक लक्षण पर टिप्पणी लिखिए।
4. जलीय पौधों के आकारिकीय एवं आन्तरिक अनुकूलन पर टिप्पणी लिखिए।
5. जलोद्भिद पौधों पर टिप्पणी लिखिए।
6. जलोद्भिद में पारिस्थितिक अनुकूलन पर टिप्पणी लिखिए।
7. मरूद्भिद में पारिस्थितिक अनुकूलन पर टिप्पणी लिखिए।
8. हाइड्रिला पौधे के तने के आन्तरिक अनुकूलन पर टिप्पणी लिखिए।
9. कनेर की पत्ती की खड़ी काट की आन्तरिक रचना का चित्र बनाइए।
10. जलोद्भिद तथा मरूद्भिद के लक्षण पर टिप्पणी लिखिए।
11. हैलोफाइट्स पर टिप्पणी लिखिए।
12. अनुक्रमण के प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
13. पारिस्थितिक अनुक्रमण पर टिप्पणी लिखिए।
14. मरूक्रमक का वर्णन कीजिए।
15. हाइड्रोसीयर (जलक्रमक) पर टिप्पणी लिखिए।
16. जीरोसीयर (Xerosere) पर टिप्पणी लिखिए व चित्र बनाइए।
17. वसन्तीकरण पर टिप्पणी लिखिए।
18. थर्मोपीरियोडिसिटी पर टिप्पणी लिखिए।

19. आतपोद्भिद एवं छायापोद्भिद पौधों में अन्तर लिखिए।
20. तापमान कारक पर टिप्पणी लिखिए।
21. प्रकाश कारक पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. पादप अनुक्रमण क्या है? एक झील में पादप अनुक्रमण कैसे होता है? उचित उदाहरण एवं चित्रों की सहायता से विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
2. नग्न चट्टानों पर होने वाले पादप अनुक्रमण की प्रक्रिया का सचित्र वर्णन कीजिए।
3. हाइड्रोसीयर (जलक्रमक) की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
4. पारिस्थितिक अनुक्रमण से आप क्या समझते हैं? अनुक्रमण के कारक एवं क्रियाविधि का वर्णन कीजिए।
5. पादप अनुक्रमण क्या है? इसके प्रकार, लक्षणों और कारणों का वर्णन कीजिए।
6. मरूक्रमक की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
7. जल के आधार पर पौधों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है? उदाहरण सहित समझाइए।
8. जलोद्भिद क्या है? जलोद्भिद पोधों में कौन–से आकारिकी एवं शारीरिकी अनुकूलन पाए जाते है?
9. नागफनी व केस्यूराइना मरूस्थली पौधे हैं। स्पष्ट कीजिए।
10. अपने क्षेत्र में जलमग्न एवं प्लावी पौधों के नाम लिखिए तथा उनके अनुकूलन के लिए आकारिकीय संरचना का वर्णन कीजिए।
11. जलीय पौधों में पाई जाने वाली विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
12. अनुकूलन से आप क्या समझते हैं? जलीय एव मरूस्थलीय पौधों की आन्तरिक संरचना एवं उनके परिस्थितिक अनुकूलनों का वर्णन कीजिए।
13. मरूद्भिद पौधों में पारिस्थितिक अनुकूलन का वर्णन कीजिए।
14. मरूद्भिद किसे कहते हैं? इनमें पाए जाने वाले आकारिकी एवं शारीरिकी अनुकूलनों का वर्णन कीजिए।
15. मरूद्भिद पादपों की आकृति, शारीरिक संरचना एवं कार्यिकी के प्रभाव को संक्षेप में समझाइए।
16. जलोद्भिद एवं मरूद्भिद पौधों की आन्तरिक संरचना व उनके पारिस्थितिक अनुकूलन का वर्णन कीजिए।
17. जलोद्भिद में पाए जाने वाले आकारिकी, शारीरिकी एवं पारिस्थितिक अनुकूलनों का विस्तृत वर्णन कीजिए। उचित नामांकित चित्र भी बनाइए।

टिप्पणी

18. मरूद्भिद की बाह्य और आन्तरिक आकारिकी का वर्णन चित्रों द्वारा एवं उदाहरण द्वारा कीजिए।
19. तापमान का वनस्पति पर क्या प्रभाव पड़ता है? तापमान के आधार पर वनस्पति को कितने प्रकारों में विभाजित किया गया है? विस्तार से समझाइए।
20. प्रकाश का वनस्पति पर क्या प्रभाव पड़ता है? विस्तार से समझाइए।
21. दीप्तिकालिता किसे कहते है? इसकी क्रियाविधि एवं आधार पर पौधों का वर्गीकरण समझाइये।
22. वसन्तीकरण पर निबन्ध लिखिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कॉलेज बॉटनी Vol II – एस. सुन्दरा राजन
2. इकोलॉजी – एम. पी. अरोरा
3. कॉन्सेप्ट ऑफ इकोलॉजी – जी. जे. कारमोन्डी
4. टेस्टबुक फॉर प्लान्ट इकोलॉजी – आर. एस. शुक्ला एवं पी. एस. चन्देल

टिप्पणी

इकाई 3 जैवविविधता एवं जनसंख्या पारिस्थितिकी (Biodiversity and Population Ecology)

संरचना (Structure)

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 समष्टि के प्रकार
  3.2.1 समष्टि के लक्षण
3.3 समष्टि घनत्व
3.4 जन्म दर
3.5 मृत्यु दर
  3.5.1 आयु या वयस वितरण
  3.5.2 आयु या वयस स्तूप
  3.5.3 समष्टि प्रकीर्णन या परिक्षेपण
  3.5.4 समष्टि वृद्धि स्वरूप एवं धारणा क्षमता
3.6 इकेड्स या पारिज
3.7 पारिस्थितिक प्रारूप या पारिप्रारूप या इकोटाइप
  3.7.1 परिप्रारूपों के प्रकार
3.8 सामुदायिक पारिस्थितिकी
  3.8.1 समुदाय के अभिलक्षण
  3.8.2 समुदाय का आकार एवं संरचना
  3.8.3 समुदाय की संरचना के अध्ययन में उपयोगी लक्षण
  3.8.4 विश्लेषणात्मक लक्षण
  3.8.5 संश्लेषणात्मक लक्षण
3.9 जैव–विविधता
  3.9.1 जैव–विविधता की परिभाषा
  3.9.2 जैव–विविधता की मूल अवधारणा
  3.9.3 जैव–विविधता का महत्त्व
3.10 भारतीय जैव–विविधता
3.11 हॉट स्पॉटस
3.12 जैव–विविधता का संरक्षण
  3.12.1 लुप्तप्रायः तथा खतरे में पड़ी प्रजातियाँ
  3.12.2 पादप प्रजातियों के लुप्तप्रायः होने के कारण
  3.12.3 भारत की लुप्तप्रायः एवं संकटग्रस्त जातियाँ
  3.12.4 लाल आँकड़ा पुस्तक अथवा रेड डाटा बुक
3.13 जैव–मण्डल संचयन, मध्यप्रदेश के अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान
3.14 वन्य जीवन का संरक्षण
  3.14.1 राष्ट्रीय पार्क एवं अभयारण्य
  3.14.2 मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय उद्यानों का विकास
  3.14.3 मध्यप्रदेश की टाइगर परियोजना
  3.14.4 वन्य जीवन आरक्षित वन तथा सामान्य मानव
  3.14.5 मध्यप्रदेश राज्य के प्रमुख राष्ट्रीय पार्क
3.15 जैव–मण्डल रिजर्व
3.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.17 सारांश

3.18 मुख्य शब्दावली
3.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.20 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

3.0 परिचय (Introduction)

पृथ्वी पर सभी जीव एक समष्टि (Population) समुदाय एवं पारिस्थितिक तन्त्र के रूप में विकसित होते हैं। यह एक दूसरे के साथ वृद्धि करते हैं। और आपस में संगठित या एकत्रित होकर एक समष्टि बनाते हैं। कई समष्टियों से मिलकर एक समुदाय बनता है। लैटिन भाषा के शब्द पापुलस (Populus) जिसका अर्थ होता है – लोग, इससे पॉपुलेशन (Population) शब्द बना है।

जैविक एवं अजैविक घटकों से मिलकर पर्यावरण का निर्माण होता है। जैविक घटक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। जिसके अंतर्गत पौधे, सूक्ष्मजीव एवं जन्तु आते हैं। किसी निर्धारित क्षेत्र अथवा आवास में निवास कर रहे जीव संख्याओं को जैविक समुदाय (Biotic community) कहते हैं।

पृथ्वी पर अनेक जातियों के जन्तु व पादप मिलते हैं। प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के अंर्तराष्ट्रीय संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार, पृथ्वी पर कई मिलियन पादप एवं जन्तुओं की जातियाँ उपस्थित हैं। पृथ्वी के विभिन्न भागों में, किसी विशेष स्थान पर विभिन्न प्रकार की जातियों का पाया जाना जैव–विविधता कहलाता है। जीवन रूपों की विभिन्न जातियाँ जिन्हें हम अपने आस–पास देखते हैं, जैव–विविधता को प्रदर्शित करती हैं।

जंगलों में जंगली पशुओं एवं पक्षियों का पाया जाना मानव के लिए बहुत हितकर है। ये जानवर अधिकतर माँसाहारी होते हैं, जैसे – शेर, चीता, भेड़िया, रीछ आदि को खाते हैं। यदि वनों में इन माँसाहारी जानवरों को समाप्त कर दिया जायेगा तो शाकाहारी जानवरों की तथा विभिन्न प्रकार के कीटों तथा अन्य प्रकार के हानिकारक जन्तुओं की जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ जायेगी जिससे मनुष्य को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ेगी।

3.1 उद्देश्य (Objectives)

समष्टि पारिस्थितिकी एक जाति के जीवों का अध्ययन होता है, जिसमें जीवों के मध्य होने वाली परस्पर निर्भरता (dependency) एवं एकत्रीकरण (aggregation) की क्रियाओं तथा इन क्रियाओं को नियंत्रित करने वाले सभी कारकों का अध्ययन किया जाता है।

इस अध्याय में हम जैविक समुदाय के बारे में एवं इसके लक्षण, विकास, स्वरूप, उसके विश्लेषण की जानकारी प्राप्त करेंगे।

क्रिटेशियस युग में आवृत्तबीजी पुष्पीय पौधों का उद्‌गम एवं विकास हुआ। भू–मण्डल के विभिन्न भागों में विसरण तथा प्रवास हुआ। विकास एवं प्रत्येक वानस्पतिक प्रदेशों में विभिन्न जीवन–रूपों का वितरण देखा जाता है। इस अध्याय

में भारत में पायी जाने वाली जैव विविधता की जानकारी प्राप्त होती है जो उसके संरक्षण के लिये उपयोगी है।

टिप्पणी

3.2 समष्टि के प्रकार (Types of Population)

1. एकजातीय समष्टि (Monospecific Population) – इसमें एक ही जाति के पेड़–पौधे आते हैं।
2. मिश्रित या बहुजातीय समष्टि (Mixed or Polyspecific Population) – इसमें एक से अधिक जातियाँ पाई जाती हैं।

3.2.1 समष्टि के लक्षण (Population Characteristics)

प्रत्येक समष्टि की अपनी विशेष पहचान होती है। एक समष्टि में सामान्यतः निम्न लक्षण होते है।

3.3 समष्टि घनत्व (Population Density)

प्रति इकाई क्षेत्रफल में प्रजाति विशेष के सदस्यों की संख्या को समष्टि घनत्व (Population density) कहते हैं। प्रत्येक प्रजाति में समष्टि घनत्व एक सीमित स्तर पर घट–बढ़ सकता है। घनत्व की उच्चतम सीमा का निर्धारण पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy flow), प्रजाति का पोषण स्तर (Trophic level) एवं उपापचयी समस्थिरता द्वारा किया जाता है, जनसंख्या घनत्व का सूत्र –

$$D = \frac{N/a}{t}$$

D = समष्टि घनत्व

N = क्षेत्र में उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या

a = क्षेत्र का क्षेत्रफल

t = समय

समष्टि घनत्व में उतार–चढ़ाव होने पर उसमें होने वाले परिवर्तन को डेल्टा चिन्ह के द्वारा बताया जाता है।

ΔN= सदस्यों की परिवर्तित संख्या

$rN = \frac{\Delta N}{\Delta t}$ वृद्धि दर या इकाईसमय में औसत सदस्य संख्या परिवर्तन

(r= वृद्धि दर) $\frac{\Delta N}{N\Delta t}$ = सदस्य संख्या वृद्धि।

टिप्पणी

समष्टि घनत्व के प्रकार (Types of Population Density)

1. अपरिष्कृत घनत्व (Crude density)
2. पारिस्थितिक घनत्व (Ecological density)

1. **अपरिष्कृत घनत्व (Crude density)** – सम्पूर्ण क्षेत्र की प्रत्येक इकाई में जीवों की कुल संख्या को अपरिष्कृत घनत्व कहते हैं। इसे आवास घनत्व (Habitat density) भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत जीवों की संख्या प्रति वर्गमील, प्रति एकड़ या प्रति वर्ग मीटर आदि दर्शाते हैं।
2. **पारिस्थितिक घनत्व (Ecological density)** – किसी समष्टि का पारिस्थितिक घनत्व उस क्षेत्र में उपस्थित जीवों की कुल संख्या को व्यक्त करता है, जिसमें जीव वास्तविक रूप से निवास करते हैं।

3.4 जन्म दर (Birth Rate or Natality)

किसी इकाई समय में जीव संख्या के द्वारा जन्म लिए जीवों की संख्या को जन्म दर कहते हैं–

$$\text{मृत्यु दर} = \frac{\text{जन्म दर – नए उत्पन्न हुए जीवों की संख्या}}{\text{समय}}$$

जीव संख्या जन्म द्वारा प्रभावित होती है और बढ़ती है। यह जन्म दर, आयु, भोजन जैविक एवं अजैविक कारकों के द्वारा प्रभावित होती है। जन्म दर दो प्रकार की होती है–

(अ) अधिकतम (परम) जन्म दर (Maximum or Absolute Birth Rate) – इसे कार्यिकीय जन्म दर (Physiological Natality) भी कहते हैं। यह सामान्य वातावरण में संभावित अधिकतम जन्म होता है, जो एक जैविक सीमा होती है।

$$\text{परम जन्म दर } (B) = \frac{\Delta Nn}{\Delta t}$$

Δ = डेल्टा, परिवर्तन दर्शाने के लिए

N = जीवों की वास्तविक संख्या,

n = समष्टि में उत्पन्न हुए नये जीवों की संख्या

t = समय

(ब) पारिस्थितिकीय या वास्तविक जन्म दर (Ecological or Realised Natality) – यह सफल प्रजनन की वह दर होती है जो एक विशेष समय के अंतर्गत होती है। इस प्रकार यह सभी संभावित दशाओं में होती है।

$$\text{विशिष्ट जन्म दर } (b) = \frac{\Delta Nn}{\Delta N\ \Delta t}$$

टिप्पणी

3.5 मृत्यु दर (Mortality)

एक इकाई समय में किसी क्षेत्र में उपस्थित एक समष्टि में मृत जीवों की संख्या को मृत्यु दर कहते हैं। जन्म दर के समान मृत्यु दर भी आयु समूह के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। मनुष्य या किसी भी प्राणी की आयु में वृद्धि के साथ–साथ मृत्यु दर भी बढ़ती जाती है तथा वृद्धावस्था में मृत्यु दर सर्वाधिक हो जाती है।

$$\text{मृत्यु दर} = \frac{\text{समष्टि के मृत जीवों की संख्या}}{\text{समय}}$$

मृत्यु दर दो प्रकार की होती है –

(i) न्यूनतम मृत्यु दर (Minimum Mortality) – न्यूनतम मृत्यु दर मरने वाले जीवों की वह संख्या है, जो आदर्श दशाओं के अनुसार मृत होते हैं। इसे विशिष्ट या संभावित मृत्यु दर भी कहते हैं।

(ii) पारिस्थितिक या वास्तविक मृत्यु दर (Ecological or Realised Mortality) – यह एक विशेष समय में पर्यावरणीय दशाओं के कारण मृत होने वाले जीवों की संख्या होती है। समय एवं परिस्थितियों के अनुसार यह दर बदलती रहती है।

3.5.1 आयु या वयस वितरण (Age Distribution)

विभिन्न वयस वर्गों (age groups) में जीव संख्या के जीवों की संख्या वयस कहलाती है। जीव संख्या में उपस्थित युवा (Young) एवं वृद्ध (Old) सदस्यों का अनुपात जीव संख्या प्रवृत्ति (Population trend) के सूचकांक (index) का काम करता है।

पारिस्थितिक दृष्टि से किसी भी जीव संख्या में तीन वयस वर्ग (age groups) होते हैं–

पूर्वजननक (Pre-reproductive), जननक (Reproductive) तथा पश्चजननक (Post-reproductive)

तीनों की अवधि में विभिन्नता पायी जाती हैं। उदाहरण – मानव संख्या का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि इनकी तीनों वयस वर्गों की अवधि लगभग समान होती है। इन वयस वर्गों के अनुपात का ज्यामितीय चित्रण द्वारा किसी भी जीव संख्या का वयस पिरामिड बनाया जा सकता है। वृद्धि करती हुई जीव संख्या में युवा जीवों अर्थात् पूर्वजनकों का अनुपात अधिक होता है। यदि जीव संख्या स्थिर है तो उपर्युक्त तीनों वयस वर्गों का अनुपात लगभग समान होता है परन्तु यदि जीवसंख्या में लगातार कमी आ रही हो तो ऐसी जीवसंख्या में युवा जीवों का अनुपात अपेक्षाकृत कम होता है।

टिप्पणी

3.5.2 आयु या वयस स्तूप (Age Pyramid)

स्तूप किसी समष्टि के वयस वितरण को प्रदर्शित करने का सबसे अच्छा माध्यम होता है। किसी जीव की समष्टि में उसकी आयु के विभिन्न समूहों के अनुपात को रेखीय तरीके से दर्शाने वाला मॉडल आयु स्तूप (Age pyramid) कहलाता है।

आयु पिरामिड तीन प्रकार के होते हैं–

1. **चौड़े आधार वाला स्तूप (Pyramid with Broad Base)** – जिस स्थान पर प्रौढ़ या वयस्क सदस्यों की प्रतिशत संख्या अधिक होती है, वहाँ इस प्रकार का स्तूप पाया जाता है। तेजी से वृद्धि करने वाली समष्टियों का चारित्रिक लक्षण इस स्तूप के द्वारा होता है। ऐसी समष्टियों के सदस्यों की जन्म दर (Natality) अधिक होती है तथा ये समष्टियाँ तेजी से वृद्धि करती है। इसमें प्रत्येक क्रमिक पीढ़ी (Successive generation) अपनी पिछली पीढ़ी से अधिक संख्या वाली होती है।
2. **घण्टीनुमा बहुभुज (Bell-shaped Polygon)** – जब किसी समष्टि में वयस्कों की संख्या वृद्धों से कम होती है, तब इस प्रकार के बहुभुजों का निर्माण होता है। इस प्रकार की समष्टि की वृद्धि दर (Growth rate) कम एवं स्थिर होती हैं। इसमें प्रजनन–पूर्व एवं प्रजनक आयु समूह एक दूसरे से आकार में लगभग समान होते हैं तथा प्रजनन पश्चात् आयु वाला समूह (post reroductive age group) सबसे छोटा होता है। ऐसी समष्टियों की जन्म दर एवं मृत्यु दर समान होती है।
3. **कलशनुमा स्तूप (Urn-shaped Pyramid)** – इस प्रकार के स्तूप का निर्माण उस स्थान की समष्टि दर्शाने को होता है, जिसमें प्रौढ़ या वयस्क सदस्यों की प्रतिशत संख्या कम होती है। इन समष्टियों में जीवों या सदस्यों की संख्या कम होती जाती है। इसमें मृत्यु दर (Mortality), जन्मदर (Natality) से अधिक होती है। यदि जन्म दर तेजी से कम होती है तो प्रजनन से पहले वाली उम्र (Pre-reproductive age) का महत्व बाद के दोनों समूहों से कम होता है, जिसके कारण कलशनुमा (Urn-shaped) आकृति बनती है। (चित्र क्र. 3.1)

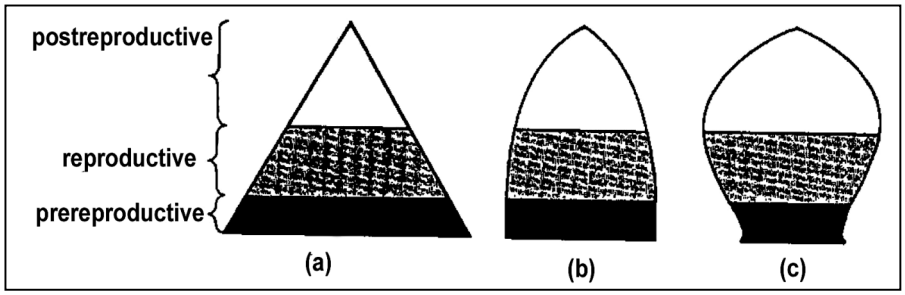

चित्र क्र. 3.1: परिकल्पित चित्र द्वारा विभिन्न प्रकार के आयु या वयस स्तूप

टिप्पणी

3.5.3 समष्टि प्रकीर्णन या परिक्षेपण (Population Dispersal)

इसके द्वारा विनिष्ट समष्टि पुनः स्थापित होकर साम्यावस्था में आती है या जाने का प्रयास करती है। इसमें जीव या उनके द्वारा उत्पन्न किये गये बीज एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आवागमन करते है। प्रजनन एवं परिक्षेपण में गहरा सम्बन्ध होता है। समष्टि परिक्षेपण चार विधियों के द्वारा होता है–

(अ) आप्रवास (Immigration)

(ब) इमाइग्रेशन (Emigration)

(स) प्रवासन (Migration)

(द) रीमाइग्रेशन (Remigration)

3.5.4 समष्टि वृद्धि स्वरूप एवं धारणा क्षमता (Population Growth Form and Carrying Capacity)

समष्टि के वृद्धि करने के ढंग या तरीके को वृद्धि स्वरूप (Growth Form) कहते हैं। इनके ग्राफी निरूपण से प्राप्त वक्राकार आकृति को वृद्धि वक्र (Growth Curve) कहते हैं। जीवों में उपस्थित समष्टियों से दो प्रकार के वृद्धि वक्र प्राप्त होते हैं–

(a) 'J' आकार का वृद्धि स्वरूप या वृद्धि वक्र

(b) 'S' आकार का वृद्धि स्वरूप या सिग्मॉयड वृद्धि स्वरूप (Sigmoid Growth Form) या वृद्धि वक्र

(a) 'J' आकार का वृद्धि स्वरूप (J-shaped Growth Form)–

इस प्रकार की समष्टि की वृद्धि में घनत्व शुरू में तेजी से बढ़ता है लेकिन वातावरणीय प्रतिरोध या अन्य किसी कारक के प्रभाव के कारण यह सहसा रुक जाता है। ये कारक भोजन की समाप्ति, स्थान, मौसम के कारण या फिर जननकाल की समाप्ति के कारण हो सकता हैं। उदाहरण – कवकों, शैवालों और कीटों में इस प्रकार की वृद्धि देखी जाती है। (चित्र क्र. 3.2)

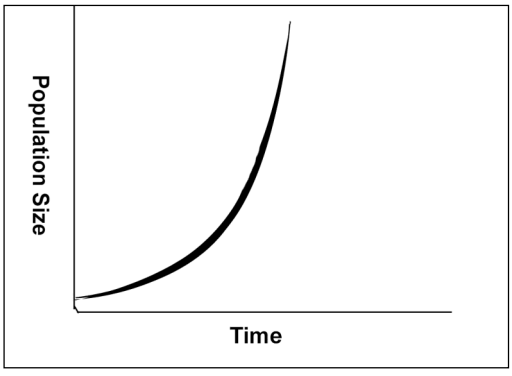

चित्र क्र. 3.2: चरघातांकी वृद्धि वक्र J आकार

टिप्पणी

'J' आकार की वृद्धि स्वरूप को निम्नांकित समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

$$\frac{\Delta N}{\Delta t} = rN \quad \text{या} \quad r = \frac{\Delta N}{\Delta t N}$$

N = संख्या

t = समय

r = वृद्धि दर

Δ = छोटा या कम परिवर्तन

(b) 'S' आकार का वृद्धि स्वरूप या सिग्मॉयड वृद्धि स्वरूप (S-shaped or Sigmoid Growth Curve) –

'S' आकार का वृद्धि स्वरूप

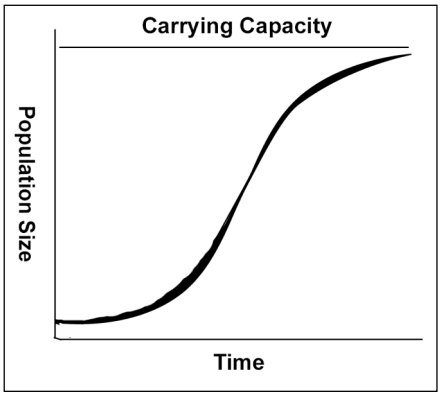

चित्र क्र. 3.3: सिग्मॉयड वृद्धि वक्र S आकार

इस प्रकार का S आकार के वृद्धि स्वरूप का अर्थ है कि जब किसी समाष्टि की वृद्धि और समय का ग्राफ खींचते है तो यह S प्रकार का होता है। इस ग्राफ से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि समष्टि शुरू में धीरे–धीरे वृद्धि करती है, फिर तेजी से वृद्धि करती है और उसके बाद वातावरणीय प्रतिरोध के बढ़ने पर यह क्रमिक रूप से धीमी गति से वृद्धि करने लगती हैं। यह वृद्धि स्वरूप सामान्य रूप से अधिकांश समष्टियों में देखा जा सकता है। प्रत्येक समष्टि में वृद्धि, इन्हीं दो स्वरूपों या उनके बीच की स्थिति में होती है।

'S' आकार के वृद्धि स्वरूप को निम्नांकित सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है–

$$\frac{\Delta N}{\Delta t} = rN\left(\frac{K-N}{K}\right)$$

यहाँ पर K वातावरणीय अवस्था में जीव संख्या का उच्चतम संभव आकार होता है, जिसे **ऊपरी ऐसिम्पटोट (Upper asymptote) या वहन क्षमता (Carrying capacity)** कहते हैं।

'S' आकार के वृद्धि स्वरूप का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अनुकूल परिस्थितियों में क्षेत्र में उपस्थित समष्टि में सर्वप्रथम धीरे–धीरे वृद्धि होती है। इसे धनात्मक त्वरण प्रावस्था **(Positive acceleration phase)** कहते हैं।

इसके पश्चात् समष्टि में तेजी से वृद्धि होने लगती है। इसे लॉगरिथिमक (Logarithmic) या एक्स्पोनेन्शियल प्रावस्था (Exponential phase) कहते हैं। बाद में पर्यावरणीय प्रतिरोध के कारण वृद्धि की दर में कमी आती है। इस अवस्था को ऋणात्मक त्वरण प्रावस्था (Negative acceleration) कहते हैं। यह प्रावस्था तब तक जारी रहती है, जब तक की समष्टि की वृद्धि स्थिर (Stationary) नहीं हो जाती। वृद्धि की ऊपरी सतह का स्तर जिसके आगे कोई वृद्धि नहीं हो पाती है, उसे ऊपरी ऐसिम्पटोट (Upper asymptote) या वहन क्षमता (Carrying capacity) कहते हैं। (चित्र क्र. 3.3)

3.6 इकेड्स या पारिज (Ecads)

वह समष्टि जो वातावरणीय प्रेरित भिन्नताएँ प्रदर्शित करते हैं, उन्हें इकेड्स या इकोफीन्स कहा जाता है। पौधे की एक ही जाती में अनेक इकेड्स पाये जा सकते हैं, जो आनुवंशिक रूप से तो समान होते हैं पर वातावरण के प्रभाव से कायिक (somatic) तथा परिवर्तनशील (reversible) होती है।

यदि एक प्रकार के पारिज को दूसरे प्रकार के पारिज के पर्यावरण में स्थानांतरित किया जाता है तो उसके कायिक लक्षण दूसरे पारिज के समान दिखाई देने लगते हैं। आज विभिन्न पादप प्रजातियों के कई पारिज ज्ञात हैं।

भारत के कई वैज्ञानिकों ने अध्ययन द्वारा विभिन्न जातियों के बारे में जानकारी प्रदान की। रामकृष्णन **(Ramkrishnan, 1960)** ने भारत में पायी जाने वाली पादप यूफोर्बिया हिरटा *(Euphorbia hirta)* में उपस्थित दो पारिज प्रकारों के बारे में बताया जो अलग–अलग क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रोस्ट्रेट प्रकार जो एक शुष्क, कठोर मृदा पर ऊगते है और दूसरा प्रोस्ट्रेट कॉम्पेक्ट प्रकार के होते हैं जो फुटपाथ पर पाए जाते है।

पांडेय (Pandey, 1962) के अनुसार बोथ्रिओक्लोआ परटुसा *(Bothriochloa pertusa)* एवं डाइकैन्थियम कैरिकोसम *(Dichanthium caricosum)* नामक घासों के आकारिकीय लक्षण अलग–अलग आवासों में अलग–अलग होते हैं। जैसे की प्राकृतीय स्वरूप (Habit form), कल्म (Culm) की संख्या, प्रति कल्म स्पाइक संख्या, स्पाइकलेटों की संख्या, प्रति स्पाइक तथा कुल बीज उत्पादन आदि। यह विभिन्नताएँ अतिचारण (Overgrazing) की तीव्रता (Intensity) तथा मृदा की आर्द्रता (Soil moisture) होती है।

दो प्रकार के इकेड्स पाए जाते हैं–

1. ऐसी प्रजातियाँ जो संरक्षण के अन्तर्गत होती है और बॉस्केट स्वरूप (Basket form) स्वभाव दर्शाती है।

टिप्पणी

2. ऐसी प्रजातियाँ जो अतिचारित क्षेत्रों में होती है और सॉसर आकार (Saucer shape) ग्रहण कर लेती है।

चारण तने के आमाप (size) प्रति रेसीम, स्पाइकों की संख्या, प्रति स्पाइक स्पाइकंलेटों की संख्या तथा स्पाइकलेट के निचले ग्लूमों (अनुशूकी) की लम्बाई एवं चौड़ाई में कमी आ जाती है। साथ ही लाल वर्णकों का विकास, समय से पूर्व पुष्पन होना जैसी प्रकार्यात्मक विभिन्नताएँ भी देखी जाती हैं।

3.7 पारिस्थितिक प्रारूप या पारिप्रारूप या इकोटाइप (Ecotype)

इसके अंतर्गत वह प्रजातियाँ आती हैं, जो आनुवंशिक रूप से भिन्न होती हैं। इसे पारिस्थितिक (Ecological) या प्रकार्यात्मक (Physiological) प्रभेद कहते हैं।

ट्यूरेसन (Turesson, 1922) के अनुसार – 'पारिप्रारूप ऐसे उत्पाद होते हैं, जो विशिष्ट आवास की पारिजाति (Ecospecies) के जीन प्रारूपी अनुक्रिया (Genotypical response) के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।' यह पौधे अन्तर–जननीय (Interfertile) होते हैं और आनुवंशिक रूप से भिन्न होते हैं, इसलिए इन्हें वर्गिकी प्रजाति के (Taxonomic species) अंतर्गत रखा जाता है। इकोटाइपों के अनुकूलन आनुवंशिक रूप से स्थायी या अपरिवर्तनीय (Irreversible) होते हैं।

विभिन्न कारणों से इकोटाइपों की उत्पत्ति होती है – जैसे की गुणसूत्रों में जीनों की संरचना में परिवर्तन, समसूत्री एवं अर्द्धसूत्री विभाजन में अनियमितता, प्रसंकरण द्वारा जीवों में पुनर्संयोजन होते हैं।

मिश्रा एवं राव **(Mishra & Rao, 1948)** ने लिण्डनबर्जिया पोलीएन्था *(Lindenbergia polyantha)* में इकोटाइप विभेदन का अध्ययन किया।

रामकृष्णन (**Ramkrishnan, 1961**) ने यूफोर्बिया हिरटा के दो इकोटाइप बताए।

इकोटाइप 1 – सीधा या ऊर्ध्व प्रकार (Erect type)

इकोटाइप 2 – श्यान प्रकार (Prostrate type), इसमे दो इकैडस पाये जाते हैं।

इकेड 1 – श्यान प्रकार (Prostrate type)

इकेड 2 – श्यान प्रकार (Prostrate compact)

एक प्रजाति के इकैड एवं इकोटाइपों का विकास विस्तृत क्षेत्रों में, उसकी वितरण क्षमता को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार की पृथक समष्टियों के विकास के परिणामस्वरूप प्रजाति, अपने आपको परिवर्तित करते हुये नये प्रकार की परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित कर लेते हैं। प्रजाति के द्वारा परिवर्तित पर्यावरण की अनुक्रियाओं के फलस्वरूप प्रजाति में विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं, जो कि अस्थायी (Temporary) हो सकते हैं अर्थात् पर्यावरण पर आधारित इकैड होते हैं अथवा आनुवंशिक रूप से स्थिर इकोटाइप होते हैं।

3.7.1 पारिप्रारूपों के प्रकार (Types of Ecotypes)

टिप्पणी

लारेन्स (Lawrence, 1945) ने जानकारी प्रदान की।

1. **जलवायवीय इकोटाइप (Climatic Ecotypes)** – प्रकाश, ताप, जल आदि जलवायवीय कारकों के कारण उत्पन्न होने वाले इकोटाइप को क्लाइमेटिक क्लाइन्स (Climatic clines) के नाम से भी जाना जाता है।
2. **मृदीय इकोटाइप (Edaphic Ecotype)** – मृदा में उपस्थित पोषक, नमी आदि की मात्रा में अन्तर के कारण इस प्रकार के इकोटाइप उत्पन्न होते हैं।
3. **ऐल्टिट्यूडिनल एवं लेटीट्यूडिनल इकोटाइप (Altitudinal and Latitudinal Ecotypes)** – ऊँचाई (Altitude) एवं ढलान (latitude) की अनुक्रिया के कारण इस प्रकार के इकोटाइप का विकास होता है।
4. **प्रकार्यात्मक इकोटाइप (Physiological Ecotype)** – प्रकाश अवधि पोषकों के ग्रहण करने जैसी अनुक्रियाओं के फलस्वरूप विकसित होते हैं।
5. **जलवायु–मृदीय इकोटाइप (Climo-edaphic Ecotypes)** – जलवायवीय एवं मृदीय कारकों की अनुक्रिया के फलस्वरूप इन प्रकार के इकोटाइप का विकास होता है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. आनुवंशिक रूप से भिन्न परन्तु कायिक रूप से समान प्रजातियों की समष्टि कहलाती हैं

   (अ) इकैड (ब) इकोटाइप

   (स) फिनोटाइप (द) जीनोटाइप

2. एक ही जाति के जीव को जो एक स्थान पर रहते है क्या कहा जाता है?

   (अ) जन समुदाय (ब) जन्तु समूह

   (स) जनसंख्या (द) जैव मण्डल

3. किसी इकाई समय मे जीव संख्या के द्वारा जन्म लिए जीवों की संख्या को क्या कहते है?

   (अ) मोरटेलीटी (ब) नाटेलीटी

   (स) उपर्युक्त दोनो (द) कोई नही

टिप्पणी

4. रॉनकियर के आवृत्ति के नियम के अनुसार सही क्रम हैं –

(अ) $A = B > C > D > E$ (ब) $A < B > C = D > E$

(स) $A > B > C \underset{<}{\overset{>}{=}} D > E$ (द) $A = B < C \underset{<}{\overset{>}{=}} D = E$

5. समष्टि घनत्व का सही सूत्र है

(अ) $D = \frac{N/a}{t}$ (ब) $D = \frac{N}{a}$

(स) $D = \frac{a}{t}$ (द) $D = \frac{N}{t}$

3.8 सामुदायिक पारिस्थितिकी (Community Ecology)

विभिन्न वैज्ञानिकों ने समुदाय को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है –

मोबियस (Mobius, 1877) के अनुसार– 'समुदाय जीवित प्राणियों का ऐसा समूह हैं, जिसमें समस्त प्रजातियाँ बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं तथा एक दूसरे को परस्पर रूप से प्रभावित करती हैं एवं प्रजनन द्वारा अपने अस्तित्व (Existence) को बनाए रखती हैं।

शेलफर्ड (Shelford, 1913) के अनुसार– 'समुदाय एकीकृत रूप (uniform) से वर्गीकृत पौधों का समूह है, जो कि आकार–प्रकार में समान होते हैं।'

3.8.1 समुदाय के अभिलक्षण (Characteristics of a Community)

एक समुदाय में पाये जाने वाले कुछ प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. **प्रजाति विविधता (Species Diversity)** – विभिन्न प्रकार के पौधे, जन्तुओं एवं सूक्ष्मजीवों से मिलकर जैविक समुदाय बनता है। यह सभी एक दूसरे से भिन्न होते हैं और इनकी संख्या **(Number of species)** एवं समष्टि बाहुल्यता (Population abundance) भी भिन्न होती है। प्रत्येक समुदाय में कई प्रजातियाँ (species) पायी जाती है। जिनमें से जो प्रजातियाँ अधिकता में पायी जाती है वे प्रभावी होती है और कुछ प्रजातियाँ अल्प संख्या में होती है। नव स्थापित समुदायों की जैव–विविधता पुराने जैविक समुदायों से कम होती हैं।
2. **वृद्धि स्वरूप एवं संरचना (Growth Form and Structure)** – वृक्ष, झाड़ी, शाक, मॉसेस आदि वृद्धि स्वरूप सब समुदाय के अन्तर्गत आते हैं। प्रत्येक वृद्धि स्वरूप में कई अनेक प्रकार के पौधे होते हैं। ये वृद्धि स्वरूप ही किसी जैविक समुदाय के संरचनात्मक स्वरूपों के व्यवस्था के क्रम के आधार पर उस समुदाय में प्रक्षेपीकरण (Zonation) अर्थात् क्षैतिज

स्तरण (Layering) एवं स्तरीकरण (Stratification) अर्थात् उर्ध्व स्वरण (Vertical layering) जैसी क्रियाएँ होती है।

3. **प्रभाविता (Dominance)** – समुदाय में उपस्थित सभी प्रजातियाँ समान रूप से महत्वपूर्ण प्रजाति दूसरी प्रजातियों पर नियंत्रण रखती हैं अतः इन प्रजातियों को प्रभावी (dominant) प्रजातियाँ कहते हैं।
4. **अनुक्रमण (Succession)** – एकदिशीय परिवर्तनों (Unidirectional changes) के कारण जैविक समुदाय का विकास होता है और कुछ वनस्पतियाँ उस क्षेत्र में प्रभावी और स्थिर हो जाती है।
5. **पोषण संरचना (Trophic Structure)** – प्रत्येक समुदाय की एक निश्चित पोषण संरचना होती है, जिसमें स्वयंपोषी एवं विषमपोषी जंतु एक स्वयं में परिपूर्ण (Self-sufficient) एवं जीवों के संतुलित संगठन के रूप में उपस्थित होते हैं।

3.8.2 समुदाय का आकार एवं संरचना (Community Size and Structure)

जैविक समुदाय का आकार छोटा अथवा बड़ा दोनों प्रकार का हो सकता है। उदाहरण – तालाब, पत्ती की सतह आदि छोटे आकार के समुदाय होते हैं जबकि वन, मरुस्थल आदि बड़े आकार के समुदाय होते हैं।

एक समुदाय मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है, खुला एवं बंद। खुले समुदाय के उत्पादक दूर दूर स्थित होते हैं, जिससे दूसरी समष्टियों के स्थापित होने के लिए जगह बच जाती है जबकि बन्द समुदाय में पौधे इतने एक दूसरे के पास स्थित होते है कि दूसरी समष्टि की स्थापना इनके मध्य नहीं हो सकती।

3.8.3 समुदाय की संरचना के अध्ययन में उपयोगी लक्षण (Characters Used in the Study of Community Structure)

हैनसन एवं चर्चिल (Hanson and Churchill, 1965) ने समुदाय के अध्ययन के लिये उपयोगी लक्षणों को दो समूहों में वर्गीकृत किया है –

1. विश्लेषणात्मक लक्षण (Analytical Characters)
2. संश्लेषणात्मक लक्षण (Synthetic Characters)

3.8.4 विश्लेषणात्मक लक्षण (Analytical Characters)

इन लक्षणों की सहायता से किसी समुदाय का सम्पूर्ण विश्लेषण एवं व्याख्या की जा सकती है। इसमें दो लक्षणों का समावेश किया गया है–

(1) परिमाणात्मक लक्षण (Quantitative Characters)

(2) गुणात्मक लक्षण (Qualitative Characters)

टिप्पणी

(1) **परिमाणात्मक लक्षण (Quantitative Characters)** – इसके अंतर्गत ऐसे लक्षणों का समावेश किया गया है जो कि लक्षणों के मात्रात्मक या संख्यात्मक आँकड़े प्रदर्शित करते है। निम्नलिखित परिमाणात्मक लक्षणों का उपयोग किया जाता है–

आवृत्ति (Frequency) – प्रवृत्तियों की संख्या ज्ञात करने के लिये एक निश्चित माप के आकार के क्वाड्रेट को एक निश्चित संख्या में अलग–अलग कई स्थानों पर एवं विभिन्न दिशाओं में फेंके जाते हैं तथा उसके अन्दर उपस्थित प्रजातियों की गणना की जाती है।

क्वाड्रेट की वह संख्या जिसमें एक पादप जाति उपस्थित होती है तथा अध्ययन किये गये क्वाड्रेटों की कुल संख्या के अनुपात को उस जाति की आवृत्ति (Frequency) कहते हैं। जब इसकी गणना प्रतिशत के रूप में की जाती है तो इसे प्रतिशत आवृत्ति (Percentage frequency) कहते हैं।

$$\text{आवृत्ति \%} = \frac{\text{क्वाड्रेट की कुल संख्या जिसमें पादप जाति उपस्थित है}}{\text{अध्ययन किये गये क्वाड्रेटों की कुल संख्या}} \times 100$$

प्रत्येक प्रजाति की प्रतिशत आवृत्ति ज्ञात करने के पश्चात् उन्हें वर्गीकृत किया जाता है। **रॉनकियर (Raunkiaer, 1934)** ने एक समुद्राय में उपस्थित प्रजातियों की उनकी प्रतिशत आवृत्ति के आधार पर पाँच आवृत्ति वर्गों (frequency classes) में वर्गीकृत किया है।

Frequency Classes	% Frequency
A	0-20
B	21-40
C	41-60
D	61-80
E	81-100

रॉनकियर द्वारा 8078 पादपों की औसत आवृत्ति की गणना में A = 53%, B = 14%, C = 9%, D = 8% तथा E =16% मान प्राप्त हुआ।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृतिक समुदायों मे किसी जाति की कम आवृत्ति में अधिक आवृत्ति की अपेक्षा उनकी संख्या बहुत अधिक होती है। यह रोनकियर का नियम कहलाता है, जैसे–

$$A > B > C \leq D < E$$

किन्तु यह नियम सदैव लागू नहीं होता है।

घनत्व (Density) – किसी क्षेत्र में उपस्थित एक जाति के सदस्यों की कुल संख्या को घनत्व कहा जाता है। किसी जाति के प्रति इकाई क्षेत्र में सदस्यों की संख्या उसका घनत्व कहलाता है। किसी जाति का घनत्व ज्ञात करना जरूरी होता है क्योंकि आवृत्ति के द्वारा किसी जाति के वितरण की सही जानकारी तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि उसे दूसरे लक्षणों, जैसे घनत्व, बाहुल्यता आदि से सम्बन्धित न किया जाए। निम्न सूत्र की सहायता से पादप जातियों के घनत्व की गणना की जाती है –

$$\text{घनत्व (Density)} \quad \frac{\text{अध्ययन किये गये सभी क्वाड्रेट्स में उपस्थित एक जाति के कुल सदस्यों की संख्या}}{\text{अध्ययन किये गये क्वाड्रेटों की कुल संख्या}}$$

बाहुल्यता (Abundance) – यह प्रति नमूना इकाई में उपस्थित किसी जाति के सदस्यों की कुल संख्या को प्रदर्शित करती है। इसकी गणना निम्न सूत्र से की जा सकती है –

$$\text{बाहुल्यता (Abundance)} = \frac{\text{अध्ययन किये गये सभी क्वाड्रेट्स में उपस्थित एक जाति के कुल सदस्यों की संख्या}}{\text{क्वाड्रेट्स की वह संख्या जिसमें वह जाति उपस्थित है}}$$

आवरण (Cover) एवं आधारीय क्षेत्रफल (Basal Area) – आवरण शब्द का प्रयोग सामान्यतः पादप जाति के द्वारा घेरे गये प्रतिशत क्षेत्र के लिए किया जाता है। यह किसी पादप जाति का प्रभावी प्रदेश **(influence zone)** प्रदर्शित करता है। इसके दो रूप हैं –

(a) क्राउन आवरण (Crown Cover) – इसका उपयोग पादप जाति के ऊपरी भागों अर्थात केनॉपी **(canopy)** के लिए किया जाता है। यह पादप जाति (पौधे) के ऊपर दिखायी देने वाले भागों, जैसे–तना, शाखा, पत्तियों, पुष्पक्रमों आदि के द्वारा भूमि का घेरा गया क्षेत्र होता है। घास एवं शाक के सन्दर्भ में इसे हर्बेज आवरण (herbage cover) तथा वृक्षों के सन्दर्भ में इसे केनॉपी आवरण (canopy cover) कहते हैं।

(b) आधारीय आवरण (Basal Cover) – यह पौधे के तने के आधार पर भूमि की सतह का घेरा गया क्षेत्र होता है। इसका मापन भूमि की सतह (यदि तना भूमि के पास ही शाखित हो गया हो) या उससे 2.5 से.मी. ऊपर तने की गोलाई मापकर किया जाता है।

आधारीय आवरण की अपेक्षा क्राउन आवरण काफी अधिक होता है। घासों के लिए आधारीय आवरण 1-2% तक हो सकता है जबकि इनका हर्बेज आवरण पूर्ण अथवा 100% तक हो सकता है तथा मृदा को पूरी तरह से ढंक लेता है। आवरण किसी जाति की प्रभाविता (dominance) को प्रदर्शित करता है। किसी जाति का आवरण क्षेत्र (cover area) जितना अधिक होगा उतनी ही उसकी प्रभाविता अधिक होगी।

टिप्पणी

वैज्ञानिकों ने अध्ययनों के अनुसार–आवरण या हर्बेज आवरण के मान के आधार पर प्रजातियों को 5 समूहों में वर्गीकृत किया गया है–

वर्ग A	**5% से कम**
वर्ग B	**5-25%**
वर्ग C	**26-50%**
वर्ग D	**51-75%**
वर्ग E	**76-100%**

(2) **गुणात्मक लक्षण (Qualitative Characters)** – इसके अन्तर्गत पौधों के गुणात्मक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है –

(A) जैव रूप (Life Forms) – वैज्ञानिकों ने पौधों को उनके जैव रूपों, आवास स्थलों तथा अन्य लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत किया है। किसी पौधे के कायिक आकार, संरचना एवं बाह्य रूपरेखा को ही जैव रूप कहते हैं। उदाहरण – एक वृक्ष, एक झाड़ी, एक घास के समान पादप।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक **रॉनकियर (Raunkiaer, 1934)** ने प्रतिकूल परिस्थितियों में पौधों में उपस्थित विश्रामी कलिकाओं (perennating buds) की स्थिति तथा उनके संरक्षण की डिग्री के आधार पर पौधों को निम्नलिखित पाँच जीवों रूपों में विभाजित किया है –

(i) फेनेरोफाइट्स (Phanerophytes) – इसमें वृक्ष तथा 25 से.मी. से अधिक ऊँचाई वाले आरोही पौधे एवं झाड़ियाँ होती हैं जिसमें वृद्धि करती हुई कलिकाएँ नग्न या शल्की पत्तियों से ढंकी रहती हैं तथा ये सीधी शाखाओं पर भूमि से काफी ऊँचाई पर स्थित होती है। इन कलिकाओं को अपेक्षाकृत कम सुरक्षा प्राप्त होती है। ये पौधे ट्रॉपीकल (tropical) क्षेत्रों में पाये जाते हैं तथा इनकी संख्या ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर क्रमशः कम होती जाती है।

आकार एवं ऊँचाई के आधार पर फेनेरोफाइट्स को निम्नलिखित चार उप–जैव रूपों (sub-life forms) में वर्गीकृत किया गया है –

(i) नैनोफेनेरोफाइट्स (Nanophanerophytes) – इसमें 2 मीटर से कम ऊँचाई वाली झाड़ियों को शामिल किया गया है।

(ii) माइक्रोफेनेरोफाइट्स (Microphanerophytes) – इसमें 2 से 8 मीटर ऊँचे वृक्षों को शामिल किया गया है।

(iii) मीजोफेनेरोफाइट्स (Mesophanerophytes) – इसमें 8 से 30 मीटर तक की ऊँचाई के वृक्षों को शामिल किया गया है।

(iv) मेगाफेनेरोफाइट्स (Megaphanerophytes) – इसमें 30 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले वृक्षों को शामिल किया गया है।

टिप्पणी

(ii) **केमीफाइट्स (Chamaephytes)** – ये पौधे अत्यधिक ऊँचाई वाले ठण्डे पहाड़ी भागों में पाये जाते हैं, जिसमें कलिकाएँ भूमि की सतह के समीप स्थित होती हैं, 25 से.मी. तक ऊँचाई पर पाई जाती हैं।

(iii) **हेमीक्रिप्टोफाइट्स (Hemicryptophytes)** – ये पौधे ठण्डी जलवायु वाले प्रदेशों में पाये जाते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में इनका वायवीय भाग नष्ट हो जाता है तथा इनकी कलिकाएँ मिट्टी के अन्दर सुरक्षित रहती हैं।

(iv) **क्रिप्टोफाइट्स (Cryptophytes)** – ये पौधे प्रायः शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन पौधों में कलिकाएँ भूमि की सतह के नीचे अथवा जल के अन्दर ट्यूबर (tuber), बल्ब (bulb) या प्रकन्द (rhizome) के रूप में उपस्थित होती है। यह पौधे सूखे के प्रभाव से बच जाते हैं यह जियोफाइट्स एवं हेलीफाइट्स प्रकार में पाये जाते है–

(a) **जियोफाइट्स** – स्थलीय पादप होते हैं, कलिकाएँ बल्ब के रूप में अन्दर उपस्थित रहती है।

(b) **हेलोफाइट्स** – दलदली क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

(v) **थेरोफाइट्स (Therophytes)** – ये ऐसे मौसमी पौधे हैं जो अपना जीवन–चक्र एक अनुकूल मौसम में पूर्ण कर लेते हैं तथा वर्ष के शेष प्रतिकूल परिस्थितियों में बीजों के रूप में प्रसुप्त (dormant) अवस्था में रहते हैं।

(vi) **जैव वर्णक्रम अथवा जैविक स्पेक्ट्रम (Biological Spectrum)** – किसी समुदाय में उपस्थित सभी जातियों के विभिन्न जीवन रूपों का प्रतिशत वितरण जैविक स्पेक्ट्रम अथवा जैव वर्णक्रम कहलाता है।

किसी स्थान का जैविक स्पेक्ट्रम पता करने के लिए उस स्थान पर उपस्थित प्रत्येक जीवन रूप का प्रतिशत मान ज्ञात होना जरूरी है। रॉनकियर (Raunkiaer) ने सम्पूर्ण विश्व के पादपजोत (flora) में प्रत्येक जीवन रूप के अनुपात को निर्धारित किया और वर्गों को इस प्रकार विन्यस्त किया जो स्पेक्ट्रम के रंगों के विन्यास के समरूप (analogous) था जिसे उन्होंने सामान्य जैविक स्पेक्ट्रम कहा। सामान्य जैविक स्पेक्ट्रम में प्रत्येक जीवन रूप का प्रतिशत मान निम्न प्रकार दर्शाया–

फेनेरोफाइट्स	=	46%
केमीफाइट्स	=	9%
हेमीक्रिप्टोफाइट्स	=	26%
क्रिप्टोफाइट्स	=	6%
थेरोफाइट्स	=	13%

टिप्पणी

(B) जैविक स्पेक्ट्रम का प्रयोग किसी क्षेत्र की जलवायु ज्ञात करने में किया जाता है। इसमें किसी क्षेत्र के जैविक स्पेक्ट्रम की तुलना रॉनकियर के सामान्य स्पेक्ट्रम से की जाती है तथा जीवन रूपों के आधार पर जलवायु को वर्गीकृत किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षेत्र के जैविक स्पेक्ट्रम में केमीफाइट्स की संख्या रॉनकियर के सामान्य स्पेक्ट्रम से बहुत ज्यादा है, तो यह अनुमान किया जा सकता है कि उस क्षेत्र की जलवायु बहुत अधिक ठण्डी होगी क्योंकि ये पौधे ठण्डी जलवायु में उगते हैं।

(C) रॉनकियर का पत्ती के आमाप के आधार पर वर्गीकरण (Raunkiaer's Leaf Size Classification) – रॉनकियर ने पौधों का दूसरा वर्गीकरण पत्तियों के आमाप के आधार पर प्रस्तुत किया तथा पौधों को निम्नलिखित छः वर्गों में विभाजित किया। प्रत्येक वर्ग में पत्ती का आमाप अपने पूर्व वर्ग से नौ गुना बड़ा होता है।

वर्ग का नाम (Name of the Class)	पत्ती का आमाप (Leaf Size)
1. लेप्टोफिल्स (Lephtophylls)	25 वर्ग मि.मी. से कम
2. नैनोफिल्स (Nanophylls)	26–225 वर्ग मि.मी.
3. माइक्रोफिल्स (Microphylls)	226–2,025 वर्ग मि.मी.
4. मीजोफिल्स (Mesophylls)	2,026–18,225 वर्ग मि.मी.
5. मैक्रोफिल्स (Macrophylls)	18,226–1,64,025 वर्ग मि.मी.
6. मेगाफिल्स (Megaphylls)	1,64,025 वर्ग मि.मी. से बड़ी

3.8.5 संश्लेषणात्मक लक्षण (Synthetic Characters)

विश्लेषणात्म्क लक्षणों के मापन से व्युत्पन्न लक्षणों को संश्लेषणात्मक लक्षण कहते हैं। इनका निर्धारण विश्लेषणात्मक लक्षणों के आँकड़ों से परिकलित (computed) किया जाता है।

3.9 जैव–विविधता (Biodiversity)

3.9.1 जैव–विविधता की परिभाषा (Definition of Biodiversity)

जैव विविधता की परिभाषा सर्वप्रथम सन् 1986 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक वाल्टर, जी. रॉसन (Walter G. Rosen) ने की थी वह इस प्रकार से है।

पृथ्वी पर उपस्थित पादपों, प्राणियों, सूक्ष्म जीवों में पायी जाने वाली विभिन्न किस्में तथा विभिन्नताएँ 'जैव–विविधता' कहलाती हैं। दूसरे शब्दों में, पादपों, प्राणियों तथा सूक्ष्मजीवों की जातियों में प्रचुरता के फलस्वरूप एक निश्चित आवास में अन्योन्यक्रिया तन्त्र में विविधता उत्पन्न होती है, इसे जैव–विविधता कहा जाता है।

जैव–विविधता में पौधों तथा प्राणियों (पादप, प्राणी तथा सूक्ष्मजीवधारी) की विभिन्न प्रजातियाँ सम्मिलित होती हैं, जो किसी पारिस्थितिक तन्त्र में पारस्परिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप निवास करती हैं। जैव–विविधता में पौधों तथा प्राणियों की विभिन्न प्रजातियाँ शामिल होती हैं। संक्षेप में, जैव–विविधता, जीन्स, प्रजातियों तथा पारिस्थितिक की समग्रता होती है।

3.9.2 जैव–विविधता की मूल अवधारणा (Basic Concept of Biodiversity)

जैव–विविधता की तीन प्रमुख अवधारणाएँ होती है–

(अ) आनुवंशिक विविधता (Genetic Diversity)

(ब) जाति विविधता (Species Diversity)

(स) पारिस्थितिक विविधता (Ecological Diversity)

(अ) आनुवंशिक विविधता (Genetic Diversity) – एक ही प्रजाति के विभिन्न सदस्यों के मध्य तथा विभिन्न प्रजातियों के मध्य पायी जाने वाली आनुवंशिक परिवर्तिता **(Genetic Variability)** को आनुवंशिक विविधता (genetic diversity) कहते हैं। पौधों या प्राणियों की किसी प्रजाति का हर सदस्य अपनी जीनों की संरचना में दूसरे सदस्यों से बहुत भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, हर मनुष्य दूसरे मनुष्यों से बहुत भिन्न होता है अर्थात् आनुवंशिक विविधता का आशय जातियों में जीनों की भिन्नता से है। आनुवंशिक विविधता किसी समष्टि (population) को पर्यावरण के अनुकूल होने और प्राकृतिक चयन के प्रति अनुक्रिया प्रदर्शित करने के योग्य बनाती है।

किसी समुदाय की आनुवंशिक विविधता, कम जातियाँ होने की तुलना में अधिक जातियाँ होने पर अधिक होती है। एक जाति या इसकी एक समष्टि में कुल आनुवंशिक विविधता को जीन कोश **(gene pool)** कहते हैं। यदि किसी जाति में आनुवंशिक विविधता अधिक है, तो यह बदली हुई पर्यावरणीय दशाओं में अपेक्षाकृत सभी प्रकार के अनुकूलन कर सकती है। आनुवंशिक विविधता का उपयोग कृषि में अधिक एवं उत्तम उत्पादन तथा विकास के लिए किया जाता है।

(ब) जाति विविधता (Species Diversity) – जीवित प्राणियों एवं पादपों में विविधता पायी जाती है, जिसे जाति विविधता (species diversity) कहते हैं। जाति विविधता का आशय एक क्षेत्र में जातियों की किस्म (प्रकार) से होता है। एक इकाई क्षेत्र में जाति की जितनी किस्में अथवा प्रकार पाये जाते हैं, उसे जातीय समृद्धता कहते हैं। पृथ्वी पर जाति विविधता समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में विविधता अधिक तथा कुछ में कम है। भूमध्य रेखीय प्रदेश में जाति विविधता अन्य भौगोलिक क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। भारत के मानसूनी क्षेत्रों में जाति विविधता सूखे क्षेत्रों से अधिक पायी जाती है। सामान्यतः जातियों की संख्या अधिक होने पर जाति विविधता भी अधिक होती है। जाति विविधता के मूल्यांकन के लिए इनकी संख्या, बहुलता,

टिप्पणी

विविधता आदि का अध्ययन किया जाता है। इन्हीं के आधार पर किसी क्षेत्र विशेष को जाति विविधता से समृद्ध अथवा विपन्न (निर्बल) माना जाता है। हमारे देश में नदियों वाला क्षेत्र जैव–विविधता की दृष्टि से समृद्ध एवं बर्फाच्छादित तथा रेगिस्तानी प्रदेश जैव–विविधता की दृष्टि से विपन्न (निर्बल) है।

(स) पारिस्थितिक विविधता (Ecological Diversity) – किसी जैविक समुदाय में पायी जाने वाली प्रजातियों की संख्या को पारिस्थितिक विविधता (ecological diversity) कहते हैं। किसी प्रदेश में अनेक पारिस्थितिक तन्त्र हो सकते हैं तथा प्रत्येक पारिस्थितिक तन्त्र में निश्चित संख्या में पौधों तथा जन्तुओं की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। पारिस्थितिक तन्त्र की स्थिरता पारिस्थितिक तन्त्र में जैव–विविधता पर निर्भर होती है। पारिस्थितिक तन्त्र में जैव–विविधता अधिक होने पर पारिस्थितिक तन्त्र में स्थिरता अधिक होती है। इसका कारण यह है कि अधिक जैव–विविधता के पारिस्थितिक तन्त्र में किसी भी उपभोक्ता के लिए अनेक प्रकार के जीव उपलब्ध होते हैं। अतः यदि ऐसे पारिस्थितिक तन्त्र में एक या दो जीव किसी भी प्रकार से विलुप्त हो जाते हैं तो उनके स्थान की आपूर्ति अथवा प्रतिस्थापन के लिए अन्य जीव भी पारिस्थितिक तन्त्र में उपलब्ध हो जाते हैं अर्थात् एक या दो जीव के समाप्त होने पर पारिस्थितिक तन्त्र की स्थिरता पर नगण्य प्रभाव पड़ता है।

जैव–विविधता की मूल अवधारणाएँ मुख्यतः उपर्युक्त तीन प्रकार की होती हैं। ये जैव–विविधताएँ विकास की प्राकृतिक प्रक्रिया का परिणाम है। इनके अतिरिक्त कृषि जैव–विविधता **(agriculture biodiversity)** मानव निर्मित विविधता के रूप में प्रकट होती है। किसानों, चरवाहों, पशुपालकों, मछुआरों आदि द्वारा हजारों साल में सावधानीपूर्वक चयन करके और नस्ल सुधार करके खेती योग्य नई प्रजातियाँ विकसित की गई हैं। खेती की पैदावार, पशुधन, मछली और अन्य जलीय प्राणी जिनकी खेती होती है या पैदावार ली जाती है अथवा अन्य जातियों, जैसे–सूक्ष्मजीव, चिड़ियाँ, कीट आदि भी कृषि जैव–विविधता के अन्तर्गत आते हैं। कृषि जैव–विविधता को 'कृषि विविधता' अथवा 'कृषि विज्ञान जैविक विविधता' के नाम से भी जाना जाता है।

कृषि जैव–विविधता को चावल के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है–चावल का वैज्ञानिक नाम **ओराइजा सटाइवा** *(Oryza sativa)* है। इसकी भारत में करीब दो लाख किस्में हैं। इन किस्मों के अलग–अलग लक्षण होते हैं। कुछ किस्मों का स्वाद अलग होता है तथा कुछ किस्मों का आकार और रंग अलग प्रकार का होता है।

3.9.3 जैव–विविधता का महत्त्व (Importance of Biodiversity)

जैव जगत से अनेक मानव को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। जैव–विविधता के महत्त्व को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है–

टिप्पणी

1. **आर्थिक महत्त्व (Economic Importance) –**

जैव विविधता– आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इससे खाद्यान्न, रेशे, भवन–निर्माण सामग्री एवं जैव ईंधन की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त इससे पर्यटन और उससे सम्बन्धित सेवाओं से भी आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं। इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

(i) खाद्यान्न – दुनिया के अनाज के स्रोतों का लगभग 80 प्रतिशत पादपों की लगभग 20 प्रजातियों से प्राप्त किया जाता है। तीन प्रमुख फसलें–गेहूँ, चावल व मक्का मनुष्य का दो–तिहाई भोजन बनाती हैं खेती की फसलों के अलावा पत्ते, फल और कन्दमूल जैसी चीजें भी पौधों से प्राप्त होती है। अनेक भोजन देने वाले नये पादपों का भी विकल्पों भोजन स्रोतों के रूप में प्रयोग होता है।

(ii) औषधियाँ – पारम्परिक दवाओं के अतिरिक्त ऐलोपैथी तथा होम्योपैथी दवाओं का एक बड़ा हिस्सा भी पौधों से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त जैविकीय संसाधनों से अनेक प्रकार की औषधियाँ भी प्राप्त होती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व की 50 प्रतिशत औषधियाँ जैविकीय संसाधनों से प्राप्त होती है।

(iii) जैव ईंधन – जैव ईंधन, जैसे बायो डीजल, बायो गैस आदि जैव स्रोतों से मिलते हैं। जैव ईंधन का मुख्य उद्देश्य परिवहन के लिए जीवाश्म ईंधनों का स्थानापन्न ईंधन प्राप्त करना है।

पादप जगत की कुछ प्रजातियाँ, जैसे– करंज, नीम, रतनजोत (जेट्रोफा) महुआ आदि मूल तिलहन की श्रेणी में आती हैं। इन पादप जातियों से पर्याप्त मात्रा में तेल प्राप्त होता है एवं इस तेल को जैव ईंधन में परिवर्तित करना आर्थिक एवं पारिस्थितिक दृष्टि से लाभप्रद होता है।

(iv) रेशे – रेशे पौधे के तने, पत्तियों, फलों अथवा बीजों से प्राप्त किये जाते हैं। कपास, जूट, नारियल, जटा, सनई, बाँस और अन्य घासें रेशों के स्रोत हैं। इनका उपयोग अनेक उद्योगों जैसे – कागज, कपड़ा, रस्सी, गिन्नी बैग, गलीचा आदि में किया जाता है, जिससे आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

(v) भवन–निर्माण सामग्री – भवन निर्माण में काम आने वाले बाँस, पेड़ों की पत्तियाँ (नारियल एवं खजूर) एवं मुख्य रूप से इमारती लकड़ी जंगलों से प्राप्त होती है।

(vi) पर्यटन – जैव विविधता से समृद्ध क्षेत्र पर्यटन के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान होते हैं। पर्यटन एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है। इसके द्वारा इससे सम्बन्धित सेवाओं में लगे लोगों को रोजी–रोटी में सहायता मिलती है तथा सरकार को भी विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी

2. **औषधीय महत्व (Medicinal Importance)** – अनेक महत्त्वपूर्ण औषधियाँ एवं दवाईयाँ पादप पदार्थों से तैयार की जाती है। पुराने समय से ही हजारों दवाईयाँ पादपों से प्राप्त पदार्थों से बनाई जाती रही हैं। इनमें से 25 प्रतिशत औषधियाँ मात्र 120 पादप जातियों से प्राप्त की जाती हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण औषधियाँ जो पादपों से प्राप्त की जाती हैं, इस प्रकार है –

   (i) सर्पेन्टाइन *(Serpentine)* – इसका उपयोग उच्च रक्त चाप को ठीक करने, अनिद्रा को समाप्त करने एवं मानसिक रोग के उपचार में किया जाता है। यह दवा सर्पगन्धा *(Rauwolfia serpentina)* की जड़ों से प्राप्त की जाती है।

   (ii) बैलाडोना *(Belladonna)* – इसका प्रयोग आँख के परीक्षण के समय पुतली को चौड़ा करने में किया जाता है। यह दवा एट्रोपा बेलाडोना *(Atropa belladonna)* की पत्तियों से प्राप्त की जाती है।

   (iii) कुनैन (Quinine) – इसका प्रयोग मलेरिया बुखार के उपचार में किया जाता है। इसे सिनकोना की जातियों, जैसे – सिनकोना ऑफिसिनेलिस *(Cinchona officinalis)*, सिनकोना लेडजेरिआना *(C.ladgeriana)* की छाल से प्राप्त किया जाता है।

3. **पारिस्थितिक महत्त्व (Ecological Importance)** – पारितन्त्र में अनेक प्रकार की प्रजातियाँ होती हैं, जो भोजन परागण और बीजों के परागण जैसे कार्यों के लिए परस्पर निर्भर करती है। भोजन श्रृंखला, भोजन जाल और पारिस्थितिकी में सन्तुलन बनाये रखने के लिए हर प्रजाति का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है।

   पारितन्त्रों (ecosystem) के कारण जैव–विविधता से अनेक प्रकार के पर्यावरण सम्बन्धी लाभ होते हैं। इनमें जलचक्र एवं भू–रासायनिक चक्र महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त ऑक्सीजन का उत्पादन एवं कार्बन डाइऑक्साइड में कमी (पौधे प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया में CO_2 लेकर O_2 छोड़ते हैं) और मृदा एवं जल संरक्षण जैसे कुछ महत्वपूर्ण लाभ है। जैव–विविधता की हानि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु में परिवर्तन ला रही है। पौधे कार्बन डाईऑक्साइड को ऑक्सीजन में बदलने के प्रमुख साधन हैं। वनोन्मूलन एवं बढ़ते औद्योगीकरण के कारण वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य गैसों की मात्रा बढ़ रही है जिससे 'ग्लोबल वार्मिंग' एवं 'हरितगृह प्रभाव' जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण पर्वतों की बर्फ पिघल रही है तथा समुद्रों का जल स्तर बढ़ रहा है।

   अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीव, जैसे–फफूँद (कवक), बैक्टीरिया आदि मृत जैविक पदार्थों पर जीवित रहते हैं तथा इन जैविक पदार्थों का विघटन सरल पदार्थों में करके अन्य जीवों को भोजन के रूप में उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार जैव–विविधता विश्व स्तर पर जीवन के आधार को बनाए रखने, मृदा एवं जल के संरक्षण में मृदा जीवों के विघटन और जल एवं खनिज चक्रों को बनाये रखने में सहायक हैं।

4. **सौन्दर्यपरक एवं सांस्कृतिक महत्त्व (Aesthetic and Cultural Importance)** – जैव–विविधता का प्राकृतिक सौन्दर्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। पर्यटन वास्तव में पारिस्थितिक पर्यटन ही है। जानवरों का पालना, बगीचों की देख–रेख करना, पक्षी निरीक्षण एवं वन्य जीवन भी जैव–विविधता से सम्बन्धित है।

   मानव समाज पादपों एवं प्राणियों के साथ सांस्कृतिक रूप से जुड़ा रहा है। आज भी अनेक घरों में तुलसी *(Ocimum sanctum)* लगायी जाती है तथा पूजी भी जाती है। इसके अतिरिक्त पीपल *(Ficus religiosa)* एवं बरगद *(Ficus benghalensis)* जैसे पादप तथा विभिन्न अन्य वृक्ष भी धार्मिक माने जाते हैं एवं इनकी पूजा की जाती है। प्राणी भी अनेक क्षेत्रों में, जैसे–हाथी (दक्षिण भारत), काला मृग (राजस्थान), गाय, साँप आदि आदर के साथ देखे जाते हैं तथा पूजे जाते हैं। अनेक पादप एवं प्राणी राष्ट्रीय गौरव एवं राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में जाने जाते हैं, जैसे–भारत में राष्ट्रीय प्राणी–बाघ, राष्ट्रीय पक्षी–मोर, राष्ट्रीय पुष्प–कमल एवं राष्ट्रीय वृक्ष–पीपल है।

5. **सामाजिक महत्त्व (Social Importance)** – मानव ने जैव–विविधता की कुछ जैव प्रजातियों को सामाजिक रूप से महत्त्व प्रदान कर रखा है। उदाहरण के लिए, विभिन्न देवी–देवताओं से सम्बन्धित होने के कारण अनेक प्रकार के पौधे एवं जन्तु पवित्र माने जाते हैं तथा उनकी पूजा की जाती है। तुलसी, वटवृक्ष, बेलपत्र तथा पीपल आदि वृक्षों को भी धार्मिक रूप से महत्त्वपूर्ण माना जाता है तथा उनकी पूजा की जाती है। ऐसी सभी जैव प्रजातियों को जिनकी जैव–विविधता की दृष्टि से सामाजिक रूप से महत्ता है, को पर्यावरण में संरक्षण प्राप्त हो जाता है।

6. **नैतिक महत्त्व (Ethical Importance)** – मानव ने जैव–विविधता की कुछ प्रजातियों को नैतिक महत्त्व प्रदान कर रखा है। भारत में अनेक पुस्तकें वन्य प्राणियों की कहानियों पर आधारित हैं, इन पुस्तकों के आधार पर भारतीय समाज में मानवीय आचरण के नैतिक मूल्यों को बताया गया है।

3.10 भारतीय जैव–विविधता (Biodiversity of India)

भारत को इसकी जैव विविधता के कारण विश्व के 12 विराट–विविधता (mega-diversity) – वाले देशों में सम्मिलित किया गया है। भारत में विश्व के कुल भू–भाग का लगभग 2 प्रतिशत क्षेत्रफल है, जबकि वहाँ पर विश्व की कुल ज्ञात जैव प्रजातियों का लगभग 5 प्रतिशत हिस्सा पाया जाता है। भारत की इस विराट (वृहद्) जैव–विविधता का कारण यहाँ की आनुवंशिक जाति एवं पारिस्थितिक प्रणालियों की विविधता है। बर्फ से आच्छादित हिमालय पर्वत से प्रायद्वीप के गर्म समुद्री तट तक, उष्ण पश्चिमी घाट से लेकर राजस्थान के गर्म रेगिस्तान एवं लद्दाख के ठण्डे रेगिस्तान तक विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं आवासों की उपलब्धता यहाँ की प्रमुख विशेषता है।

टिप्पणी

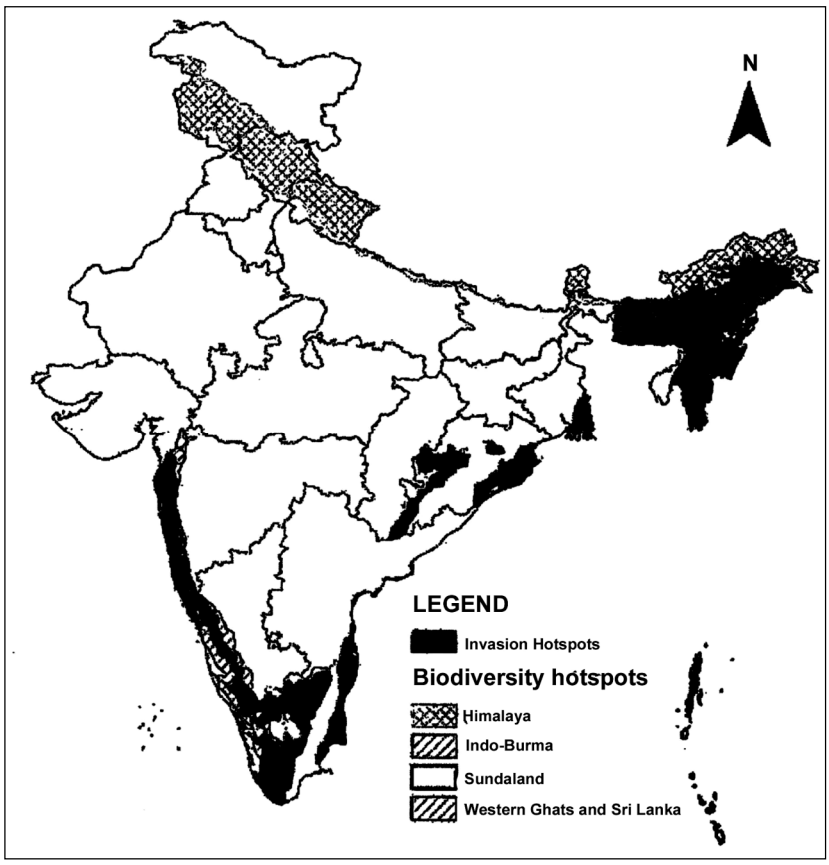

चित्र क्र. 3.4: भारतीय जैव विविधता के तप्त स्थल

भारतीय उपमहाद्वीप का 32 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र जैविक–विविधता की दृष्टि से अत्यंत सम्पन्न है। यदि हम यहाँ पाये जाने वाले प्राणिजात (fauna) का आंकलन करें तो विभिन्न जन्तुओं की लगभग 65,000 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती है, जिनमें सर्वाधिक 50,000 प्रजातियाँ अकेले कीटों की है। इसके अतिरिक्त लगभग 4,000 प्रजातियाँ मोलस्का की एवं 6,000 प्रजातियाँ अन्य अकशेरुकी प्राणियों की पायी जाती हैं। कशेरुकी जन्तुओं में मछलियों की 2,000, उभयचरों की 182 (विश्व में पंद्रहवाँ स्थान), सरीसृपों की 453 (विश्व में पाँचवां स्थान), पक्षियों की 1,200 (विश्व में आठवाँ स्थान) तथा स्तनियों की लगभग 350 (विश्व में आठवाँ स्थान) प्रजातियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त पादपों की लगभग 45,000 (विश्व में पन्द्रहवाँ स्थान) प्रजातियाँ यहाँ उपलब्ध हैं, जिनमें अकेले 15,000 पुष्पित पौधों की हैं। भारत के पाये जाने वाले लगभग 18 प्रतिशत पौधे स्थानिक हैं। फूल देने वाली अधिकांश प्रजातियाँ स्थानिक है, इनमें से एक–तिहाई तो विश्व में कहीं और पायी ही नहीं जाती है।

भारत वन्य जीव की दृष्टि से समृद्धशाली है। भारत के वन जैव–विविधता की दृष्टि से विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भारत में जंगली पौधों और प्राणियों की वृहद् जैव–विविधता के अलावा यहाँ फसली पौधों और पालतू पशुओं की भी अत्यंत विविधता है। यहाँ कृषि की परम्परागत फसलों में धान, अनेक दूसरे अनाज, सब्जियों और फलों की 30,000 से 50,000 प्रजातियाँ हैं। इन पादपों की

सबसे अधिक विविधता पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट, उत्तरी हिमालय और पूर्वोत्तर की पहाड़ियों के भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में है। (चित्र क्र. 3.4)

टिप्पणी

भारत में देशी पशुधन की भी भारी विविधता है। यहाँ मवेशियों की 27 नस्लें, भेड़ों की 40 नस्लें और बकरी की 22 नस्लें हैं। विश्व की सभी 8 भैंसों की नस्लें भारत में पायी जाती हैं।

3.11 हॉट स्पॉटस (Hot Spots)

पृथ्वी के ऐसे स्थान जहाँ समृद्ध जैव–विविधता मिलती है अर्थात् यहाँ पर जातियों की पर्याप्त तथा स्थानीय जातियों की अधिकता पायी जाती है, लेकिन साथ ही इन जीव–जातियों के अस्तित्व पर निरन्तर संकट बना रहता है, वो स्थान (क्षेत्र) संरक्षण की दृष्टि से तप्त स्थल अथवा हॉट स्पॉट्स (hot spots) कहलाते हैं। (चित्र 3.5)

प्रसिद्ध ब्रिटिश पारिस्थितिकविद् **नार्मन मायर्स** ने **1988** में तप्त स्थल की संकल्पना प्रस्तुत की। उन्होंने स्पष्ट किया कि जहाँ स्थानीय जातियों की आनुपातिक दृष्टि से अधिकता पायी जाती है, वहाँ उच्च दर से आवास में विनाश हो रहा है। उन्होंने विश्व में 12 तप्त स्थलों का निर्धारण किया, जिनमें विश्व की लगभग 12 प्रतिशत जैव प्रजातियाँ निवास करती हैं, जबकि ये तप्त स्थल पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल का केवल 0.2 प्रतिशत भू–भाग घेरते हैं। वर्तमान में तप्त स्थलों की संख्या बढ़कर 25 हो गई है जो पृथ्वी तल के 1.4 प्रतिशत भाग को घेरे हुए हैं। यहाँ विश्व की कुल पादप जातियों का 44 प्रतिशत तथा कुल कशेरुकी जातियों का 35 प्रतिशत भाग पाया जाता है।

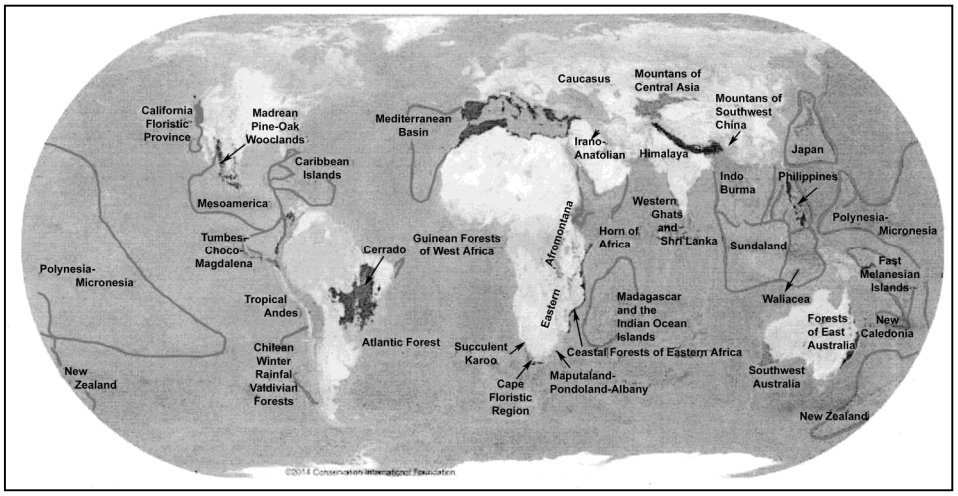

चित्र क्र. 3.5: जैव विविधता के वैश्विक हॉट स्पॉटस

टिप्पणी

सारणी क्र 3.1 जैव–विविधता के वैश्विक हॉट स्पॉटस (Global Hot Spots of Biodiversity)

क्र सं	हॉट स्पॉट्स अथवा तप्त स्थल	वैश्विक पादपों का %	कशेरुकियों का %
1	मेडागास्कर (Madagascar)	3.2	2.8
2	फिलीपीन्स (Philippines)	1.9	1.0
3	न्यूजीलैण्ड (New Zealand)	0.6	0.5
4	ट्रोपिकल एन्डीज (Tropical Andes)	6.7	5.7
5	मीजो अमेरिकन वन (Meso American Forest)	1.7	4.2
6	दक्षिणी मध्य चीन (South Central China)	1.2	0.7
7	कैरीबियन (Caribbean)	2.3	2.9
8	वेलैसिया (Wallacea)	0.5	1.9
9	ब्राजील के अटलांटिक वन (Brazil's Atlantic Forest)	2.7	2.1
10	सुन्द्रालेण्ड (Sundraland)	5.0	2.6
11	इण्डो–बर्मा पूर्वी हिमालय (Indo-Burma Eastern Himalayas)	2.3	1.9
12	कॉकेशस (Caucasus)	0.5	0.2
13	पनामा पश्चिमी यूक्वेडोर के ड्रेन/कोक (Choc/Darien of Panama Western Ecuador)	0.8	1.5
14	वेस्टर्न घाट–श्रीलंका (Western Ghat Sri Lanka)	0.7	1.3
15	न्यू केलीडोनिया (New Caledonia)	0.9	0.3
16	पोलीनेसिया/मीक्रोनेसिया (Polynesia/ Micronesia)	1.1	0.8
17	ब्राजील सिरैडो (Brazil Cerrado)	1.5	0.4
18	मध्य चिली (Central Chile)	0.5	0.2
19	दक्षिणी–पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया (South-Western Australia)	1.4	0.4
20	मेडीटेरेनियन बेसिन (Mediterranean Basin)	4.3	0.9
21	कैलिफोनिया फलोरिस्टिक प्रोविन्स (California Floristic Province)	0.7	0.3
22	केन्या/तन्जानिया के ईस्टर्न आर्क एवं तटीय वन (Eastern Arc and Coastal Forest of Tanzania/Kenya)	0.5	0.4
23	केप फलोरिस्टिक प्रोविन्स (Cap Floristic Province)	1.9	0.2
24	पश्चिमी अफ्रीकी वन (Western African Forest)	0.8	1.0
25	सकुलेन्ट कारू (Succulent Karoo)	0.6	0.2

विश्व के इन 25 तप्त स्थलों में से दो भारत में पाये जाते हैं और यह पड़ौसी देशों तक फैले हुए हैं। भारत में प्रथम तप्त स्थल पश्चिमी घाट है जो श्रीलंका तक फैला हुआ है तथा दूसरा तप्त स्थल पूर्वी हिमालय में है जो म्यांमार तक फैला हुआ है। भारत में, विश्व के कुल भू–भाग का केवल 2–4 प्रतिशत भाग है, लेकिन जैव–विविधता में इसका अंशदान 8 प्रतिशत जातियों का है।

3.12 जैव–विविधता का संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

जैव–विविधता का संरक्षण से तात्पर्य है–जैव–विविधता का प्रबन्धन, परिरक्षण एवं पुनः पूर्व स्थिति को प्राप्त करना। जैव–विविधता के संरक्षण को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

(अ) स्व–स्थाने संरक्षण (*In-situ* Conservation) – जैव–विविधता को उसके प्राकृतिक पर्यावरण में संरक्षित करना, स्व–स्थाने संरक्षण कहा जाता है। अतः इस प्रकार के संरक्षण के लिए प्राकृतिक वनों, चरागाहों, मैदानों, नदियों, झीलों आदि का भी संरक्षण आवश्यक होता है। इसके लिए इन प्राकृतिक आवास स्थानों को निषिद्ध क्षेत्र **(Prohibited)** घोषित कर दिया जाता है। निषेध की सीमा के अनुसार इन क्षेत्रों को तीन प्रकार में बाँटा गया है –

(i) राष्ट्रीय उद्यान (National Parks)

(ii) अभयारण्य (Sanctuaries)

(iii) जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves)

(i) राष्ट्रीय उद्यान (National Parks) – राष्ट्रीय उद्यान वन्य जीवन एवं पारिस्थितिक तंत्र दोनों के संरक्षण के लिए सुनिश्चित होते हैं। अतः इनमें शिकार करना एवं पशु चराना पूर्णरूपेण वर्जित होता है। इनकी स्थापना एवं नियंत्रण केन्द्र सरकार के अन्तर्गत होता है, परन्तु इनकी व्यवस्था सम्बन्धित राज्य सरकार के अधीन होती है। भारत में कुल 77 राष्ट्रीय उद्यान हैं जो लगभग 35,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हुए हैं अर्थात् ये देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 1 प्रतिशत भाग घेरे हुए हैं।

(ii) अभयारण्य (Sanctuaries) – अभयारण्यों का उद्देश्य केवल वन्य जीवन का संरक्षण होता है, अतः इनमें व्यक्तिगत स्वामित्व, लकड़ी काटने, पशुओं को चराने आदि की अनुमति इस शर्त के साथ दी जाती है कि इन क्रिया–कलापों से वन्य प्राणी प्रभावित न हो। इनकी स्थापना एवं नियंत्रण सम्बन्धित राज्य सरकार के अधीन होती है। भारत में लगभग 421 अभयारण्य हैं, जिनका क्षेत्रफल लगभग एक लाख वर्ग कि.मी. है अर्थात् ये देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 3 प्रतिशत भाग घेरे हुए हैं।

टिप्पणी

(iii) जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves) – सन् **1971** में **यूनेस्को** की मनुष्य एवं जीवमण्डल परियोजना के अन्तर्गत मानव कल्याण हेतु जीवमण्डल के संरक्षण की दृष्टि से जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्रों (Biosphere Reserves) की स्थापना का शुभारम्भ किया गया। देश में पहला जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र **1986** में **नीलगिरी** में स्थापित किया गया था। आरक्षित क्षेत्र को प्रबन्धन के आशय से निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जाता है–

(a) केन्द्रीय अथवा कोर क्षेत्र (Core Zone) – यह जीव मण्डल का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र पूर्णतया वर्जित होता है। इस क्षेत्र के पारिस्थितिक तन्त्र में किसी भी प्रकार की मानवीय गतिविधियाँ नहीं होने दी जाती हैं।

(b) प्रतिरोधक अथवा मध्यवती क्षेत्र (Buffer Zone) – मध्यवर्ती प्रतिरोधक क्षेत्र में सीमित मानव क्रिया–कलापों की अनुमति होती है। पर्यावरणीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण, शोध कार्य, पर्यटन या प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्य इस क्षेत्र में किये जा सकते हैं।

(c) परिचालन अथवा आवान्तर क्षेत्र (Transition Zone) – परिधीय परिचालन क्षेत्र में अनेक प्रकार की मानव गतिविधियों की अनुमति होती है। इस क्षेत्र में खेतीबाड़ी, वानिकी एवं मनोरंजन और अन्य आर्थिक उपयोग जैसी गतिविधियाँ चलती रहती हैं।

(ब) बहिः स्थाने संरक्षण (*Ex-situ* Conservation) – जैव–विविधता को उसके प्राकृतिक आवास से बाहर संरक्षित करना, बहिः स्थाने संरक्षण कहलाता है। इस प्रकार का संरक्षण ऐसी प्रजातियों के लिए किया जाता है, जो अत्यधिक संकटापन्न स्थिति में हों। इस प्रकार का संरक्षण उद्यान (पादपों के लिए) या चिड़ियाघर (प्राणियों के लिए) आदि में किया जाता है। ऐसी प्रजातियों के लिए पुनर्वास केन्द्रों (Rehabilitation Center) की स्थापना की जाती है। जहाँ उनको रखकर सभी प्रकार से संरक्षण किया जाता है। देश के अनेक स्थानों पर इस प्रकार के पुनर्वास केन्द्रों की स्थापना की गई है–

3.12.1 लुप्तप्रायः तथा खतरे में पड़ी प्रजातियाँ (Endangered and Threatened Species)

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ **(International Union of Conservation of Nature and Natural Resources = IUCN)** की **लाल आँकड़ा पुस्तक (Red Data Book)** में पादपों एवं जन्तुओं को वर्तमान एवं भूतकालीन वितरण, जीवसंख्या घनत्व में कमी, प्राकृतिक आवासों की प्रचुरता एवं क्षमता तथा जाति की अपने जैविकी (Biology) तथा सम्भावित महत्त्व (Potential value) के आधार पर निम्नांकित 6 श्रेणियों में बाँटा है–

1. **विलुप्त (Extinct)** – ऐसी पादप जातियाँ जो किसी स्थान पर प्रचुर मात्रा में नहीं पायी जाती थीं, किन्तु अब वह प्रजातियाँ अपने प्राकृतिक

वास–स्थान में अप्राप्य हो गयी हैं। ऐसे वास–स्थान का निरीक्षण निरन्तर करते रहने पर भी यदि पहले वाली पादप प्रजातियाँ अपने वास–स्थान पर नहीं मिलती हैं तो उन्हें लुप्त पादप जातियाँ समझा जाता है। इस प्रकार की पादप प्रजातियों का संरक्षण करना सम्भव नहीं होता है।

2. **लुप्तप्रायः अथवा संकटापन्न (Endangered)** – कुछ पादप जातियाँ लुप्त होने वाली अवस्था में पहुँच जाती हैं। यदि इस प्रकार की पादप प्रजातियों की पारिस्थितिक दशाएँ वही बनी रहती हैं तो उनको लुप्त होने से बचाना असम्भव हो जाता है। अतः इस प्रकार की पादप प्रजातियों की संख्या बहुत कम हो जाती है जिसमें प्रजनन की दक्षता भी धीरे–धीरे घटकर शून्य हो जाती है और ऐसी दशा में ये प्रजातियाँ लुप्तप्रायः होने लगती हैं।
3. **अतिसंवेदनशील अथवा क्षुमेद्य (Vulnerable)** – इसके अन्तर्गत ऐसी पादप प्रजातियाँ सम्मिलित की जाती हैं, जिन्हें दुष्प्रभावित करने वाले कारक यदि जारी रहें तो वे लुप्तप्रायः श्रेणी में प्रवेश कर सकती हैं। इस प्रकार के पादप समूह को निरन्तर यदि एक ही पारिस्थितिक परिस्थितियों में रहना पड़ता है तो वे लुप्तप्रायः होने लगती हैं।
4. **दुर्लभ अथवा विरल (Rare)** – इसके अन्तर्गत उन पादप जातियों को सम्मिलित किया जाता है जो संसार के किन्हीं स्थानों पर तथा बहुत कम संख्या में पायी जाती हैं। प्रारम्भ में ऐसी पादप प्रजातियाँ लुप्त होने की स्थिति में नहीं आती हैं किन्तु समयानुसार धीरे–धीरे लुप्तप्रायः स्थिति में आकर अन्त में नष्ट हो जाती हैं।
5. **खतरे में पड़ी अथवा संकटग्रस्त (Threatened)** – इसके अन्तर्गत इस प्रकार की पादप प्रजातियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका पृथ्वी पर अस्तित्व मनुष्य द्वारा इनके वास–स्थानों के व्यापक विनाश के कारण अनिश्चित हो गया हो अर्थात् जो लुप्तप्रायः अतिसंवेदनशील अथवा दुर्लभ श्रेणी के अंतर्गत रखे गये हों, इस श्रेणी में आते हैं।
6. **संकटमुक्त (Out of Danger)** – इसके अंतर्गत उपरोक्त पाँच प्रकार के समूहों में से किसी एक के समूह की भाँति पादप प्रजातियाँ होती हैं और इनके प्रभावी संरक्षण होने के फलस्वरूप संकटमुक्त हो जाती हैं अर्थात् अपने पूर्व वास–स्थान में स्थापित हो जाती है।

3.12.2 पादप प्रजातियों के लुप्तप्रायः होने के कारण (Causes of Endangered Plant Species)

1. वास–स्थान के (habitat) नष्ट होने के कारण
2. जैवीय कारकों (biotic factors) के कारण,
3. वातावरणीय कारकों (environmental factors) के कारण
4. पारिस्थितिक स्थानापन्न (ecological substitutes) के कारण,
5. पैथोलॉजिकल कारकों (pathological factors) के कारण,

3.12.3 भारत की लुप्तप्रायः एवं संकटग्रस्त जातियाँ (Endangered and Threatened Species of India)

टिप्पणी

आई.यू.सी.एन. (IUCN) की एक रिपोर्ट के अनुसार संसार की लगभग 10 प्रतिशत (20,000 से 25,000) तक पादप जातियाँ लुप्त हो सकती हैं। सन् 1980 में इस विषय पर बल देने के लिए बोटेनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया **(B.S.I.)** ने ''थ्रेटिण्ड प्लाण्ट्स ऑफ इण्डिया–ए स्टेट ऑफ आर्ट'' (Threatened Plants of India – A State of Art) नामक एक पुस्तक को प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त सन् 1984 में बोटनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ने द्वितीय पुस्तक 'द इण्डियन प्लाण्ट रेड डेटा बुक' (The Indian Plant Red Data Book) को प्रकाशित किया, जिसमें लुप्तप्राय 125 आवृतबीजी पौधों का वर्णन किया गया है, जिसमें से कुछ प्रमुख पादप जातियाँ निम्नलिखित हैं –

1. फाइकस बेन्गालेन्सिस *(Ficus benghalensis)*
2. साइलियम प्लैण्टागो ओवेटा *(Psyllium plantagoovata)*
3. टेरोस्पर्मम ऐसैरिफोलियम *(Pterospermum acerifolium)*
4. रोल्फिया सर्पेण्टाइना *(Rauwolfia serpentina)*
5. टेक्टोना ग्राण्डिस *(Tectona grandis)*
6. सेपिण्डस सेपोनेरिया *(Sapindus saponaria)*
7. केनाबिस सेटाइवा *(Cannabis sativa)*
8. सिनकोना लैडजेरियाना *(Cinchona ledgeriana)*
9. फ्लैक्सिनस फ्लोरीबण्डा *(Fraxinus floribunda)*
10. कॉल्चिकम ऑटमनेल *(Colchicum autumnale)*
11. यूफोर्बिया रोयलियाना *(Euphorbia royleana)*
12. आर्टिकाडियोसिया *(Urtica dioica)*
13. शोरिया रोबस्टा *(Shorea robusta)*
14. थाइमस सर्फिल्लम *(Thymus serpyllum)*
15. सेण्टेलम एलबम *(Santalum album)*

3.12.4 लाल आँकड़ा पुस्तक अथवा रेड डाटा बुक (Red Data Book)

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ या आई.यू.सी.एन. (IUCN) ने अपने अधीनस्थ ''सरवाइवल सर्विस कमीशन'' (Survival Service Commission) के द्वारा एक विशेष **'लाल आँकड़ा पुस्तक' (Red Data Book)** का प्रकाशन किया है। इसमें सभी प्रकार की संकटग्रस्त वन्य जीवों सम्बन्धी जानकारी दी गई हैं। इस पुस्तक में विभिन्न वन्य प्राणियों की लुप्त हो रही प्रजातियों को बचाने के लिए मार्गदर्शन भी दिया गया है।

टिप्पणी

इसकी अब तक पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, जिसकी प्रथम पुस्तक का प्रकाशन 1 जनवरी, 1972 को हुआ था। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है

सारणी क्र. 3.2: लाल आँकडा पुस्तक सारणी (Red Data Book)

1.	प्रथम लाल आँकड़ा पुस्तक	236 प्रजातियाँ (292 उप प्रजातियाँ)	स्तनधारी
2.	द्वितीय लाल आँकड़ा पुस्तक	287 प्रजातियाँ (341 उप–प्रजातियाँ)	पक्षी
3.	तृतीय लाल आँकड़ा पुस्तक	36 प्रजातियाँ एवं उप–प्रजातियाँ 119 प्रजातियाँ एवं उप–प्रजातियाँ	मरुस्थलीय उभयचर सरीसृप रेंगने वाले
4.	चतुर्थ लाल आँकड़ा पुस्तक	दुर्लभ एवं अप्राप्य मछलियाँ प्रजातिया एवं उप–प्रजातियाँ	
5.	पंचम लाल आँकड़ा पुस्तक	दुर्लभ एवं अप्राप्य पौधे, वनस्पतियाँ प्रजातियाँ एवं उप–प्रजातियाँ	

लाल आँकड़ा पुस्तक में प्रजातियों का निम्नलिखित चार मुख्य भागों में वर्णन है–

1. ऐसी लुप्त हो रही प्रजातियाँ जिनके बचाव का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। इनकी जानकारी पुस्तक के लाल रंग के पृष्ठों पर मुद्रित है।
2. ऐसी दुर्लभ प्रजातियाँ जो संख्या में बहुत कम हैं और कुछ निश्चित स्थानों पर ही उपलब्ध हैं तथा इन प्रजातियों की समाप्त होने की आशंका है, इनकी जानकारी सफेद रंग के पृष्ठों पर मुद्रित है।
3. ऐसी लुप्त हो रही प्रजातियाँ जिनकी संख्या लगातार तेजी से कम होती जा रही है। यह जानकारी पीले रंग के पृष्ठों पर मुद्रित है।
4. जिन प्रजातियों को लुप्त होने से बचा लिया गया है उनकी जानकारी हरे रंग के पृष्ठों पर मुद्रित है।
5. ऐसी प्रजातियाँ जिनके बारे में पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है तथा जिनके बारे में आशंका है कि उनकी संख्या कम हो रही है। यह जानकारी पुस्तक के अन्त में भूरे रंग के पृष्ठों पर मुद्रित है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

6. भारत मे निम्न में से कौन–सा तप्त स्थल है?

(अ) पूर्वी घाट (ब) पश्चिमी घाट

(स) पश्चिमी हिमालय (द) अरावली क्षेत्र

टिप्पणी

7. लाल आँकडा पुस्तक में सुचनाएँ निम्न में से किससे सम्बन्धित रहती है –

(अ) बहुलता में पाये जाने वाले पादपों के बारे में

(ब) बहुलता में पाये जाने वाले प्राणियों एवं पादपों के बारे में

(स) संकटग्रस्त पादपों के बारे में

(द) संकटग्रस्त पादपों एवं प्राणियों के बारे में

3.13 जैव–मण्डल संचयन, मध्यप्रदेश के अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान (Biosphere Reserves, Sanctuaries and National Parks of Madhya Pradesh)

जंगली जानवरों के द्वारा प्रकृति में सन्तुलन बना रहता है। इसलिए इनका संरक्षण बहुत आवश्यक है।

जंगली पशु–पक्षियों का प्रकृति में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए यह बहुत जरूरी है की मनुष्य को अपने शौक अथवा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें नष्ट न करके उसका संरक्षण करना चाहिए। भारतवर्ष में शेर, चीता और मोर राष्ट्रीय वन्य जन्तु हैं। सरकार ने वन संरक्षण को एक राष्ट्रीय नीति बनाकर वनों के काटने पर तथा अन्य प्राणियों के शिकार पर कानून बना दिया है। इसके अतिरिक्त सरकार ने जंगली जानवरों तथा पशु–पक्षियों को सुरक्षित रखने के लिए विशेष स्थानों पर सुरक्षित वनों का निर्माण भी किया है।

जनसंख्या में वृद्धि के कारण वनों को नष्ट किया जा रहा है तथा भूमि का उपयोग शहरीकरण करने के लिए किया जा रहा है। वन्य पादपों **(wild plants)** एवं वन्य जन्तुओं **(wild animals)** में परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं और इनमें से अनेक वन्य प्राणी धीरे–धीरे नष्ट होते जा रहे हैं। तराई एवं नदियों के किनारों की वनस्पतियों को छोड़कर अन्य स्थानों पर वास्तविक वुडलैण्ड **(woodland)** में ब्यूटिया ***(Butea)***, मेलिया ***(Melia)***, एकेशिया ***(Acacia)*** तथा जिजीफस ***(Zizyphus)*** के वृक्ष कम देखने को मिलते हैं अर्थात् इनकी संख्या में भी लगातार कमी हो रही है। विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों के नष्ट होने के साथ–साथ वन्य जीवन पर शिकारियों का भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। डॉ. मनी **(Dr. Mani, 1974)** के अनुसार गत दो शताब्दियों में पक्षियों की दो जातियों तथा स्तनधारियों की 15 अन्य जातियाँ नष्ट हो चुकी हैं।

आधुनिक युग में सभी देशों में यह जागरूकता आ गयी है कि किस प्रकार वन्य पादपों एवं प्राणियों को संरक्षित रखा जाये। अतः अनेक देशों में अफ्रीकन हाथी (African Elephant), चिम्पेन्जी (Chimpanzee), चीता तथा तोता की विभिन्न प्रकार की जातियों एवं फर (fur) उत्पन्न करने वाले जानवरों से किसी प्रकार की वस्तु के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

3.14 वन्य जीवन का संरक्षण (Conservation of Wildlife)

टिप्पणी

मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए वन्य प्राणियों का शिकार करता था। अतः वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए शिकार के ऊपर प्रतिबन्ध लगाना अत्यन्त आवश्यक हो गया था। इसके अतिरिक्त अपनी आवश्यकता के लिए मनुष्य भारी संख्या में वृक्षों को काटते हैं, जिससे प्राकृतिक सन्तुलन बिगाड़ने का भय रहता है।

इस लिए जंगलों से वृक्षों को काटने के बाद पुनः वृक्षारोपण करना आवश्यक रूप से होना चाहिए। प्राकृतिक नदियों, तालाबों तथा झीलों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं जिन्हें व्यापारिक लाभ एवं भोजन के लिए जाल डालकर पकड़ते हैं। नदियों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए मछलियों का उपस्थित होना अत्यंत आवश्यक है। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि तालाब से ज्यादा मछलियाँ न पकड़ी जाएँ अन्यथा तालाब के पारिस्थितिक तन्त्र (ecosystem) के नष्ट हो जाने पर विभिन्न प्रकार की कठिनाईयाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

वनों के पारिस्थितिक तन्त्र में विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों, जीव–जन्तु, जैसे–कीट, पक्षी, सरीसृप तथा स्तनधारी जन्तु पाये जाते हैं। मनुष्यों ने वन्य प्राणियों को अपने मनोरंजन का साधन बना लिया है, जिसके फलस्वरूप प्राणियों की अनेक जातियाँ विलुप्त (extinct) हो गई हैं।

यही नहीं, वन्य प्राणीः जैसे–शेर, चीता, गैंडा, कस्तूरी मृग, घड़ियाल, तेंदुआ, मोर तथा अजगर एवं बारहसिंगा को यदि ठीक प्रकार से संरक्षण (conservation) प्राप्त न हो सकेगा तो किसी न किसी दिन इन जन्तुओं की भी जातियाँ विलुप्त (extinct) हो सकती हैं। भारत सरकार द्वारा इस दिशा में वन्य जीवन संरक्षण **(wildlife conservation)** के लिए ठोस कदम उठाये गये हैं, जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों की दुर्लभ जातियों एवं वन्य प्राणियों को सुरक्षित करना है और इस बात के प्रयास किये जाते हैं कि उनमें प्रजनन कराकर उनके अस्तित्व (existence) को कायम रखा जा सके। सरकार ने वन्य जीवन कानून बनाये हैं जिसमें वन्य प्राणियों का शिकार करना कानूनी जुर्म है। इसके अतिरिक्त वन्य जीवन के प्राकृतिक संरक्षण के लिय संरक्षित क्षेत्रों का विशाल तंत्र (network) होना अत्यंत आवश्यक है जिनका प्रबन्धन मानव समाज के कल्याण एवं अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय उद्यान **(national parks),** अभयारण्य **(sanctuaries),** जीवमण्डल रिजर्व **(biosphere reserves),** प्राकृतिक रिजर्व **(natural reserves),** प्राकृतिक स्मारक **(natural monuments),** तथा सांस्कृतिक स्थलदृश्य **(cultural landscapes)** आदि का निर्माण किया जाता है।

IBWL की 15 वीं बैठक में **(1 अक्टूबर, 1982)** में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भारत के वन्य जीव संरक्षण हेतु एक 12 सूत्री कार्य योजना प्रस्तुत की। इसमें वैज्ञानिक पद्धति द्वारा संचालित संरक्षित क्षेत्रों के एक जाल की स्थापना करना भी था, जिसमें राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, जैव–मण्डल, रिजर्व तथा अन्य क्षेत्र भी शामिल थे।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.3: संरक्षित क्षेत्र एवं उनका तुलनात्मक अध्ययन
(Protected Areas and their Comparative Study)

क्रमांक (S.N.)	राष्ट्रीय उद्यान (National Park)	अभयारण्य (Sanctuary)	जैव–मण्डल रिजर्व (Biosphere Reserve)
1.	यह किसी जंगली प्राणी की विशेष प्रजाति के वास–स्थान हेतु बनाया जाता है; जैसे –बाघ, शेर, गैंडा आदि।	यह किसी प्रजाति विशेष पर आधारित होता है।	यह किसी एक, दो या अधिक प्रजातियों के लिये नहीं अपितु समस्त जीवों अर्थात् पारिस्थितिक तन्त्र के लिये आधारित होता है।
2.	भारत में इसके आकार का विस्तार 0.04 से 3162 वर्ग कि.मी. है।	इसके आकार का विस्तार 0.61 से 7818 वर्ग कि.मी. है।	इसके आकार का विस्तार 5670 वर्ग कि. मी. से ज्यादा है।
3.	विधान द्वारा इनका सीमांकन सुनिश्चित किया जाता है।	इनका सीमांकन सुनिश्चित नहीं होता है।	विधान द्वारा इनका सीमांकन सुनिश्चित होता है।
4.	बफर जोन के अतिरिक्त कोई जैवीय हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।	इनमें केवल सीमित जैवीय हस्तक्षेप किया जा सकता है।	बफर जोन के अतिरिक्त कोई जैविक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।
5.	पर्यटन अनुमान्य है।	पर्यटन अनुमान्य है।	पर्यटन प्रायः अनुमान्य नहीं है।
6.	जीन पूल एवं संरक्षण पर कोई ध्यान नहीं।	इस पर अभी कोई ध्यान नहीं।	इस पर ध्यान दिया जा रहा है।

3.14.1 राष्ट्रीय पार्क एवं अभयारण्य (National Parks and Sanctuaries)

वन्य जीवन की सुरक्षा एवं उनकी वृद्धि के लिए वन्य जीवन अधिनियम, 1972 **(Wildlife Act, 1972)** के अनुसार राज्य सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी क्षेत्र को नेशनल पार्क (national parks) अथवा अभयारण्य (sanctuaries) के लिए प्रयोग में ला सकते हैं। आज भारत में 104 राष्ट्रीय पार्क 40,501.13 वर्ग कि.मी. में फैले हुए तथा 500 से अधिक अभयारण्य 1,17,042.04 वर्ग कि.मी. में फैले हुए हैं। इस प्रकार से अभयारण्य एवं राष्ट्रीय पार्क का कुल क्षेत्रफल 1,56,961.04 (वर्ष 2000 तक) वर्ग कि.मी. है। भारत सरकार द्वारा एक एक्सपर्ट कमेटी (Expert Committee) का निर्माण किया गया है। जिसके अनुसार देश का 4% क्षेत्रफल राष्ट्रीय पार्क तथा अभयारण्य के लिए प्रयुक्त होना चाहिए। सभी राष्ट्रीय पार्क तथा सेन्चुरीज एक प्रकार के नहीं होते हैं। कुछ में इस प्रकार की विशेषताएँ उत्पन्न हो गयी हैं, जिससे विशिष्ट प्रकार के वन्य प्राणियों की जातियों को सुरक्षित रखा जा सकता है, जैसे–गिर नेशनल पार्क **(Gir National Park)**

टिप्पणी

को ऐशियाटिक शेर **(Asiatic Lion)** के लिए सेन्चुरी तथा काजीरंगा **(Kaziranga)** राष्ट्रीय पार्क को राइनोसिरोस **(Rhinoceros)** के लिए बनाया गया है।

कुछ राष्ट्रीय पार्क इसलिए प्रसिद्ध हैं कि उनमें बहुत अधिक मात्रा में विभिन्न प्रकार के वन्य प्राणी पाये जाते हैं जिनमें सबसे प्रमुख कान्हा राष्ट्रीय पार्क **(Kanha National Park)** तथा कार्बेट राष्ट्रीय पार्क **(Corbett National Park)** है। संसार में **भरतपुर** पक्षियों के लिए मशहूर है।

राष्ट्रीय पार्क तथा सेन्चुरी के द्वारा विभिन्न प्रकर के पारिस्थितिक तन्त्र नियमित रूप से चलते रहते हैं तथा मृदा अपरदन **(soil erosion)** नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त खनिज लवणों का चक्रीयकरण (cycling) होता रहता है।

भारत में राष्ट्रीय उद्यानों की प्रमुख भूमिका रही है और सन् 1981 से लगातार इनकी संख्या में वृद्धि हुई है। भारत में सन् 1981 में इन उद्यानों की संख्या केवल 19 थी जिनमें लगातार वृद्धि के फलस्वरूप सन् 1983 में इनकी संख्या 44 तथा सन् 1988 में इनकी संख्या 66 तथा जून 1992 तक इनकी संख्या 73 हो गयी थी। नवीनतम आँकड़ों के अनुसार इनकी संख्या 100 हो गयी है। इन उद्यानों में विशेषज्ञ प्रकार के वन्य प्राणी, जैसे – शेर (Lion), बाघ (Tiger), तथा राइनो (Rhino) के लिए आवासों का प्रबन्ध किया जाता है और इनका क्षेत्रफल न्यायायिक नियमों के अनुसार निर्धारित किया जाता है। इन उद्यानों का अवलोकन पर्यटक कर सकते हैं, किन्तु शिकार करना दण्डनीय अपराध है। भारत के राष्ट्रीय पार्क की संख्या तथा क्षेत्रफल विभिन्न राज्यों (states) में निम्न प्रकार है (सारणी क्र. 3.4)

सारणी क्र. 3.4: भारत के राष्ट्रीय उद्यान (National Parks of India)

प्रान्त (State)	नेशनल पार्क की संख्या (No. of National Parks)	क्षेत्रफल वर्ग किमी (Area sq.km.)
आन्ध्र प्रदेश	3	373.24
अरूणाचल	2	2290.82
असम	5	1977.79
बिहार	1	335.65
छत्तीसगढ़	3	2929.5
गोवा	1	107
गुजरात	4	480.11
हरियाणा	2	48.25
हिमाचल प्रदेश	5	1430
जम्मू–कश्मीर	4	3930.25
झारखण्ड	1	231.67

टिप्पणी

कर्नाटक	5	2472.18
केरल	6	558.16
मध्यप्रदेश	9	3656.36
महाराष्ट्र	5	1273.6
मणिपुर	2	40
मेघालय	2	267.48
मिजोरम	2	150
नागालैण्ड	1	202.02
ओडिशा	2	990.7
पंजाब	–	–
राजस्थान	5	4122.33
सिक्किम	1	1784
तमिलनाडु	5	307.84
त्रिपुरा	2	–
उत्तर प्रदेश	1	490
उत्तराखण्ड	6	4725
पश्चिम बंगाल	6	1693.25
अण्डमान एवं निकोबार द्वीप	9	1156.91
लद्दाख	1	–
तेलंगाना	3	–
योग	104	40,501.13 km^2

अब हर जगह नेशनल पार्क (National Parks) एवं अभयारण्यों (Sanctuaries) की संख्या बढ़ती जा रही है और वन्य जीवन को और अधिक सुरक्षित रखकर उनकी उपयोगिता का अध्ययन किया जा रहा है।

3.14.2 मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय उद्यानों का विकास (Development of National Parks in M.P.)

1. मध्यप्रदेश के विभिन्न स्थानों पर विशिष्ट प्रकार के वन्य प्राणी जैसे–हाथी, बारहसिंघा आदि पाये जाते थे, किन्तु बदलते हुए वातावरण के साथ–साथ इन वन्य प्राणियों की संख्या में भी कमी आने लगी। अतः वैज्ञानिकों ने यह सुझाव दिये कि प्राकृतिक तन्त्र (Natural System) को सुरक्षित रखने के लिए राष्ट्रीय उद्यानों का निर्माण किया जाये जिसमें वन्य जीवन का संरक्षण हो सके। सर्वप्रथम सन् 1956 में कान्हा राष्ट्रीय उद्यान **(Kanha National Park)** की स्थापना हुई, जहाँ पर बारहसिंघा को तथा वन्य प्राणियों को

टिप्पणी

सुरक्षित रखा गया। धीरे–धीरे सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ जिसके फलस्वरूप म.प्र. एवं छत्तीसगढ़ राज्य में सन् 1979 से 1990 तक अनेक राष्ट्रीय उद्यानों की संख्या में वृद्धि हुई जिसे निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है –

भारतीय वन्य जीवन बोर्ड (IBWL) के अनुसार (M.P.) में राष्ट्रीय उद्यानों का विकास 4.5% तक किया जा सकता है।

2. मण्डला **(Mandla)** का एक राष्ट्रीय उद्यान पादप जीवाश्मों **(fossil plants)** के लिए विख्यात हैं तथा दूसरा मण्डला जिले में स्थित कान्हा (Kanha) एक बायोस्फीयर रिजर्व **(biosphere reserve)** के रूप में प्रसिद्ध है।
3. म.प्र. राज्य में कई स्थानों पर वन्य प्राणियों के संरक्षण के साथ–साथ संरक्षित क्षेत्रों में जैवीय तथा अजैवीय (biotic and abiotic) घटकों के संरक्षण हेतु प्रयास किये गये हैं जिनके लिए राष्ट्रीय उद्यानों का ही चयन किया गया है।
4. प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बांधवगढ़ का राष्ट्रीय उद्यान सुविख्यात है जिसमें शेर (lion) तथा अन्य वन्य प्राणी (wild animals) पाये जाते हैं। यह स्थान विश्व के प्रसिद्ध सफेद शेर **(White Lion)** की जन्म स्थली कहलाता है।
5. **सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान,** पचमढ़ी अत्यंत आकर्षक है जो सदाबहार वनों (evergreen forests) के बीच स्थित है। इन वनों में साँभर, तेंदुए आदि वन्य प्राणी पाये जाते हैं।
6. भोपाल का राष्ट्रीय उद्यान भी प्रकृति की देन है जिसका विकास किया जा रहा है। इस उद्यान का प्रमुख उद्देश्य वन्य प्राणियों का संरक्षण तथा विभिन्न प्रकार के शिक्षण कार्य तथा मानव के अन्दर प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना है।
7. जिला सीधी का संजय राष्ट्रीय उद्यान म.प्र. में सबसे बड़ा है जो **साल वन** (Sal forest) के नाम से प्रसिद्ध है।
8. पेंच राष्ट्रीय उद्यान सिवनी/छिंदवाड़ा की स्थापना 1983 में हुई। यह सागौन वन के नाम से मशहूर है जो बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है।
9. राष्ट्रीय जीवाश्म उद्यान मण्डला जिले में स्थित है। यहाँ पर पाये गये पादप जातियों के जीवाश्म आज भी असम तथा पश्चिमी घाट के वनों में पाये जाते हैं। अतः अनुमान लगाया जाता है कि म.प्र. में ट्राएसिक काल की जलवायु बिल्कुल भिन्न थी।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.5: मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय उद्यान
(National Parks of Madhya Pradesh)

क्रमांक S.N.	राष्ट्रीय पार्क का नाम (Name of National Parks) (Total 09)	जिला (District)	क्षेत्र (वर्ग कि.मी.में)	पाये जाने वाले वन्य प्राणी (Wild Animals)
1.	बांधवगढ. 1968 (Bandhavgarh)	शहडोल, उमरीया	437	बाघ, तेंदुआ, चीतल, सांभर, गौर
2.	फॉसिल (Fossil) रा.उ. 1983	मण्डला	0.27	वनस्पति जीवाश्म (Fossil)
3.	कान्हा (Kanha) रा.उ. परियोजना शेर आरक्षित वन 1955	मण्डला	940	बाघ, तेंदुआ, बारहसिंघा, गौर, सांभर, चीतल
4.	माधव (Madhav) रा.उ. 1959	शिवपुरी	354.22	तेंदुआ, सांभर, चीतल
5.	पन्ना (Panna) रा.उ. 1981	पन्ना, छत्तरपुर	543	बाघ, तेंदुआ, सांभर, चीतल, चिंकारा
6.	पेंच (Pench) रा.उ. 1975	सिवनी छिंदवाड़ा	293	बाघ, तेंदुआ, सांभर, चीतल, गौर
7.	सतपुड़ा (Satpura) रा.उ. 1981	होशंगाबाद, पंचमढी	524	बाघ, तेंदुआ, गौर, चीतल, सांभर,
8.	वन विहार (Van Vihar) रा.उ. 1979	भोपाल	4.45	मध्य प्रदेश के वन्य प्राणी
9.	संजय (Sanjay) राष्ट्रीय उद्यान 1981	सीधी	466.88	बाघ, तेंदुआ, चीतल

सारणी क्र. 3.6: मध्यप्रदेश के अभयारण्य
(Sanctuaries of Madhya Pradesh)

क्रमांक S.No.	अभयारण्य का नाम (Name of Sanctuaries) Total 25	जिला (District)	क्षेत्र (वर्ग कि.मी.में)	पाये जाने वाले वन्य प्राणी (Wild Animals)
1.	बोरी (Bori)	होशंगाबाद	518	चीतल, बाघ, तेंदुआ, गौर, सांभर
2.	बगदरा (Bagdara)	सीधी	478.9	तेंदुआ, कृष्णमृग, चिंकारा
3.	फेन (Phen)	मण्डला	110.74	बाघ, तेंदुआ, चीतल, सांभर
4.	गाँधी सागर (Gandhi Sagar)	मन्दसौर	668.62	तेंदुआ, नीलगाय
5.	घाटीगांव (Ghati Gaon)	ग्वालियर	512	सोन चिड़िया

टिप्पणी

6.	करेरा (Karera)	शिवपुरी	202.21	सोन चिड़िया
7.	केन घड़ियाल (Ken Ghariyal)	छतरपुर / पन्ना	45	घड़ियाल, मगर
8.	खेओनी (Kheoni)	देवास / सीहोर	122.70	तेंदुआ, चीतल, सांभर
9.	नरसिंह गढ़ (Narsingh Garh)	राजगढ़	57.19	सांभर, चीतल, तेंदुआ
10.	राष्ट्रीय चम्बल घड़ियाल (National Chambal Gharial)	मुरैना	390.2	घड़ियाल, मगर
11.	नोरादेही (Nauradehi Wildlife)	सागर	103.53	सांभर, नीलगाय, कृष्णमृग, चीतल
12.	पंचमढ़ी (Pachmarhi)	होशंगाबाद	416.85	बाघ, तेंदुआ, सांभर, चीतल
13.	पनपथा (Panpatha)	शहडोल	245.84	बाघ, तेंदुआ, सांभर, चीतल
14.	पालपुर (कुनो) Kuno (Palpur)	मुरैना	345	बाघ, तेंदुआ, सांभर, चीतल
15.	रातापानी (Ratapani)	रायसेन	588.79	बाघ, तेंदुआ, सांभर, चीतल
16.	संजय (दुबरी) Bubri (Sanjay)	सीधी	364.59	सांभर, तेंदुआ, चीतल, बाघ
17.	सिंघोरी (Singhori)	रायसेन	287.91	बाघ, तेंदुआ, चीतल, सांभर
18.	सोन घड़ियाल (Son Ghariyal)	सीधी / शहडोल	209	घड़ियाल, मगर
19.	सरदारपुर (Sardarpur)	धार	348.12	खरमोर
20.	सैलाना (Sailana)	रतलाम	12.96	खरमाहार
21.	राला मण्डल (Rala Mandal)	इन्दौर (Indore)	–	–
22.	ओरछा सुंदरी (Orcha Sanduary)	टिकमगढ (Tikamgarh)	–	–
23	गानगली (Gangali)	दमोह (Damoh)	–	–
24	विरांगना दुर्गावती (Veerangna Durgawati)	दमोह (Damoh)	–	–

सरकारी सूत्रों के अनुसार मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों (National parks) तथा अभयारण्यों (Sanctuaries) में शाकाहारी (herbivores) तथा माँसाहारी (carnivores) वन्य प्राणियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है।

टिप्पणी

3.14.3 मध्यप्रदेश की टाइगर परियोजना (Tiger Project of M.P.)

भारत में सन् 1909–10 में रॉयल बंगाल टाइगर्स (Royal Bengal Tigers) की संख्या लगभग 40,000 थी, जिसका धीरे–धीरे ह्रास होता गया और 1982 के अन्त तक इन टाइगर्स (Tigers) की संख्या कुल 2500 तक पहुँच गयी। इस परियोजना का शुभारम्भ सन् 1973 में भारतीय बोर्ड ऑफ वाइल्ड लाइफ (IBWL) द्वारा हुआ जिसमें केवल 6 **टाइगर रिजर्व्स** (Tiger reserves) थे। सारणी क्र. 3.7 मध्यप्रदेश में यह टाइगर परियोजना **(Tiger Project)** सन् **1933** में कान्हा (Kanha) के अभयारण्य (Sanctuary) से प्रारम्भ की गयी और इसको सन् 1955 में एक राष्ट्रीय उद्यान का स्वरूप दिया गया। सन् 1974 में कान्हा की इस टाइगर परियोजना को सम्मिलित किया गया और इस उद्यान के 940 वर्ग कि.मी. क्षेत्र को कोर क्षेत्र तथा 1005 वर्ग कि.मी. को बफर क्षेत्र की मान्यता दी गयी। सन् 1982 में इस उद्यान के 1258 वर्ग कि.मी. क्षेत्र के बस्तर (Bastar) के इन्द्रावती राष्ट्रीय उद्यान को भी टाइगर संरक्षण (Tiger reserve) घोषित कर दिया गया। इस प्रकार मध्यप्रदेश के वनों तथा वन्य जीवन आरक्षित क्षेत्रों में लगातार टाइगर्स की संख्या बढ़ती जा रही है। कान्हा की टाइगर परियोजना के फलस्वरूप वहाँ के लगभग 22 गाँवों को हटाकर दूसरे स्थानों पर बसाया गया है। कोर क्षेत्रों **(Core area)** में पशुओं का चरना बन्द कर दिया गया है तथा बफर क्षेत्रों (Buffer zones) में नियन्त्रित पशुओं को चराया जाता है तथा वृक्षों के काटने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

सारणी क्र. 3.7: मध्यप्रदेश के टाइगर परियोजना (Tiger Reserve in M.P.)

नाम	जिला
कान्हा	मण्डला
पेंच	सिवनी, छिंदवाडा
बाँधवगढ़	उमरिया, शहडोल
पन्ना	पन्ना
सतपुड़ा	होशंगाबाद
संजय–डुबरी	सीधी

3.14.4 वन्य जीवन आरक्षित वन तथा सामान्य मानव (Wildlife Reserve Forests and Common Man)

इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता है कि वन्य जीवन आरक्षित वनों के समीप रहने वाले मनुष्यों को भी लाभ मिलना चाहिए जो निम्न प्रकार है–

(अ) वन्य जीवन शाखा द्वारा ऐसे ग्रामीणों को जिन्हें राष्ट्रीय उद्यान निर्माण के समय बाहर निकाला गया था, उन्हें पुनः बसने के लिए सफल प्रयास करने चाहिए।

टिप्पणी

(ब) राष्ट्रीय उद्यानों के विभिन्न मौसम के जल स्रोत अब बारह महीनों तक जल स्रोत बन गये हैं, जिनसे ग्रामीणों को लाभ होता है।

(क) राष्ट्रीय उद्यानों में नियंत्रित चराई हेतु निर्देश दिये जाते हैं जिसके फलस्वरूप ग्रामीणों को अधिक घास प्राप्त होती रहती है।

(ड) राष्ट्रीय उद्यान परियोजना के माध्यम से ग्राम्य विकास के अनेक कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं।

3.14.5 मध्यप्रदेश राज्य के प्रमुख राष्ट्रीय पार्क (Important National Parks of Madhya Pradesh)

मध्यप्रदेश (M.P.) में पाये जाने वाले प्रमुख राष्ट्रीय पार्कों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है –

(a) कान्हा राष्ट्रीय पार्क (Kanha National Park) – यह मध्यप्रदेश (M.P.) के मण्डला (Mandla) जिले में स्थित है। इस पार्क के लगभग 1945 वर्ग कि.मी. में साल *(Shorea robusta)* के वृक्षों का जंगल लगाया गया है, जिसके बीच–बीच में बाँस *(Bambusa)* के पेड़ों के समूह दिखाई देते है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वन्य वृक्ष तथा मिडोज (meadows) भी बनाये गये हैं। इस पार्क में विशेष रूप से चितकबरे हिरन **(spotted deer)** भारी संख्या में विचरते हुए दिखाई देते हैं। मण्डला जिले में जून से सितम्बर तक 162 से.मी. तक वर्षा होती है। कान्हा पार्क में साल तथा बाँस के अति सुन्दर जंगल पाये जाते है। इसी के साथ–साथ बड़े–बड़े घास स्थल (grassland) हैं। इस पार्क में वन्य प्राणियों का भी बाहुल्य है। सन् 1974 में इस पार्क में पाये जाने वाले बाघों (Tigers) की संख्या धीरे–धीरे कम होती चली गई जिससे सरकार को सन् 1952 में इस स्थान को वन्य जीवन अभयारण्य घोषित करना पड़ा है और इस पार्क में विभिन्न प्रकार के पादपों एवं जन्तुओं की जातियाँ पाई जाती हैं जिनका संरक्षण किया जाता है। इस पार्क का आकर्षण यहाँ पर पाये जाने वाले लगभग 200 प्रकार के पक्षियों की प्रजाति हैं। इस पार्क में अनेक जन्तु, जैसे–गौर (Gaur), बारहसिंघा (Barahsingha), चीतल (Chital), ब्लेक बक (Black buck), पेन्थर (Panther), बाघ (Tiger), चौसिंघा (Chowsingha) माउस डीअर (Mouse Deer), बारकिंग डीअर (Barking Deer), भालू, जंगली कुत्ते, नील गाय आदि पाये जाते हैं, जिनके संरक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के उपाय किये जाते हैं। यही नहीं इस पार्क में स्तनधारी जन्तुओं की लगभग 20–22 जातियाँ पाई जाती हैं। सांभर (Sambhar), कृष्ण मृग (Black Buck), तथा तीन धारियों वाले पाम गिलहरी (Palm Squirrel), कान्हा पार्क के पूर्व (east) दिशा में स्थित मैदान में चीता, भारतीय खरगोश (Indian Rabbit), पेन्गोलिन (Indian Pangolin) भेड़िये तथा बार्किंग हिरन (Barking Deer), चिनकारा (Chinkara) संरक्षित किये गये हैं।

टिप्पणी

यहाँ पर विशिष्ट पक्षियों की जातियाँ पाई जाती है, जैसे – पौण्डहैरन **(Pondheron),** पीफाउल **(Peafoul)**, क्रेस्टेड सर्पेण्ट **(Crested serpent)**, ब्लेक आइबिस **(Black ibis)**, केटिल इगरेट **(Cattle egret)**, रेकिटटेल्ड ड्रोन्गो **(Racket-tailed drongo)**, वुडपेकर **(Woodpeckers)**, हौक ईगल **(Hawk eagle)**, पेराकीट **(Parakeet),** बेबलर **(Babbler)**, कबूतर **(Pigeon)**, फाख्ता **(Dove)** आदि।

(b) शिवपुरी राष्ट्रीय पार्क (Shivpuri National Park) – ग्वालियर के समीप मध्यप्रदेश में शिवपुरी का राष्ट्रीय पार्क बहुत प्रसिद्ध है। इस पार्क का क्षेत्रफल 160 वर्ग कि.मी. है और यहाँ पर विभिन्न प्रकार के वन्य जन्तुओं को संरक्षण दिया गया है, जैसे–गजेल (Gazelle), सांभर (Sambhar), चीतल, शेर, बाघ आदि। वन्य जीवन के शरण स्थल (Sanctuary) में विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तु प्राकृतिक वास–स्थलों में विचरण करते हुए दिखाई देते हैं और यह स्थान भी रमणीक है।

(c) बान्धवगढ़ राष्ट्रीय पार्क (Bandhavgarh National Park) – मध्यप्रदेश के कान्हा राष्ट्रीय पार्क के समीप शहडोल **(Shahdol)** नामक स्थान पर बान्धवगढ़ राष्ट्रीय पार्क (Bandhavgarh National Park) की स्थापना की गई है। इस पार्क का क्षेत्रफल लगभग 104 वर्ग कि.मी. है। इस पार्क में अनेक पहाड़ियाँ, किले आदि स्थित हैं। इस पार्क में अनेक पुरानी गुफाएँ भी हैं, जिन पर प्रथम शताब्दी पुराने अभिलेख अंकित हैं। इस पार्क का नाम बान्धवगढ़ किले के नाम पर दिया गया है। इस पार्क में विभिन्न प्रकार के वन्य प्राणी (wild animals) जैसे– सांभर (Sambhar), गौर **(Gaur)**, जंगली बोर **(Wild Boar)**, गीदड़ **(Jackal)**, चौसिंघा **(Chawsingha)**, नील गाय, हायना, रेटिल **(Ratel)** आदि विशिष्ट रूप से संरक्षित किये गये हैं। इस पार्क में विभिन्न प्रकार के फलदार, सुन्दर फूल वाले वृक्षों को चयन करके स्थापित किया गया है जिन पर विभिन्न प्रकार के पक्षी जैसे हरा कबूतर **(Green Pigeon)**, जार्डोन्स लीफ बर्ड **(Jerdon's Leafbird)**, ईगल **(Eagle)** तथा मिनीवेट **(Minivet)**, गिद्ध **(Vultures)**, ब्लू रोक थ्रस **(Bluerock thrush)** तथा क्रेगमार्टिन **(Crag Martin)** जैसे पक्षी पाये जाते हैं। इस पार्क की विशेषता यह है कि यहाँ पर चीतों की लगभग 5 किस्में पाई जाती हैं, जो शरणास्थली (Sanctuaries) में सुरक्षित रहती हैं।

3.15 जैव–मण्डल रिजर्व (Biosphere Reserve)

(i) पारिस्थितिक एवं पर्यावरण शोध कार्यों के लिये उपयुक्त सुविधाएँ एवं क्षेत्र प्रदान किये गये हैं।

(ii) इसका आरम्भ 1971 में **UNESCO** द्वारा मानव एवं जैव–मण्डल कार्यक्रम **(Man and the Biosphere)** के अन्तर्गत किया गया।

(iii) मनुष्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं एवं जैव स्त्रोतों को भविष्य के लिए संरक्षण, इसी के साथ जन्तुओं एवं पादपों की जाति में पायी जाने वाली आनुवंशिक भिन्नताओं को भी सुरक्षित करना।

(iv) विभिन्न पारिस्थितिक तन्त्रों के नमूनों को संरक्षित करना। यह कार्यक्रम निम्न बिन्दुओं के आधार पर प्रतिपादित किया गया है।

(v) अनुभवों को प्रचारित एवं प्रसारित करना जिससे अन्यत्र स्थानों पर भी उनका लाभ लिया जा सके।

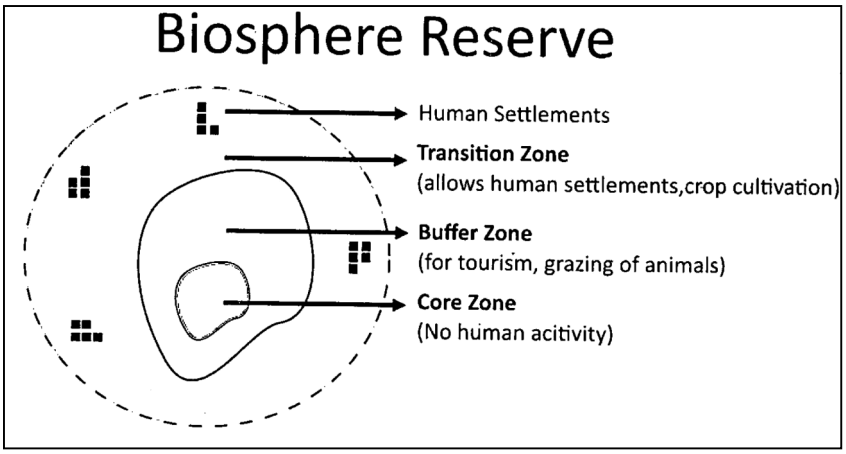

चित्र क्र. 3.6: जैव मंडल रिजर्व

(vi) मुख्य रूप से जैव–मण्डल रिजर्व का उद्देश्य संरक्षण, शोध, शिक्षा एवं शिक्षा एवं स्थानीय भागीदारी होती है। अतः यह विश्व संरक्षण कार्य योजना का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। जैव–मण्डल रिजर्व में ऐसा क्षेत्र आता है, जिसको पारिस्थितिक तन्त्र एवं प्रकृति मानवों के द्वारा रूपान्तरित नहीं किया गया हो। (चित्र क्र. 3.6)

(vii) **केन्द्रीय क्षेत्र (Core Zone)** – यह लगभग पूर्ण रूप से प्राकृतिक क्षेत्र होता है।

(viii) प्रबन्धन के उद्देश्य से जैव–मण्डल रिजर्व को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

(ix) **हस्तकौशल (पर्यटन) क्षेत्र (Manipulation (Tourism) Zone)** – इसमें वे क्षेत्र आते हैं जिन्हें पर्यटन, शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिये चिन्हित किया जाता है।

(x) **हस्तकौशल (वानिकी) क्षेत्र (Manipulation (Forests) Zone)** – इसमें मानवों के द्वारा बनाये गये वन तथा चयनित वन क्षेत्र आते हैं।

(xi) **हस्तकौशल (कृषि) क्षेत्र (Manipulation (Agriculture) Zone)** – इसमें कृषि योग्य भूमि वाले क्षेत्र आते हैं।

(xii) **पुनरुद्धार क्षेत्र (Restoration Zone)** – इसमें वे क्षेत्र आते हैं, जिनका पुनरुद्धार करके वहाँ की पारिस्थितिकी को ठीक किया जा सकता है।

टिप्पणी

भारतीय मानव एवं जैव–मण्डल समिति के द्वारा चौदह पारिस्थितिक तन्त्रों को जैव–मण्डल रिजर्व के रूप में चिन्हित किया गया, जो निम्नलिखित हैं–

सारणी क्र. 3.8: भारत के 2011 तक के जैव–मण्डल रिजर्व की सारणी (List of Biosphere Reserves in India till 2011) (en.m.wikipedia.org)

क्र.	नाम	घोषित साल	क्षेत्रफल	राज्य	क्षेत्र
1.	अचतकमार, अमरकंटक	2005	3835	छत्तिसगड	Maikal Hills
2.	अगस्थिमलाई	2001	3500.08	केरल, तामिळनाडू	Western Ghats
3.	देहांग–दिबांग	1998	5112	अरूणाचल प्रदेश	Eastern Himalaya
4.	डिब्रू शेखोवा	1997	765.00	असम	Eastern Hills
5.	ग्रेट निकोबार	1989	885.00	अंदमान निकोबार	Islands
6.	मन्नार की खाडी	1989	10500	तमिलनाडु	Coasts
7.	कंचनजंगा	2000	2620	सिक्किम	East Himalayas
8.	मानस	1989	2837	असम	Eastern Hills
9.	नन्दादेवी	1988	5860	उत्तराखंड	Western Himalayas
10	नीलगिरी	1986	5520.00	तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक	Western Ghats
11.	नाकरेक	1988	81.72	मेघालय	Eastern Hills
12.	पचमढी	1999	4926.00	मध्यप्रदेश	Semi-arid
13.	सिम्लीपाल	1994	4374.00	ओडिशा	
14.	सुन्दरबन	1989	9630.00	पश्चिम बंगाल	
15.	कच्छ का रण	2008	12454	गुजरात	Desert
16.	ठंडा मरूस्थल	2009	7770	हिमाचल प्रदेश	Western Himalayas
17.	शेषाचलम	2010	4755	आन्ध्र प्रदेश	Eastern Ghats
18.	पन्ना	2011	2998.98	मध्य प्रदेश	Catchment Area of Ken river

भारत का प्रथम जैव–मण्डल रिजर्व नीलगिरी तथा नाकरेक (थूरा रेंज, मेघालय) भारत का तीसरा जैव–मण्डल रिजर्व था। जून 1997 तक भारत में आठ जैव–मण्डल रिजर्व की स्थापना हो चुकी थी।

इस जैव–मण्डल कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रबन्धन, प्रमुख जातियों का संरक्षण, डाटा बेस का विकास, समाज सुधार आदि कार्यक्रम आते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

8. भारत का प्रथम बायोस्फियर रिजर्व हैं

(अ) नीलगिरी (ब) कान्हा

(स) मानस (द) नॉकरेक

9. 'पादप जीवाश्म' राष्ट्रीय उद्यान कहाँ पर स्थित है?

(अ) बस्तर (ब) मडंला

(स) भोपाल (द) शिवपुरी

10. पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है?

(अ) 1 जून (ब) 5 जून

(स) 1 मई (द) 5 मई

11. म.प्र. का प्रथम राष्ट्रीय उद्यान है?

(अ) शिवपुरी (ब) बाँधवगड़

(स) कान्हा (द) कांगेर

12. वर्तमान में भारत में कितने बायोस्फेयर रिजर्व स्थापित है?

(अ) 98 (ब) 28

(स) 18 (द) 14

3.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answer to Check Your Progress)

1. (ब)
2. (स)
3. (ब)
4. (स)
5. (अ)
6. (ब)
7. (द)
8. (ब)
9. (ब)
10. (ब)
11. (स)
12 (स)

टिप्पणी

3.17 सारांश (Summary)

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जीवधारी आपस में संगठित होकर एक समष्टि बनाते है जिसमें जीवों के मध्य होने वाली परस्पर क्रियाओं तथा उन्हें नियंत्रित करने वाले सभी कारकों को समझा जा सकता है। एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाले समुदाय के लक्षण, आकार एवं सरंचना वर्गीकरण का अध्ययन बहुत उपयोगी होता है। मनुष्य की बढ़ती जनसंख्या के कारण जैव–विविधता को संरक्षित करना अति आवश्यक हो गया है। जैव–विविधता के संरक्षण हेतु इन–सिटू एवं एक्स–सिटू विधियाँ अपनाई जा रही हैं, जैसे की राष्ट्रीय उद्यान अभयारण्य, बायोस्फियर आदि।

3.18 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **समष्टि घनत्व**– प्रति इकाई क्षेत्रफल में प्रजाति विशेष के सदस्यों की संख्या को समष्टि धनत्व कहते हैं।
- **जन्मदर**– किसी इकाई समय में जीव संख्या के द्वारा जन्म लिए जीवों की संख्या।
- **मृत्यु दर**– एक इकाई समय में किसी क्षेत्र में उपस्थित एक समष्टि में मृत जीवों की संख्या।
- **वयस वितरण**– विभिन्न वयस वर्गों में समष्टि के जीवों की संख्या।
- **आयु स्तूप**– किसी जीव की समष्टि मे उसकी आयु के विभिन्न समूहों के अनुपात को रेखीय तरीके से दर्शाने वाला मण्डल।
- **इकैड**– ऐसे सदस्यों की समष्टि होती है, जो आनुवंशिक रूप से समान होते है, परन्तु अपने कायिक लक्षणों मे भिन्नता प्रदर्शित करते हैं।
- **इकोटाइप या पारिप्रारूप**– ऐसी प्रजातियों की समष्टि जो आनुवंशिक रूप से भिन्न होते है।
- **घनत्व**– किसी विशिष्ट क्षेत्र मे उपस्थित जीवों या एक प्रजाति के सदस्यों की कुल संख्या को उस क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल से भाग देने पर प्राप्त किया जाता है।

3.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. पादप समुदायों के लक्षणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. पादप समुदायों के मात्रात्मक (परिमाणात्मक) लक्षणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

3. समष्टि की अभिलाक्षणिक विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
4. विभिन्न प्रकार के समष्टि वृद्धि वक्र को समझाइए।
5. वृद्धि वक्र क्या है?
6. समष्टि घनत्व क्या है?
7. इकोटोन पर टिप्पणी लिखिए।
8. पादप समुदाय में घनत्व का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
9. आवृत्ति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
10. पादप समुदाय में रोनकियर के जीवन रूप का वर्णन कीजिए।
11. घनत्व पर टिप्पणी लिखिए।
12. घनत्व एवं जीव रूप पर टिप्पणी लिखिए।
13. जैव–विविधता की परिभाषा एवं अवधारणा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
14. जैव–विविधता का पारिस्थितिक महत्त्व बताइए।
15. जैव–विविधता के सामाजिक एवं नैतिक महत्त्वों का वर्णन कीजिए।
16. भारतीय जैव–विविधता पर टिप्पणी लिखिए।
17. हॉट–स्पॉटस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
18. जैव–विविधता के संरक्षण को समझाइए।
19. लुप्तप्रायः तथा खतरे में पड़ी जातियों पर टिप्पणी लिखिए।
20. भारत की संकटग्रस्त जातियों की सूची बनाइए।
21. लाल आँकड़ा पुस्तक पर टिप्पणी लिखिए।
22. मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय उद्यान पर एक टिप्पणी लिखिए।
23. सेन्चुरीज पर टिप्पणी लिखिए।
24. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
    (i) कान्हा राष्ट्रीय उद्यान
    (ii) बान्धवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान
    (iii) जैव–मण्डल रिजर्व
    (iv) मध्यप्रदेश के दो प्रमुख अभयारण्य

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. किसी पादप समुदाय की संरचना में प्रयोग होने वाले मात्रात्मक लक्षणों का वर्णन कीजिए।
2. समुदाय के अध्ययन में परिमाणात्मक लक्षणों का उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी

3. पादप समुदाय के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
4. पादप समुदाय के गुणों की विवेचना कीजिए।
5. पादप समुदाय में जातियों का घनत्व एवं बारम्बारता निकालने की विधि का वर्णन कीजिए।
6. समुदाय को परिभाषित कीजिए। पादप समुदाय के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए।
7. समुदाय के उद्‌गम एवं परिवर्धन का वर्णन कीजिए।
8. समष्टि की विभिन्न अभिलाक्षणिक विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
9. समष्टि वृद्धि को नियमन करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
10. समष्टि पारिस्थितिक पर एक लेख लिखिए।
11. समष्टि वृद्धि रूप एवं वृद्धि वक्र से आप क्या समझते हैं?
12. वृद्धि क्या होती है? जनसंख्या वृद्धि (वक्र) समझाइए।
13. रोनकियर द्वारा सुझाये गये विभिन्न जीव रूपों का वर्णन कीजिए।
14. जैव विविधता से क्या आशय है? जैव–विविधताओं की अवधारणाओं की विवेचना कीजिए।
15. जैव–विविधता के महत्त्व का विवरण दीजिए।
16. भारतीय जैव–विविधता का वर्णन कीजिए।
17. संकटग्रस्त प्रजातियों से आप क्या समझते हैं? संकटग्रस्त जातियों की विभिन्न श्रेणियों का उदाहरण सहित चर्चा कीजिए।
18. लाल आँकड़ा पुस्तक (रेड डाटा बुक) का विवरण दीजिए।
19. प्रारिप्ररूप (इकोटाइप), इकेड एवं वृद्धि वक्र का वर्णन कीजिए।
20. प्रारिप्ररूप (ecotype) एवं जैवप्ररूप (biotype) से आप क्या समझते हैं? प्रारिप्ररूपों का वर्णन कीजिए।
21. इकेड एवं इकोटाइप पर लेख लिखिए।
22. मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों का उल्लेख कीजिए एवं किसी एक का वर्णन कीजिए।
23. मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों की एक सूची बनाइए।
24. मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों का वर्णन कीजिए। जैव–विविधता संरक्षण में राष्ट्रीय उद्यानों की भूमिका के बारे में लिखिए।
25. मध्यप्रदेश में कौन–कौन से राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना कहाँ की गयी है? इनकी विशेषताएँ बताइए।

26. मध्यप्रदेश के पाँच अभयारण्यों के नाम लिखिए। ये किस जिले में स्थित हैं? यहाँ के प्राणी जाति एवं पादप जाति का उल्लेख कीजिए।

27. जैव–मण्डल संचयन से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार का होता है? भारत के प्रमुख जैव–मण्डल संचयन के नाम लिखिए।

टिप्पणी

3.20 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कॉलेज बॉटनी Vol. II – एस. सुन्दरा राजन
2. इकोलॉजी – एम. पी. अरोरा

इकाई 4 मृदा एवं प्रदूषण (Soil and Pollution)

टिप्पणी

संरचना (Structure)

4.0 परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुण

- 4.2.1 मृदा के भौतिक गुण
- 4.2.2 मृदा के रासायनिक गुण

4.3 मृदा का निर्माण

4.4 मृदा परिच्छेदिका

4.5 मृदा का वर्गीकरण

4.6 मृदा का संघटन

- 4.6.1 खनिज पदार्थ
- 4.6.2 कार्बनिक पदार्थ अथवा ह्यूमस
- 4.6.3 मृदा वायु
- 4.6.4 मृदा जल

4.7 मृदा कारक

4.8 पर्यावरणीय प्रदूषण

- 4.8.1 प्रदूषक
- 4.8.2 पर्यावरणीय प्रदूषण
- 4.8.3 प्रदूषण के प्रकार

4.9 वायु प्रदूषण

- 4.9.1 वायु प्रदूषकों के स्त्रोत
- 4.9.2 गैसीय वायु प्रदूषक
- 4.9.3 अम्ल वर्षा
- 4.9.4 फोटोकेमिकल उत्पाद
- 4.9.5 विविक्त (कणिकीय) पदार्थ
- 4.9.6 टॉक्सीकेन्ट्स

4.10 जल प्रदूषण

- 4.10.1 जल प्रदूषण के स्रोत
- 4.10.2 जल प्रदूषण के प्रभाव
- 4.10.3 जल प्रदूषण का नियंत्रण

4.11 मृदा प्रदूषण

- 4.11.1 मृदा प्रदूषण के स्रोत
- 4.11.2 मृदा प्रदूषण का प्रभाव
- 4.11.3 मृदा प्रदूषण का नियंत्रण

4.12 ध्वनि प्रदूषण

- 4.12.1 ध्वनि प्रदूषण के स्रोत
- 4.12.2 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव
- 4.12.3 ध्वनि प्रदूषण का नियन्त्रण

4.13 रेडियोधर्मी प्रदूषण

- 4.13.1 रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत
- 4.13.2 रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव
- 4.13.3 रेडियोधर्मी प्रदूषण का नियंत्रण

4.14 विकिरण प्रदूषण
4.14.1 विकिरण प्रदूषण के स्रोत
4.14.2 विकिरण प्रदूषण के प्रभाव
4.14.3 विकिरण प्रदूषण का नियंत्रण
4.15 पर्यावरणीय समस्याएँ
4.15.1 जलवायु परिवर्तन एवं विश्व का बढ़ता तापमान
4.15.2 जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव
4.15.3 ओजोन परत क्षरण
4.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.17 सारांश
4.18 मुख्य शब्दावली
4.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.20 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

4.0 परिचय (Introduction)

मृदा शब्द (Soil) का उद्‌गम लैटिन भाषा के सोलम **(Solum)** शब्द से हुआ है। जिसका अर्थ मिट्‌टी से है, जिसमें पौधे उग सकते हैं। मृदा एक मूल प्राकृतिक संसाधन है। स्थल की सतह को ही मृदा कहते हैं। स्थल का लगभग 4/5 क्षेत्र मृदा से ढंका हुआ है। पौधों एवं जन्तुओं के लिए यह एक प्राकृतिक आवास **(Natural habitat)** है। मृदा से पौधे पोषक तत्त्व एवं जल प्राप्त करते हैं। जीवाणु, कवक तथा विभिन्न प्रकार के जन्तु जो पदार्थों को सड़ाते हैं, मृदा में ही पाये जाते हैं। मृदा विभिन्न खनिज लवणों का एक मिश्रण है जो चट्‌टानों के टूटने–फूटने तथा कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस से मिलकर बनती है। मृदा में विभिन्न प्रकार के भौतिक तथा रासायनिक गुण पाये जाते हैं। मृदा के भौतिक गुण उसके गठन (texture) संरचना, घनत्व, रन्ध्रता तथा पानी को रोकने रहने की क्षमता पर निर्भर करते हैं। लवणों की सान्द्रता, कार्बनिक तथा अकार्बनिक तत्व मृदा के रासायनिक गुणों को निर्धारित करते हैं।

ट्रैशोव **(Treshow, 1970)** के अनुसार मृदा एक जटिल जैव–भौतिकी तंत्र (Biophysical system) है जो पादपों के लिए ऑक्सीजन, पोषण, जल तथा आलम्बन प्रदान करती है।

पृथ्वी पर विशिष्ट प्रकार के वातावरण होने पर विभिन्न प्रकार के जीव यहाँ पाये जाते है। यह वातावरण उनकी वृद्धि के लिये उत्तम है किन्तु मुनष्य अपने स्वार्थ के लिए इस वातावरण में कई ऐसे परिवर्तन ला रहा है जो बाकी सभी जीवधारियों के लिए हानिकारक हो रहा है।

4.1 उद्देश्य (Objectives)

मृदा एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संपदा है जिस पर मनुष्य का जीवन निर्भर करता है। इसके गुण, संघटन आदि की जानकारी प्राप्त करके इन्हें खेती के कार्य में उपयोग किया जा सकता है। मृदा का अध्ययन पैडोलॉजी **(Pedology)** या इडैफोलॉजी

टिप्पणी

(Edaphology) कहलाता है। मृदा से सम्बन्धित सभी कारक मिलकर वनस्पति के निर्माण पर प्रभाव डालते हैं।

पर्यावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के प्रदूषण के कारक एवं निवारण की जानकारी प्रदान करना इस इकाई का उद्देश्य हैं। पर्यावरण को प्रदूषणमुक्त बनाने के उपाय अपना कर इस धरोहर को भविष्य के लिए तैयार किया जा सकता है।

4.2 मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुण (Physical and Chemical Properties of Soil)

4.2.1 मृदा के भौतिक गुण (Physical Properties of Soil)

I. **मृदा गठन (Soil Texture)** – इसके अन्तर्गत मृदा का निर्माण करने वाले कणों का आकार एवं अनुपात आता है। ये दोनों गुण विभिन्न प्रकार की मृदाओं में भिन्न–भिन्न होते हैं। विभिन्न प्रकार की मृदाओं में निम्नलिखित आकार एवं व्यास वाले कण पाये जाते हैं –

(i) **बजरी (Gravel)** – 5.000 मि.मी. से अधिक व्यास वाले कण।

(ii) **महीन बजरी (Fine Gravel)** – 2.000 मि.मी. से 5.000 मि.मी. तक व्यास वाले कण।

(iii) **मोटी बालू (Coarse Sand)** – 0.200 मि.मी. से 2.000 मि.मी. तक व्यास वाले कण।

(iv) **महीन बालू (Fine Sand)** – 0.020 मि.मी. से 0.200 मि.मी. तक व्यास वाले कण।

(v) **गाद (Silt)** – 0.002 मि.मी. से 0.020 मि.मी. तक व्यास वाले कण।

(vi) **चिकनी मिट्टी (Clay)** – 0.002 मि.मी. से कम व्यास वाले कण।

II. **मृदा के प्रकार (Types of Soil)** – मृदाओं में उपर्युक्त कण विभिन्न अनुपातों में पाये जाते हैं। इन कणों के व्यास एवं अनुपात के आधार पर मृदाएँ निम्न प्रकार की होती हैं–

(i) **बलुई मृदा (Sandy Soil)** – इस मृदा में बालू के कण अधिक मात्रा में होते है, जिनके बीच वायु (air) प्रचुर मात्रा में होती है। इस मृदा के कणों में जल धारण क्षमता **(water holding capacity)** एवं खनिज लवण बहुत कम होता है। अतः मृदा पौधों के लिए उपयोगी नहीं होती है।

(ii) **चिकनी मृदा (Clay)** – इस मृदा के कण महीन होते हैं और पास–पास स्थित होने के कारण मृदा कठोर (hard) हो जाती है। इस मृदा में वायु अवकाश (air spaces) कम होते हैं और यह मृदा शीघ्र ही जल संतृप्त (water saturated) हो जाती है। मृदा के कणों में जल धारण (water holding) क्षमता बहुत अधिक होती है, पर फिर भी यह मृदा पौधों के लिए अधिक उपयोगी नहीं होती है।

टिप्पणी

(iii) दोमट मृदा (Loamy Soil) – इस मृदा में बालू (sand) एवं चिकनी मृदा (clay) के कणों का लगभग बराबर मिश्रण होता है। यह मृदा पौधों की वृद्धि के लिए सर्वोत्तम होती है। इस मृदा के कणों में बहुत अधिक जल धारण क्षमता एवं वायु संचार भी भली–भाँति होता है। इस मृदा से केशिकत्व (capillary) विधि द्वारा जल पौधे की जड़ों (roots) को प्राप्त होता रहता है।

बालू, चिकनी मृदा एवं दोमट मृदा में अन्तर (Differences between Sand, Clay and Loamy Soil)

क्र. स.	बालू (Sand)	चिकनी मृदा (Clay)	दोमट मृदा (Loamy Soil)
1.	मृदा के कण 0.02 मि.मी. से अधिक माप के होते हैं।	कणों का माप 0.002 मि.मी. से भी कम होता है।	कणों का माप 0.002–0.02 मि.मी. के बीच होता है।
2.	मृदा के कणों के बीच वायु अवकाश (air spaces) स्थित होते हैं।	वायु अवकाश बहुत छोटे होते हैं।	वायु अवकाश छोटे तथा बड़े दोनों ही प्रकार के होते हैं।
3.	कणों में जल धारण क्षमता (water holding capacity) बहुत कम होती है।	कणों में बहुत अधिक जल धारण क्षमता पायी जाती है।	कणों में औसत प्रकार की जल धारण क्षमता पाई जाती है।
4.	कणों के बीच वायु अधिक पाई जाती है।	वायु कम मात्रा में उपस्थित होती है।	औसत वायु उपस्थित होती है।
5.	मृदा मुलायम ढीली तथा भुर–भुरी होती है।	मृदा कड़ी एवं चिपकने वाली होती है।	मृदा कम चिपकने वाली तथा खुरदरी होती है।
6.	इसके कणों द्वारा जल सुगमता पूर्वक रिस जाता है।	कणों द्वारा जल धीरे–धीरे रिस पाता है।	कणों द्वारा जल औसत दर से रिसता है।
7.	पौधों की जड़ें आसानी से प्रवेश कर जाती हैं।	पौधों की जड़ें कठिनाई से प्रवेश करती हैं।	जड़ें औसत प्रकार से प्रवेश करती है।

टिप्पणी

III. मृदा के गठन समूह (Textural Groups of Soil)

(i) बलुई मृदा – 85% बालू + 15% चिकनी एवं गाद मृदा।

(ii) गाद मृदा – 90% गाद + 10% बालू

(iii) चिकनी मृदा – 50% चिकनी मृदा + 50% गाद एवं कुछ बालू।

(v) दोमद मृदा – 30-50% बालू, 30-50% गाद, 20% कम चिकनी मृदा।

IV. मृदा रंग (Soil Colour) – अलग–अलग स्थानों की मृदा का रंग अलग–अलग प्रकार का हो सकता है।

V. छिद्रता (Porosity) – मृदा कणों के बीच में रिक्त अवकाश पाए जाते हैं, जिनमें मृदा जल एवं मृदा वायु पाई जाती है।

VI. मृदा पारगम्यता (Soil Permeability) – मृदा द्वारा जल को अपने अन्दर रखने वाली क्षमता को पारगम्यता कहते हैं।

4.2.2 मृदा के रासायनिक गुण (Chemical Properties of Soil)

मृदा के रासायनिक गुण निम्नलिखित हैं–

1. **मृदा के अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic Matters of Soil)** – अकार्बनिक पदार्थ चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होते हैं– सिलिका, एल्युमीनियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, पोटैशियम एवं सोडियम के यौगिक मृदा के मुख्य अकार्बनिक घटक हैं। कम मात्रा में दूसरे अन्य अकार्बनिक, जैसे–कॉपर, कोबाल्ट, आयोडीन, फ्लोरीन के यौगिक भी पाये जाते हैं। विभिन्न स्थानों की मृदा में इन रसायनों की मात्रा भी अलग–अलग होती है।

2. **मृदा के कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter of Soil)** – जीवित या मृत कार्बनिक पदार्थों से मिलकर यह बनता है। मृदाओं की ऊपरी सतहों से भार की दृष्टि से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 1–6 प्रतिशत होती है। यह मृदा में पौधों एवं जन्तुओं के अवशेषों से आते हैं। इन पदार्थों का विच्छेदन मृदा जीवों द्वारा होता रहता है। सम्पूर्ण कार्बनिक पदार्थ का एक छोटा हिस्सा ही जल में घुलनशील होता है लेकिन इसका अधिकांश भाग क्षारीय घोल में घुलनशील होता है।

   कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन से बने काले या बादामी पदार्थ को ह्यूमस कहते हैं। स्वभाव में यह कोलॉइडी होता है। इसमें जल एवं पोषक तत्वों को धारण करने की क्षमता क्ले (Clay) से अधिक होती है।

3. **मृदा कणों की कलिलीय प्रकृति (Colloidal Nature of Soil Particles)** – शुद्ध रेत के अतिरिक्त सभी मृदाएँ कोलॉइडी आकार के कण वाली होती हैं। मृदा का कोलॉइडी अंश सक्रिय एवं महत्त्वपूर्ण होता है। एक माइक्रोन या 0.001 मि.मी. से छोटे कण मृदा कोलॉइड्स **(Soil colloids)**

होते हैं। मृदा में दो प्रकार के कोलॉइड अकार्बनिक या खनिज कोलॉइड्स एवं कार्बनिक या ह्यूमस होते हैं।

टिप्पणी

4. **मृदा अभिक्रिया (Soil Reactions)** – मृदा के अनेक रासायनिक गुण मृदा अभिक्रिया पर निर्भर रहते हैं। अभिक्रिया की प्रकृति के आधार पर कुछ मृदाएँ उदासीन (neutral) कुछ **अम्लीय (acidic)** तथा **कुछ क्षारीय (basic)** होती हैं। जिनका मापन हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता या pH मान से किया जाता है।

   (i) अम्लीय मृदाएँ (Acidic Soils) – जिन मृदा का pH मान हमेशा 7.0 से कम रहता है। इन मृदाओं का रंग गहरा होता है उन्हें अम्लीय मृदाएँ कहते है। इनमें जीवांश पदार्थ की अधिकता से कार्बनिक अम्ल अधिक पैदा होते हैं। मृदा में फॉस्फोरस का स्थिरीकरण अधिक होता है। प्रबल अम्लीय मृदाओं में आयनों के अपेक्षालन **(leaching)** होने से मृदा में इनकी कमी हो जाती है जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

   (ii) क्षारीय मृदाएँ (Alkaline Soils) – आम तौर पर इसे ऊसर भूमि भी कहते हैं। इन मृदाओं में दशा विनिमयशील सोडियम मात्रा में पाया जाता है।

   इस प्रकार की मृदाओं में जल पारगम्यता, पौधों का पोषण, पादप उपापचय क्रियाएँ कम हो जाती हैं।

4.3 मृदा का निर्माण (Soil Formation)

मृदा के निर्माण की सम्पूर्ण क्रिया को दो भागों में बाँटा जा सकता है – **I. अपक्षय (Weathering) एवं II. मृदा परिवर्धन (Soil Development)**

I अपक्षय (Weathering) – यह क्रिया भौतिक, रासायनिक व जैविक विधियों द्वारा होती है–

(i) भौतिक अपक्षय (Physical Weathering) – इस विधि में बड़ी–बड़ी चट्टानें छोटे–छोटे टुकड़ों में टूटकर अन्त में सूक्ष्म कणों में बदल जाती है। इस विधि में सर्वप्रथम तापमान के घटने–बढ़ने से चट्टानें सिकुड़ती तथा फैलती हैं, जिससे वे फट जाती हैं और उनमें दरारें पड़ जाती हैं। वर्षा के दबाब एवं तेज वायु के चलने के कारण चट्टानें नीचे गिर जाती हैं तथा छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाती हैं। पानी की गति के साथ ये टुकड़े रगड़ खाकर और छोटे–छोटे टुकड़ों तथा सूक्ष्म कणों में परिवर्तित हो जाते हैं।

(ii) रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering) – भौतिक अपक्षय के साथ–साथ अथवा बाद में सूक्ष्म कणों का रासायनिक अपक्षय होता है जिसके फलस्वरूप खनिज लवणों के जटिल कण बनते हैं। रासायनिक अपक्षय के दौरान जल–अपघटन (hydrolysis)

टिप्पणी

ऑक्सीकरण, कार्बोनेशन (carbonation), अपचयन एवं जलयोजन (hydration) आदि क्रियाएँ भौतिक अपक्षय द्वारा प्राप्त सूक्ष्म कणों में होती रहती हैं।

(ii) **जैविक अपक्षय (Biological Weathering)** – इस विधि में अनेक जैविक कारकों जैसे वनस्पति, जन्तु एवं मानव की क्रियाएँ चट्टानों के भौतिक एवं रासायनिक अपक्षय को बढ़ाती है। नंगी चट्टानों पर उगने वाले क्रस्टोज लाइकेन (Crustose lichen) कार्बोनिक अम्ल एवं अन्य रासायनिक पदार्थों को स्त्रावित करते हैं। ये पदार्थ रासायनिक अपक्षय में सहायक होते हैं।

II. मृदा परिवर्धन (Soil Development) – इसे मृदा जनन **(pedogenesis)** अथवा मृदा परिपक्वन (soil maturation) भी कहा जाता है। जीवाणु, कवक, शैवाल, लाइकेन चट्टानों में प्रवेश कर जाते हैं तथा विभिन्न जैविक क्रियाएँ करते हैं जिससे अनेक प्रकार के कार्बनिक अम्ल, एन्जाइम्स, कार्बन डाईऑक्साइड एवं कार्बनिक पदार्थ स्त्रावित होते हैं जीवों के मृत भागों के अपघटन से बना ह्यूमस (humus) भी खनिज कणों के साथ मिश्रित हो जाता है। इस प्रकार कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों के मिश्रण से मृदा का निर्माण हो जाता है।

4.4 मृदा परिच्छेदिका (Soil Profile)

किसी भी भूमि की खड़ी काट जिसमें मृदा के विभिन्न स्तर अथवा होरीजोन (horizon) दिखलाई पड़ते हैं, को मृदा परिच्छेदिका कहते है। इन विभिन्न स्तरों की मोटाई, रचना व गुण भी भिन्न–भिन्न होते हैं।

एक आदर्श मृदा परिच्छेदिका में निम्न होरीजोन (स्तर) दिखलाई पड़ते हैं –

(अ) होरीजोन 'A' (Horizon 'A') – यह भूमि का सबसे ऊपरी स्तर होता है। इसे शीर्ष मृदा (Top soil) भी कहते हैं। इसका रंग गहरा भूरा होता है। इसमें ह्यूमस की अधिकता होती है। इसकी मोटाई एक पतली गर्त से लेकर 10 फुट तक होती है। इसमें अधिकतम जैविक क्रियाएँ (biological activities) होती हैं। (चित्र क्र. 4.1)

होरीजोन 'A' को निम्नलिखित चार उप–होरीजोन में बाँटा गया है –

(a) A_{00} अथवा 0_1 (A_{00} or 0_1 Horizon) – यह 'A' होरीजोन का सबसे ऊपरी स्तर हैं इसका निर्माण तुरन्त टूटकर गिरी हुई टहनियों, पत्तियों, फूल एवं फलों आदि के द्वारा होता है। कुछ मृदाओं में यह उप–होरीजोन अनुपस्थित होता है।

(b) A_0 अथवा 0_2 (A_0 or 0_2 Horizon) – इसमें सभी पादप–अंग सड़ते हैं एवं आंशिक रूप से अपघटित (decompose) होते रहते हैं।

टिप्पणी

(c) A_1 होरीजोन (A_1 Horizon) – इसमें खनिज एवं कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, क्योंकि इस उप–होरीजोन तक ह्यूमस का पूर्ण निर्माण हो चुका होता है।

(d) A_2 होरीजोन (A_2 Horizon) – इसमें खनिज एवं कार्बनिक पदार्थों की काफी कमी हो जाती है तथा यह हल्के रंग का होता है।

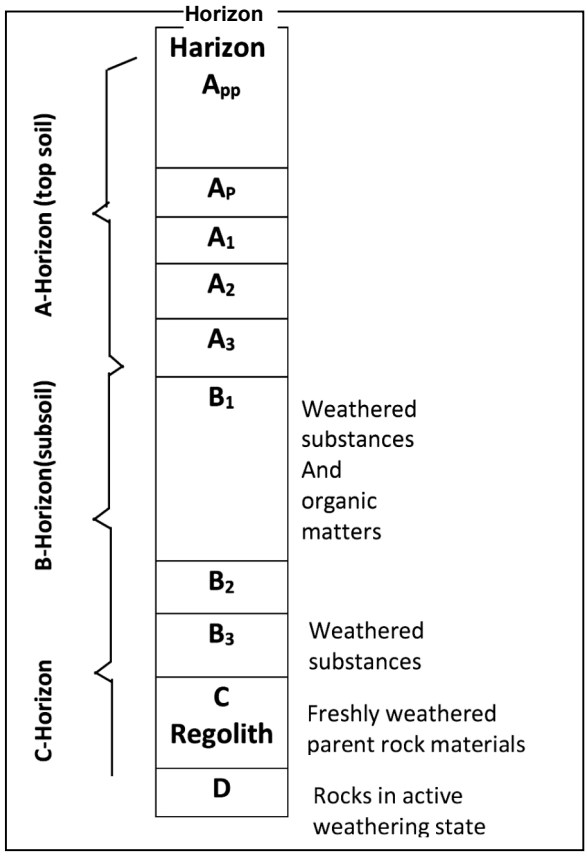

चित्र क्र. 4.1: मृदा परिच्छेदिका

(ब) होरीजोन 'B' (Horizon 'B') – यह होरीजोन 'A' के ठीक नीचे पाया जाता है, इसे अधो–भूमि **(Sub-soil)** भी कहते हैं। इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं

(i) यह होरीजोन 'A' की तुलना में हल्के भूरे रंग का होता है।

(ii) वर्षा का जल इसी होरीजोन में एकत्र होता है।

(iii) इसमें जैविक क्रियाएँ तथा जड़ों की वृद्धि कम होती है।

(iv) इस होरीजोन तक केवल बड़े वृक्षों की जड़ें ही पहुँच पाती हैं। A_1, A_2 एवं 'B' होरीजोन्स को सम्मिलित रूप से सोलम (solum) कहते हैं।

(क) होरीजोन 'C' (Horizon 'C') – यह होरीजोन 'B' के ठीक नीचे पाया जाता है। इसमें $CaCO_3$ तथा $CaSO_4$ परतों के रूप में पाये जाते हैं। इस होरीजोन तक बहुत कम पौधों की जड़ें ही पहुँच पाती हैं।

टिप्पणी

(ड) होरीजोन 'R' या 'D' (Horizon 'R' or 'D') – यह परिच्छेदिका का सबसे नीचे का स्तर होता है। इसमें चट्टानों की तहें या बड़े–बड़े कंकड़ आदि पाये जाते हैं। इसमें जैविक क्रियाएँ बिल्कुल नहीं होती हैं और न ही पौधों की जड़ें ही पहुँच पाती हैं।

4.5 मृदा का वर्गीकरण (Soil Classification)

मृदा का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है, जैसे–मृदा निर्माण के आधार पर, मृदा संरचना एवं गठन के आधार पर, रंग के आधार पर, गहराई के आधार पर, सरंध्रता **(Porosity)** के आधार पर आदि। किसी विशेष स्थान पर मृदा का प्रकार एवं निर्माण चार कारकों से प्रभावित होता है–

(i) मूल चट्टान (Parent Rock)

(ii) जलवायु एवं वर्षा (Climate and rainfall)

(iii) तलरूपता (Topography)

(iv) वनस्पति एवं प्राणी (Flora and fauna)

मृदा निर्माण के आधार पर मृदाओं को मुख्यतः दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(अ) अवशिष्ट मृदा (Residual Soil) – किसी विशिष्ट स्थान पर चट्टानों के भौतिक अपक्षय (Physical weathering) एवं रासायनिक अपक्षय (chemical weathering) से बनी मृदा, अवशिष्ट मृदा कहलाती है अर्थात् यह मृदा बनने के स्थान पर ही पड़ी रहती है।

(ब) वाहित मृदा (Transported Soil) – अपक्षय के बाद मृदा किसी भी माध्यम (agency) द्वारा दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकती है, जहाँ उससे पैडोजेनेसिस (Pedogenesis) होती है अर्थात् यह मृदा बनने वाले स्थान से बहकर आई हुई मृदा होती है।

वाहित मृदा चार प्रकार की होती है –

(i) जलोढ़ मृदा (Alluvial Soil) – यह मृदा जल द्वारा बहकर दूसरे स्थान पर पहुँचती है। भारत की यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रकार की मृदा है।

(ii) वातोढ़ मृदा (Eolian Soil) – यह मृदा वायु द्वारा उड़कर दूसरे स्थान पर पहुँचती है।

(iii) मिश्रित (मलवा) मृदा (Colluvial Soil) – यह मृदा पृथ्वी के आकर्षण (gravity) के द्वारा दूसरे स्थान पर पहुँचती है।

(iv) हिम मृदा (Glacial Soil) – यह मृदा ग्लेशियर के फिसलने से दूसरे स्थान पर पहुँचती है।

टिप्पणी

4.6 मृदा का संघटन (Composition of Soil)

संघटन की दृष्टि से मृदा में निम्नलिखित चार भाग होते हैं –

1. खनिज पदार्थ (Mineral Matter) – 40%
2. कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter) – 10%
3. मृदा वायु (Soil Air) – 25%
4. मृदा जल (Soil Water) – 25%

इनके अलावा मृदा जीव भी मृदा संघटन में भाग लेते हैं।

4.6.1 खनिज पदार्थ (Mineral Matter)

विभिन्न प्रकार के खनिज लवण मिट्टी में घुलित अवस्था में पाए जाते हैं। पौधों की जड़ें इनका अवशोषण करती हैं। विभिन्न प्रकार के खनिज तत्वों की मात्रा भिन्न होती है। मिट्टी में घुले हुए कुछ खनिज तत्वों में धनावेश **(+ve charge)** होता है, जैसे–कैल्शियम (Ca), पौटेशियम (K), सोडियम (Na), मैग्नीशियम (Mg), आयरन (Fe), मोलिब्डेनम (Mo), जिंक (Zn), कॉपर (Cu), हाइड्रोजन (H) तथा अमोनिया (NH_3)। कुछ मूलकों (radicals) में ऋण आवेश **(–ve charge)** होता है, जैसे–नाइट्रेट (NO_3), नाइट्राइट (NO_2), क्लोराइड (Cl), बाइकार्बोनेट (HCO_3), सल्फेट (SO_4) तथा फॉस्फेट (PO_4) आदि।

ये सभी तत्व पौधों की जड़ों द्वारा सान्द्रता के अनुसार अवशोषित किये जाते हैं। जो पौधे की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। कभी–कभी मिट्टी में लवणों की अधिक सान्द्रता होने पर लवणोद्भिद पौधे उगते हैं।

4.6.2 कार्बनिक पदार्थ अथवा ह्यूमस (Organic Matter or Humus)

प्रायः मृदा में कुछ कार्बनिक पदार्थ पाए जाते हैं जो पौधों के लिए अत्यंत उपयोगी होते हैं। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ पौधों एवं अन्य जीवधारियों की मृत्यु के पश्चात् जीवाणुओं एवं कवकों द्वारा अपघटन किए जाने के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं इस प्रकार के बने हुए कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस का निर्माण करते हैं। इनके कारण मिट्टी का रंग भूरा हो जाता है। इसकी मात्रा शीर्ष मृदा में अधिक होती है जिसके कारण मिट्टी के कणों में अधिक जल धारण क्षमता पाई जाती है। मिट्टी में ह्यूमस के महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं जो निम्न प्रकार हैं–

1. इनके अपघटन से कार्बनिक अम्ल प्राप्त होते हैं जिनसे पौधों एवं सूक्ष्म जीवों को पोषण प्राप्त होता है।
2. यह छिद्रमय होता है और इसमें जल धारण क्षमता एवं वायु पाई जाती है।
3. इसके द्वारा मिट्टी में अधिक वायु उपस्थित रहती है।

कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति (Nature of Organic Matter) – मृदा में कार्बनिक पदार्थ अथवा ह्यूमस का उद्भव (origin) प्राथमिक प्रकाश–संश्लेषणी

टिप्पणी

उत्पाद तथा मृदा जीवों द्वारा विघटित तथा पुनः संश्लेषित विधियों द्वारा होता है। मुख्य रूप से निवेश (input) अधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट्स, लिग्निन यौगिक, वसाएँ एवं प्रोटीन्स तथा सूक्ष्म मात्रा में स्वतंत्र अमीनो अम्ल, ऐल्केन्स, टरपीनॉयड्स, केरोटीनॉयड्स, फ्लेवोनॉयड्स, ऐल्केलॉयड्स, पोलीफीनोल्स तथा रेजिन्स आदि होते हैं। इनमें से कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates), सेल्यूलोज आदि सुगमतापूर्वक विघटित हो जाते हैं तथा कम समय तक मृदा में उपस्थित रहते हैं। कार्बनिक पदार्थ के सूक्ष्म घटक प्रायः लिपिड्स, घुलनशील शर्कराएँ, प्रोटीन्स, अमीनो अम्ल तथा कार्बनिक अम्ल होते है। तथा प्रमुख घटक ह्यूमिक सम्मिश्र होते हैं जो मृदा में अधिक अनुपात में उपस्थित रहते हैं। ये लिग्निन तथा रेजिन्स के मिश्रण के रूप में पाये जाते हैं।

कार्बनिक पदार्थ के उत्पादन स्रोत एवं दरें (Sources and Rates of Production of Organic Matter) – मृदा की सतह पर पाए जाने वाले जीवित पादपों एवं जन्तुओं का मृदा में कार्बनिक पदार्थों का प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहने के लिए विशेष योगदान है, जैसे–पादपों से मृत पत्तियाँ, शाखाएँ, प्ररोह तथा जन्तुओं से उनके मृत शरीर प्राप्त होते हैं जो कार्बनिक पदार्थ कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में रहने वाले सूक्ष्म जीव तथा बड़े जीव, जैसे–जन्तु तथा पादपों की मृत मूलें आदि भी कार्बनिक पदार्थों की मात्रा की वृद्धि मृदा में करते हैं। घने जंगलों में प्रत्येक मौसम में हजारों टन, लिटर अर्थात् सड़ी–गली पत्तियाँ तथा अन्य कार्बनिक पदार्थ मृदा सतह पर एकत्रित हो जाता है। पर्णपाती जंगलों **(deciduous forest)** में पतझड़ एक साथ होता है और सभी पत्तियाँ मृदा सतह पर गिर जाती हैं। भारी मात्रा में प्रत्येक वर्ष एकत्रित होती है। जिनका साथ–साथ अपघटन होता रहता है जो डफ **(duff)** कहलाता है। अतः प्रारम्भिक कार्बनिक पदार्थों का निवेश (input) सतह लिटर **(surface litter)** तथा भूमिगत मृत मूलों के पदार्थ होते है, किन्तु मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की विभिन्न क्रियाओं द्वारा यह कार्बनिक पदार्थ या लिटर भारी मात्रा में रूपान्तरित हो जाता है जो ह्यूमस (humus) कहलाता है। इसे मृदा कार्बनिक पदार्थ भी कहते हैं। ह्यूमस भूरे–काले रंग का भुरभुरा तथा महीन कार्बनिक पदार्थ होता है।

ह्यूमस का निर्माण (Formation of Humus) – इसके निर्माण में सर्वप्रथम मृदा प्राणिजात (soil fauna) द्वारा पादप अवयवों (fragments) को एकत्रित किया जाता है। इस कार्बनिक पदार्थ का भंजन (cracking) मृदा प्राणिजात करता है तथा सूक्ष्मजीव, जैसे–जीवाणु, कवक तथा एक्टीनोमाइसिटीज आदि की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि होती है जो पादप अवयवों को घुलनशील शर्करा, पॉलीसेकेराइड्स, प्रोटीन्स तथा वसाओं में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार से प्रायः मृदाओं में मृदा प्राणिजात तथा सूक्ष्मजीवों की क्रियाओं द्वारा ह्यूमस का निर्माण होता है।

प्रकृति में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन में वायुमण्डलीय कारक सहायक होते हैं। इस प्रकार मृदा के कार्बनिक पदार्थों का संगठन लिटर (litter) रसायन तथा सूक्ष्मजैवीय (micro-biological) की प्रकृति के अनुसार पुनः संश्लेषण के द्वारा

होता है। ह्यूमस निर्माण की दर मृदा में अपघटन करने वाले सूक्ष्म जीवों के स्वभाव, ताप, आर्द्रता, वायु तथा pH के ऊपर निर्भर होती है।

टिप्पणी

ह्यूमस के रूप (Forms of Humus) – कार्बनिक पदार्थ के स्वभाव, वनस्पति तथा जलवायुवीय दशाओं के अनुसार दो प्रकार के ह्यूमस बनते हैं जो– (i) मोर ह्यूमस (Mor humus) तथा (ii) मूल ह्यूमस (Mull humus) कहलाते हैं। **मुलर** (Muller) नामक वैज्ञानिक ने इन दोनों प्रकारों के नाम रखे।

(i) मोर ह्यूमस (Mor Humus) – यह एक प्रकार की मृदा के समान होता है। इस ह्यूमस में पोषक तत्वों तथा केंचुओं की कमी होती है। इसमें लिटर (litter) खनिज मृदा में मिश्रित नहीं होता है। इसमें विघटन बहुत धीमी गति से होता है तथा मृदा की सतह पर O_2 का एक स्तर बन जाता है। यह सघन, खुरदरी भूरे–काले रंग की होती है। यह बहुत अम्लीय होती है। अतः कार्बनिक विघटन नहीं हो पाता है तथा सूक्ष्मजीवों की क्रियाएँ रुक जाती हैं। अतः दलदली प्रकार का मलबा एकत्रित हो जाता है।

(ii) मूल ह्यूमस (Mull Humus) – यह एक प्रकार की मृदा होती है जो वनों की भूमि की सतह को ढके रहते हैं। इसकी आकृति अच्छी होती है जो पथरीली, खनिज लवण, पोषक तत्व तथा चौड़ी पत्तियों आदि से युक्त हैं। इसमें मोर (Mor) की अपेक्षा सूक्ष्म जैविकीय जीवधारियों की अधिक मात्रा पायी जाती है तथा अधिक जीवाणुओं एवं कवकों की समष्टि (population) वाली होती है। इसमें मृदा की pH 5.0 होती है तथा केंचुए अधिकता में पाए जाते हैं। मृदा के अन्दर सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन तेजी से होता है। यह भुरभुरी तथा कलिलीय स्वभाव की होती है।

4.6.3 मृदा वायु (Soil Air)

मृदा के कणों के बीच अवकाश पाए जाते हैं जिनमें वायु उपस्थित रहती है। जड़ें श्वसन क्रिया में इसी वायु को ग्रहण करती हैं अर्थात् मिट्टी में वायु का उपस्थित होना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। जड़ों में श्वसन के साथ–साथ जल अवशोषण एवं खनिज तत्वों का अवशोषण भी तेजी से साथ–साथ होता है, किन्तु जिन मृदाओं में ऑक्सीजन की कमी होती है, उनमें ये क्रियाएँ बहुत धीमी होती हैं। मृदा में कार्बन डाइऑक्साइड का एकत्रित होना हानिकारक होता है। इन गैसों का उपस्थित होना मृदा के गठन (texture) पर निर्भर करता है। जब मिट्टी में वायु की मात्रा कम होती हैं तो वह मिट्टी जल संतृप्त हो जाती है जिससे पौधों की जड़ों (roots) पर बुरा प्रभाव पड़ता है और अन्त में पौधे मर जाते हैं।

4.6.4 मृदा जल (Soil Water)

मृदा को वर्षा से जल प्राप्त होता है। साधारणतया मिट्टी में 25% जल उपस्थित होता है। भारी वर्षा के बाद अधिकतर पानी बह जाता है जो पौधों को प्राप्त नहीं हो पाता है। कुछ पानी मृदा कणों से होकर नीचे रिस जाता है। जिसे गुरुत्वीय जल **(gravitational water)** कहते हैं तथा यह भी पौधों को प्राप्त नहीं हो पाता

है और यह जल यदि काफी समय तक मृदा में उपस्थित रहता है तो ऑक्सीजन (O_2) की कमी के कारण पौधों के मूल तन्त्र को काफी हानि पहुँचाता हैं।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त वर्षा का वह जल जो मृदा कणों में गुरुत्व बल के विपरीत एकत्रित रहता है तथा मृदा को नम बनाए रखता है तथा मृदा कोलॉइड्स **(soil colloids)** में एकत्रित रहता है, आर्द्रताग्राही जल **(hygroscopic water)** कहलाता है। कुछ जल खनिज लवणों (mineral salts) में रासायनिक बंधों द्वारा जकड़ा रहता है, किन्तु जड़ों की अवशोषण शक्ति को नहीं बढ़ाता है। यह रासायनिक बन्धित जल (chemically combined water) कहलाता है।
(चित्र क्र. 4.2)

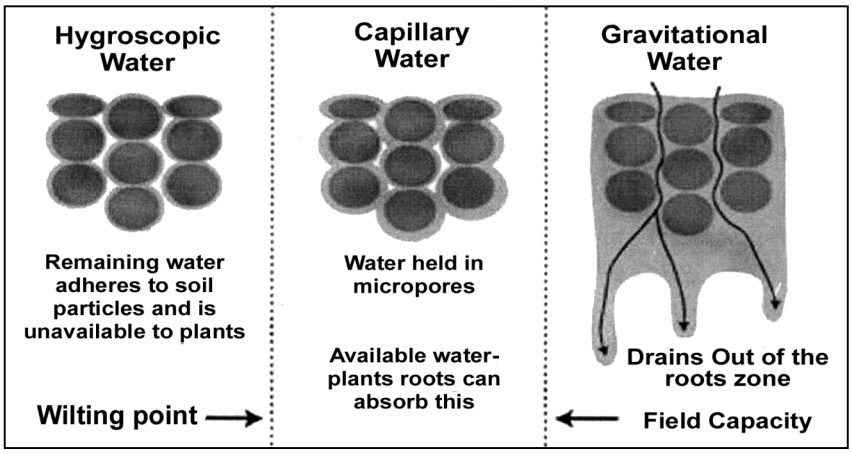

चित्र क्र. 4.2: मृदा जल के प्रकार

विभिन्न प्रकार के मृदा जल–मृदा जल का मिट्टी एवं पादपों से सम्बन्ध प्रदर्शित

जल मृदा कणों के चारों और एक फिल्म (film) बनाते हुए उपस्थित रहता है, जिसे केशिकत्व जल **(capillary water)** कहते हैं। यह जल पौधों के लिए बहुत उपयोगी होता है। जिसका अवशोषण पौधों की जड़ों द्वारा होता है। विभिन्न प्रकार की मृदा के कणों में अलग–अलग धारण क्षमता पाई जाती है। गुरुत्व बल द्वारा पानी के रिस जाने के बाद मृदा जितना जल अपने अन्दर उपस्थित रखती हैं, वह फील्ड क्षमता (field capacity) कहलाती है, जो मिट्टी के प्रकार के ऊपर निर्भर होती है।

मृदा जीव (Soil Organism) – मिट्टी की शीर्ष मृदा में प्रायः जीवाणु, प्रोटोजोआ तथा अनेक मृदीय कवक पाए जाते हैं। इनके द्वारा कार्बनिक पदार्थों का अपघटन होता रहता है। ये जीव पौधों के जीवन के साथ जुड़े रहते हैं अर्थात् पौधों को बराबर खनिज पदार्थ प्रदान करते रहते हैं। कुछ कवक पौधों के साथ, जैसे–मोनोट्रोपा (*Monotropa*) आदि की जड़ों के साथ माइकोराइजा (*Mycorrhiza*) बनाते हैं। जिसकी सहायता से ये पौधे सड़े–गले पदार्थों पर उगकर कार्बनिक पदार्थों का अवशोषण करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में

निमेटोड केंचुए, एक्टीनोमाइसिटीज, नील–हरित शैवाल तथा आर्थ्रोपोड्स भी पाए जाते हैं। मृदा में उपस्थित जीव निम्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं–

टिप्पणी

1. **नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation)** – मिट्टी में उपस्थित अनेक जीवाणु (bacteria) वायु की नाइट्रोजन (N_2) का स्थिरीकरण (fixation) करके अमोनिया (NH_3) तथा नाइट्राइट्स (NO_2) बनाते हैं। नाइट्रीफाइंग जीवाणु (Nitrifying bacteria) अमोनिया (NH_3) को नाइट्रेट्स (NO_3) में बदल देते हैं। लेग्यूमिनस पौधों (Leguminous plants) की जड़ों (roots) में मूल ग्रन्थियाँ (root nodules) पाई जाती हैं जिसमें सहजीवी राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम *(Rhizobium leguminosarum)* पाया जाता है जो नाइट्रोजन (N_2) का स्थिरीकरण करता है।

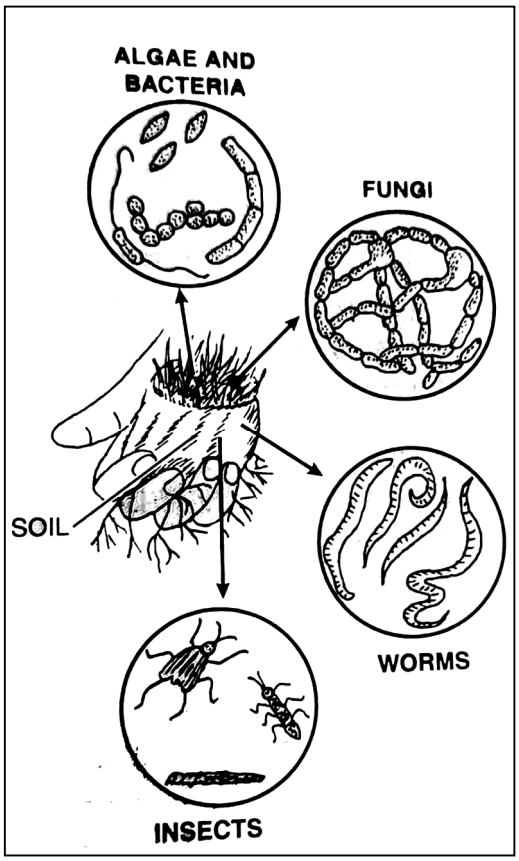

चित्र क्र. 4.3: मृदा में उपस्थित विभिन्न प्रकार के जीव

इसके अतिरिक्त मृदा में अन्य जीवाणु, जैसे – एजोटोबेक्टर *(Azotobacter)*, क्लॉस्ट्रीडियम *(Clostridium)* तथा नील–हरित शैवालः जैसे–नॉस्टॉक *(Nostoc)*, एनाबीना, टोलीपोथ्रिक्स तथा ऑसीलेटोरिया आदि भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके मृदा को उर्वरा शक्ति प्रदान करते हैं। (चित्र क्र. 4.3)

2. **मूल वृद्धि (Root Growth)** – मृदा के राइजोस्फियर प्रदेश **(Rhizosphere Zone)** में कुछ जीवाणु तथा कवक वृद्धि हॉर्मोन्स (growth

टिप्पणी

hormones) जैसे IAA का स्त्रावण करते हैं जिससे पादपों की जड़ों में अधिक वृद्धि होती है।

3. **प्रतिजीविता (Antibiosis)** – कुछ मृदाओं में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव ऐसे उपापचयी पदार्थ उत्पन्न करते हैं जो मृदा के अन्य सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देते हैं अथवा उनकी वृद्धि को रोक देते हैं। इस प्रकार के उपापचयी पदार्थों के विरोधी प्रभाव (antagonistic effect) को प्रतिजीविता कहते हैं।
4. **मृदा जनित रोग (Soil-borne Diseases)** – कुछ कवक, जीवाणु तथा जन्तु, जैसे–निमेटोड्स पादप जड़ों के लिए घातक होते हैं तथा रोग उत्पन्न करते हैं, जिससे फसलों की पैदावार घट जाती है।
5. **मृदा निर्माण (Soil Formation)** – कुछ नील–हरित शैवाल तथा जीवाणु श्लेष्मी पदार्थ उत्पन्न करते हैं। यह पदार्थ मिट्टी के कणों को आपस में जोड़ने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त मिट्टी में अनेक मृतोपजीवी जीवाणु होते हैं, जो सड़े–गले पदार्थों का लगातार विघटन करते रहते हैं, जिससे पौधों को सरल पदार्थ प्राप्त होते रहते हैं। केंचुआ उपजाऊ मिट्टी को बाहर ले जाता है, जो पौधों के लिए लाभकारी होती है।

4.7 मृदा कारक (Soil Factors)

ये वे कारक हैं जो भूमि की संरचना, उसमें उपस्थित वायु, जल, जीव और अन्य पदार्थों से सम्बद्धीत होते हैं। अलग–अलग स्थानों की मृदा भी अलग–अलग भौतिक तथा रासयनिक संरचना रखती है और इसी कारण भिन्न–भिन्न प्रकार की वनस्पति वहाँ उगती है। प्रमुख मृदा व कारकों का वर्णन नीचे किया जा रहा है–

1. **मृदा की आर्द्रता (Soil Moisture)** – मृदा में उपस्थित जल जड़ों द्वारा अवशोषित किया जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि होती है। ऐसी मृदा जिसमें जल एकत्र करने की बहुत अधिक क्षमता होती है, या जल की कमी होती है पौधों के लिए हानिकारक होती है।
2. **मृदा का ताप (Soil Temperature)** – मृदा का ताप भी उगने वाले पौधें पर बहुत प्रभाव डालता है। कम ताप पर पौधों की जड़ें जल और खनिज लवणों को बहुत कम मात्रा में सोखती है।
3. **मृदा की रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature of Soil)** – मृदा में ज्यादा अम्ल, क्षार या लवण का होना तथा अन्य प्रकार के रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति भी पौधों पर बहुत गहरा प्रभाव डालती है।
4. **मृदा की वायु (Soil Air)** – पौधों की जड़ों में एवं सूक्ष्म जीवों की श्वसन क्रिया के लिए मृदा में ऑक्सीजन का होना आवश्यक है।
5. **मृदा के जीव जन्तु (Soil Organisms)** – मृदा में उपस्थित जीवाणु मृदा की उर्वरता को बढ़ाते हैं। जिससे पौधों में तीव्र गति से वृद्धि होती है। केंचुआ अपने उत्सर्जी पदार्थों द्वारा भूमि की उर्वरा–शक्ति बढ़ाता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. मृदा अपरदन सबसे अधिक होता है–

   (अ) वर्षा के जल से (ब) कम वर्षा से

   (स) अत्यधिक वर्षा से (द) धीमी वायु प्रवाह से

2. मृदा परिच्छेदिका का सर्वाधिक उपजाउ भाग है–

   (अ) होरिजोन A (ब) होरिजोन B

   (स) होरिजोन C (द) उपर्युक्त सभी

3. पौधों की वृद्धि के लिए सर्वाधिक उपयोगी मृदा है –

   (अ) गाद (ब) मृत्तिका

   (स) दोमट (द) बलुई

4. चिकनी मिट्टी के कणों का व्यास होता है –

   (अ) 3.02 मिमी (ब) 2 मिमी

   (स) 0.002 मिमी (द) 0.2 मिमी

5. पौधों के लिये लाभदायक होता है –

   (अ) कोशिकत्व जल (ब) गुरूत्वीय जल

   (स) रासायनिक संयोजित (द) आर्द्रताग्राही जल

4.8 पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)

प्रसिद्ध पर्यावरणविद् **ओडम** के अनुसार वातावरण जल, वायु तथा मिट्टी में उपस्थित भौतिक, रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं (biological activities) के असन्तुलित एवं अवांछनीय परिवर्तनों द्वारा जो हानिकारक प्रभाव जीवधारियों एवं मनुष्य पर पड़ता है, उसे प्रदूषण कहा जाता है।

बढ़ती हुई आबादी एवं अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए मनुष्य साथ–साथ वातावरणीय असंतुलन करता है जो प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण कारण होता है। मनुष्य द्वारा जल, थल तथा वायुमण्डल में विषाक्त पदार्थों की मात्रा में वृद्धि की जा रही है। जंगलों, उर्वरा मिट्टी वाले खेतों को नष्ट करके औद्योगीकरण किया जा रहा है। आधुनिक युग में मनुष्य रेलगाड़ियों, मोटरों, स्कूटरों, हवाई जहाज, विषैली औषधियों, कीटनाशक से वातावरण प्रदूषण को बढ़ावा दे रहा है। मनुष्य ने प्राकृतिक स्रोतों का अनियिमित ढंग से उपयोग करके हानिकारक एवं

टिप्पणी

विषैले पदार्थों को जल एवं वायु मण्डल में मिला दिया है। प्रदूषण एक विकराल रूप में दिखाई दे रहा है और इसे नियन्त्रण करना अति आवश्यक हो गया है।

4.8.1 प्रदूषक (Pollutants)

प्रदूषण उत्पन्न करने वाले पदार्थ को प्रदूषक **(Pollutant)** कहा जाता है यह विभिन्न प्रकार के होते है। प्रदूषकों के अन्तर्गत रासायनिक पदार्थ, धूल, अवसाद (sediment) तथा ग्रिट (grit) पदार्थ, जैविक घटक तथा उनके उत्पाद, भौतिक कारक, जैसे ताप आदि सम्मिलित हैं जो पर्यावरण पर कुप्रभाव डालते हैं। अतः प्रदूषक (pollutant) को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

''कोई ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ जो इतनी अधिक सान्द्रता (concentration) में उपस्थित हो कि पर्यावरण के लिए क्षतिपूर्ण (injurious) हो, प्रदूषक कहलाता है।'' जिन वस्तुओं का हम निर्माण, उपयोग करते हैं और बाद में इनका अवशेष (residue) फैंक देते हैं, प्रदूषक कहलाते हैं।

4.8.2 पर्यावरणीय प्रदूषक (Environmental Pollutants)

निम्नलिखित प्रदूषक वायु, जल तथा मृदा को प्रदूषित करते हैं–

1. **गैसे (Gases)** – नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स; जैसे– NO तथा NO_2, सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), हेलोजेन्स; जैसे– क्लोरीन, ब्रोमीन व आयोडीन।
2. **अम्लों की बूँदें (Acid Droplets)** – H_2SO_4 तथा HNO_3 के रूप में।
3. **पदार्थ (Deposited Matter)** – अवक्षेपित या जमा हुआ धूल, धुआँ, कालिख तथा ग्रिट आदि।
4. **धातुएँ (Metals)** – जैसे– Hg, Pb, Fe, Zn, Ni, Cr तथा टिन आदि के कण।
5. **फ्लोराइड्स (Fluorides) – रासायनिक पदार्थ** (Chemical Compounds) जैसे की ऐल्डिहाइड्स (Aldehydes) फ्लोराइड्स (Fluorides) आदि।
6. **जटिल कार्बनिक पदार्थ (Complex Organic Substances)** – जैसे– बैन्जीन, ऐसीटिक अम्ल, ईथर, बेन्जीपायरीन्स आदि।
7. **कृषि रसायन (Agro-chemicals)** – उर्वरक बायोसाइड्स (Biocides), जैसे– कीटनाशी, कवकनाशी, अपतृणनाशी, जीवाणुनाशी, निमेटोडनाशी तथा शाकनाशी आदि।
8. **प्रकाश–रसायन ऑक्सीकारक (Photochemical Oxidants)** – जैसे परऑक्सीएसीटाइल नाइट्रेट (PAN), परऑक्सी बेन्जोइल नाइट्रेट ऑक्साइड्स, ऐल्डिहाइड्स, इथाइलीन, ओजोन आदि।

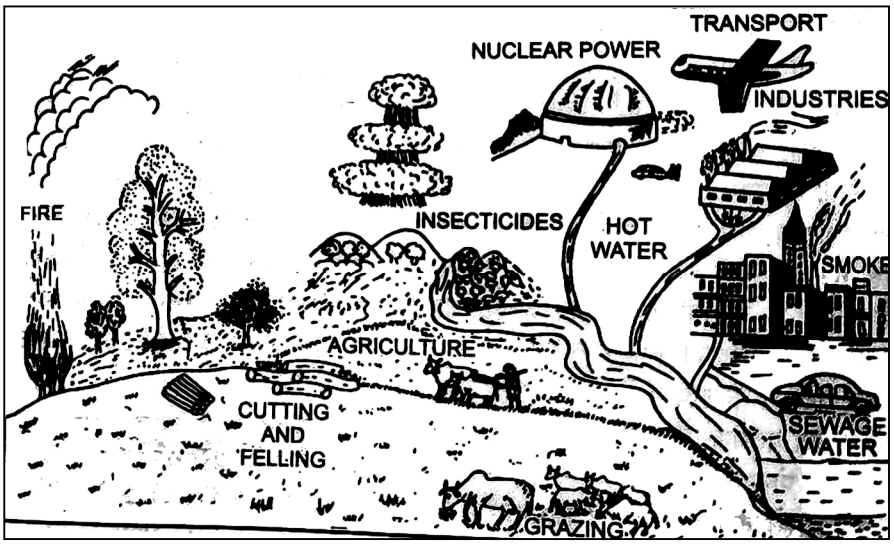

चित्र क्र. 4.4: पर्यावरण में विभिन्न क्रियाओं द्वारा प्रदूषण स्त्रोत

9. **ठोस अपमार्जक पदार्थ (Solid Wastes)** – सीवेज Sewage गंदा जल।
10. **रेडियोएक्टिव अपमार्जक पदार्थ (Radioactive Wastes)** – यूरेनियम (Uranium) आदि।
11. **शोर (Noise)** – ध्वनि (चित्र क्र. 4.4)

विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों को ओडम ने दो प्रकार की श्रेणियों में बाँटा है–

(i) अनिम्नीकारक प्रदूषक (Non-degradable Pollutants) – कुछ पदार्थ या तो अपघटित (Degrade) नहीं होते हैं या उनका निम्नीकरण (degradation) प्रकृति में बहुत धीमी गति से होता है। प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र में इनका चक्रीकरण नहीं होता है। यह न केवल एकत्रित होते हैं अपितु गमन करके जीव वैज्ञानिक रूप से भोजन में विस्तृत रूप में खाद्य श्रृंखला तथा जैव भू–रासायनिक चक्रों द्वारा फैल जाते हैं।

(ii) जैवनिम्नीकरण योग्य प्रदूषक (Biodegradable Pollutants) – ये घरेलू अपमार्जक पदार्थ होते हैं। जिनका विघटन प्रकृति में आसानी से हो जाता है। जब ये पदार्थ अधिक एकत्रित हो जाते हैं तब अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं। कम मात्रा में उपस्थित होने पर उन पदार्थों को सूक्ष्मजीवी अपघटन के द्वारा सरल पदार्थों में परिवर्तित कर देते है।

4.8.3 प्रदूषण के प्रकार (Kinds of Pollution)

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रदूषण को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा गया है –

1. वायु प्रदूषण (Air Pollution)
2. जल प्रदूषण (Water Pollution)
3. मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

4. ध्वनि प्रदूषण (Sound or Noise Pollution)
5. रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive Pollution)

टिप्पणी

4.9 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायु मण्डल एक सुरक्षात्मक आवरण की भाँति पृथ्वी के चारों ओर पाया जाता है। यह पृथ्वी का रक्षक आवरण होता है। यह सभी प्रकार की गैंसों का स्त्रोत होता है तथा रेडियोकम्यूनिकेशन (Radio Communication) के लिए एक माध्यम का कार्य करता हैं यह घातक UV विकिरणों एवं उल्का **(Meteors)** के लिए पृथ्वी के चारों ओर एक कवच का कार्य करता है। बिना वायुमण्डल के प्रकाश, वायु, बादल, बर्फ तथा अग्नि आदि नहीं पाये जाएँगे। शुद्ध वायु में समुद्र के किनारे विभिन्न गैंसे निम्न अनुपात में उपस्थित रहती हैं–

क्रमांक (S.N.)	गैंसे (Gases)	प्रतिशत (आयतन में) (Percentage by Volume)
1.	नाइट्रोजन (N_2)	78.08
2.	ऑक्सीजन (O_2)	20.94
3.	आर्गन (Ar)	0.934
4.	कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO_2)	0.0314
5.	मीथेन (CH_4)	0.0002
6.	हाइड्रोजन (H_2)	0.00005
7.	अन्य गैसें	सूक्ष्म मात्रा में

वायुमण्डल में इन गैसों का चक्रीकरण (Cycling) होता रहता है। वायुमण्डल में ऑक्सीजन (O_2) तथा कार्बन डाइऑक्साइड का सन्तुलन जीवधारी बनाए रखते हैं। अधिकतर वायु प्रदूषण कार्बन डाइऑक्साइड तथा धुएँ के कण मिल जाने से, धूल के कण तथा रोगाणुओं के मिल जाने से होता है। आधुनिक युग में बड़े–बड़े कारखाने खोले जा रहे हैं, जिनसे निकला धुआँ वायुमण्डल में मिल जाता है। मोटर, कार, ट्रेक्टर तथा स्कूटरों द्वारा बड़ी मात्रा में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) तथा कार्बन मोनो ऑक्साइड (CO) गैसें वायु मण्डल में मिलती है। इसके अतिरिक्त कारखानों में प्रयोग होने वाले पदार्थों से विषैली गैसें सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) आदि भी मिल जाती हैं। इस प्रकार प्रदूषित वायु में साँस लेने से मनुष्य के शरीर में विषैली गैसें, धुएँ तथा मिट्टी के कण एवं जीवाणु पहुँच जाते हैं जिनसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

4.9.1 वायु प्रदूषकों के स्त्रोत (Sources of Air Pollutants)

वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं –

(अ) औद्योगिक चिमनी अपविष्ट (Industrial Chimney Wastes) – वायु प्रदूषण अनेक उद्योगों जैसे पेपर एवं पल्प उद्योग, रबर, पेट्रोलियम, रासायनिक द्वारा होता है। पेट्रोलियम रिफाइनरीज वायु प्रदूषकों के प्रमुख

टिप्पणी

स्त्रोत होते है। जिनमें (SO_2) तथा (NO_2) प्रदूषित गैसे निकलती है और विनाश के लिए जिम्मेदार हैं। सीमेन्ट फेक्ट्री भारी मात्रा में धूल का उत्सर्जन करती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। इसी प्रकार पत्थर तोड़ने वाले तथा मिक्स प्लाण्ट भी इस प्रकार के प्रदूषक वायु मण्डल में छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त भोज्य पदार्थ एवं उर्वरक उद्योग भी गैसीय प्रदूषकों का उत्सर्जन करते हैं। रासायानिक पदार्थ बनाने वाले उद्योग वायु में अम्ल की वाष्प उत्सर्जित करते हैं।

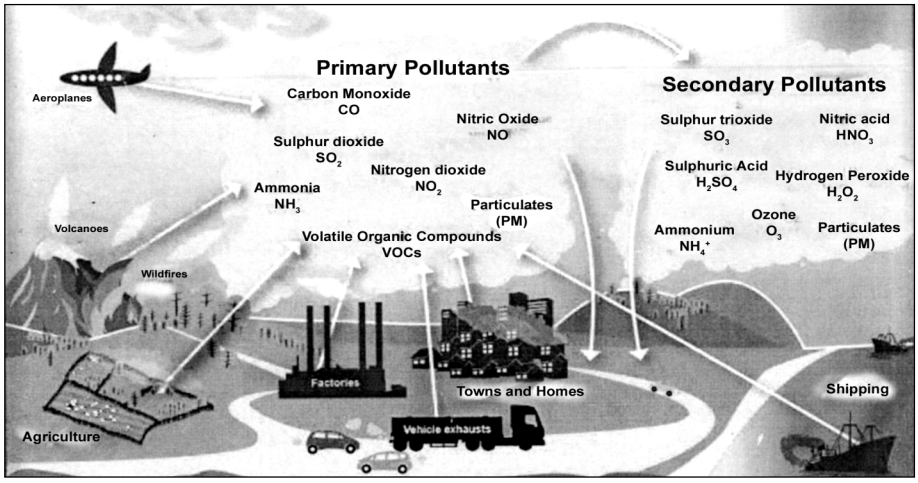

चित्र क्र. 4.5: वायु प्रदुषण के स्त्रोत

(ब) थर्मल पावर स्टेशन्स (Thermal Power Stations) – अधिक ऊर्जा उत्पादन के लिए नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन (National Thermal Power Corporation – NTPC) तथा कोयला से चलने वाले पावर स्टेशनों की स्थापना की गयी है। थर्मल प्लाण्ट्स में कई मिलियन (million) टन कोयला जलाया जाता है, जिससे उड़ने वाली राख (fly ash) SO_2, अन्य गैसें तथा हाइड्रोकार्बन्स आदि प्रदूषकों के रूप में वायु में छोड़े जाते हैं।

(स) ऑटोमोबाइल्स उद्योग (Automobiles Industry) – यह विषैले वाहक निर्वात वायु प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत होते हैं। देश के प्रमुख शहरों में प्रतिदिन लगभग हजारों टन तक प्रदूषकों का उत्सर्जन वाहनों के द्वारा वायु में किया जाता है। महानगरों (metropolitan cities) में वाहनों द्वारा 70% कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), 50% हाइड्रोकार्बन, 30-40% कुल ऑक्साइडस तथा 30% कुल SPM उत्सर्जित किए जाते हैं जो वायु प्रदूषण की समस्या को बढ़ाते है। (चित्र क्र. 4.5)

वायु प्रदूषण के विभिन्न स्त्रोतों से अनेक प्रकार के प्रदूषक वायुमण्डल में छोड़े जाते हैं। विभिन्न प्रकार के प्रमुख प्रदूषक जो अनेक क्षेत्रों से वायुमण्डल में उत्सर्जित किए जाते हैं, निम्न प्रकार हैं।

टिप्पणी

4.9.2 गैसीय वायु प्रदूषक (Gaseous Air Pollutants)

1. **कार्बन यौगिक (Carbon Compounds)** – ये मुख्य रूप से CO_2 तथा CO हैं। CO_2 जीवाश्म ईंधन के पूर्ण दहन से बनती है तथा CO स्वचालित निर्वात द्वारा बनाती है। (चित्र 4.6)

   (a) कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) – यह गैस मुख्य रूप से जीवाश्म इंधन; जैसे – कोयला, तेल आदि के जलाने से उत्सर्जित होती है तथा वायुमण्डल में मिल जाती है। हमारे देश में औसतन 50 मिलियन टन CO_2 प्रतिवर्ष थर्मल पावर प्लाण्ट्स द्वारा उत्सर्जित की जाती है। इनमें जलाए जाने वाले कोयले से 20-30% या 45% तक राख (ash) बनती है जो बहुत हानिकारक होती है। वायुमण्डल में बढ़ती हुई CO_2 की सान्द्रता जीवधारियों के लिए घातक प्रभाव डाल सकती है जिसे ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं।

   यद्यपि वायुमण्डल में CO_2 उपस्थित होती है, किन्तु इसकी अधिक सान्द्रता भयंकर प्रदूषक का कार्य कर सकती है। सामान्यतया CO_2 की सामान्य सान्द्रता होने पर सूर्य की किरणों की ऊर्जा का संतुलन पृथ्वी के तापमान को संधारण (maintain) रखता हैं तथा ग्रह (planet) को आरम्भ ऊर्ध (strike) तथा तापीय (heat) करके अन्तरिक्ष में विकरित (radiated back) हो जाता है। जब CO_2 की सान्द्रता में वृद्धि होती है, इस गैस का मोटा स्तर ताप को पुनः विकिरण (re-radiated out) होने से रोकता है। CO_2 का यह मोटा स्तर ग्रीन हाउस के शीशों अथवा किसी मोटर कार की खिड़की के दरवाजों की भाँति कार्य करता है जो सूर्य के प्रकाश को शीशों से छन–छनकर प्रवेश होने देता है तथा बाहरी वातावरण के ताप को पुनः विकिरण होने से रोकता हैं अतः इसे ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। अतः वायुमण्डल में अधिकतर ताप CO_2 के स्तर तथा जल वाष्प द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और पहले से उपस्थित ताप में मिल जाती है। अतः CO_2 स्तर के बढ़ने से वायु गर्म हो जाती है। यह क्रिया विश्वमान (global scale) पर वायुमण्डल के निम्न स्तरों में होती है। आज से 100 वर्ष पूर्व CO_2 का स्तर 275 ppm था जो वर्तमान में बढ़कर 350 ppm हो गया है। वैज्ञानिकों का मत है कि सन् 2035–2040 में CO_2 का स्तर 450 ppm तक पहुँच सकता है जिससे वायुमण्डल का तापमान 50°C तक बढ़ जायेगा CO_2 के कारण बढ़े हुए ताप के कारण जीवन के विकास की दशाएँ एवं पृथ्वी की हरियाली समाप्त हो जाएगी, बर्फ की टोपियाँ पिघल जायेंगी तथा समुद्रों में बाढ़ आ जाएगी।

   (b) कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) – इसके मुख्य स्त्रोत जैसे स्वचालित वाहन, स्टोव भट्टियाँ, खुली अग्नि, कोयले की खानों का जलना उद्योग आदि हैं जो वायु में CO का उत्सर्जन करते हैं। CO

वायुमण्डल में अधिक होने पर यह प्राणघातक होती है। मोटर–कारों, वायुयानों में अधजले पेट्रोल, डीजल के कारण CO गैस बनती है।

टिप्पणी

प्रदूषक : विभिन्न प्रकार के स्त्रोत		
प्रदुषक	**प्राकृतिक स्त्रोत**	**मानवनिर्मित स्त्रोत**
विविक्त : धुंध, धुआं, धूल	चट्टानों और मिट्टी का विघटन	कीटनाशक, तेल व तम्बाकू का धुआँ, रासायनिक प्रक्रियाएँ आदि
गंधक के ऑक्साइड SO_2, SO_3	पौधों और जानवरों का क्षय ज्वालामुखी विस्फोट	जीवाश्म इंधन का जलना, गंधक आम्ल उत्पादन धातु गलाने की प्रक्रिया, आदि
नाइट्रोजन के ऑक्साइड NO, NO_2, N_2O	बिजली चमकना सूक्ष्मजीव	स्वचालित वाहन विकास, उर्वरक उत्पादन, आदि
कार्बन के ऑक्साइड CO, CO_2	ज्वालामुखी विस्फोट श्वसन क्रिया	पेट्रोल व जीवाश्म इंधन का अधूरा दहन
हाइड्रोजन सल्फाइड H_2S	ज्वालामुखी विस्फोट	औद्योगिक प्रक्रियाओं के उपोत्पाद

चित्र क्र. 4.6: प्रदूषण के प्रकार एवं स्त्रोत

कार्बन मोनोऑक्साइड के प्रभाव (Effects of Carbon Monooxide) – यह CO गैस रंगहीन, गंधहीन एवं स्वादहीन होती है जो जानवरों एवं मनुष्यों के लिए बहुत घातक होती है। श्वसन के साथ यह CO गैस शरीर के अन्दर जाती है तथा रक्त के हीमोग्लोबिन में संयोग करती है जिसके फलस्वरूप हीमोग्लोबिन द्वारा ऑक्सीजन (O_2) अवशोषण क्षमता बहुत कम हो जाती है जिससे अनेक भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

इस गैस का सबसे बुरा प्रभाव स्वचालित वाहकों के ड्राइवर्स पर पड़ता है। CO के श्वसन द्वारा शरीर में प्रवेश होने से सिरदर्द, म्यूकस मैम्ब्रेन में उत्तेजना होने लगती है। यह गैस 1000 ppm में बहुत घातक होती है। इसके सम्पर्क में रहने से बेहोशी आने लगती है और इससे मृत्यु तक हो जाती है। कम सांद्रता अर्थात 200 ppm CO में श्वसन करने से इसका शरीर पर विषैला प्रभाव पड़ता है तथा मानसिक दशा बिगड़ जाती है एवं सेरिब्रल एनऑक्सिया (Cerebral anoxia) हो जाता है। जिसका कुप्रभाव दृष्टि पर पड़ता है। बड़े शहरों में अधिक सिगरेट पीने वाले 80% मनुष्यों की मृत्यु फैफड़ों के कैन्सर के कारण होती है। सिगरेट के धुएँ का कुप्रभाव तंत्रिका पर भी पड़ता है। इसके अतिरिक्त शरीर में अनेक विषैले पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्यों की अपेक्षा CO का स्तर पादपों को इतना

टिप्पणी

प्रभावित नहीं करता है, किन्तु CO की अधिक सांद्रता अर्थात् 100 से 10,000 ppm के कारण पादपों से पत्तियाँ झड़ने मुड़ने तथा आकार में छोटी रह जाती हैं। इसके कारण पादपों में कोशिकीय श्वसन रूक जाता है।

2. सल्फर के यौगिक (Sulphur Compounds)

थर्मल प्लाण्ट्स में कोयला जलाने, औद्योगिक इकाइयों; जैस – रिफाइनरी आदि से SO_2, H_2 तथा H_2SO_4 वायु में उत्सर्जित होते हैं।

(a) सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) – यह गैस मुख्य रूप से पेट्रोलियम तथा कोल के जलने से वायुमण्डल में आती है। वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के द्वारा 6 लाख टन गन्धक (S) प्रतिवर्ष जलाया जाता है जिससे वायुमण्डल में SO_2 की वृद्धि होती है। वायु में SO_2 स्वचालित वाहनों द्वारा भी छोड़ी जाती है। इसके अतिरिक्त उर्वरकों तथा H_2SO_4 के बनाने वाले कारखानों में भी यह गैस विसर्जित होती है। हमारे देश में SO_2 का उत्सर्जन निरन्तर बढ़ता जा रहा है जो भविष्य के लिए बहुत हानिकारक होगा।

सल्फर डाइऑक्साइड के प्रभाव (Effects of SO_2) – यह SO_2 गैस वायुमण्डल में उपस्थित जल (H_2O) से प्रक्रिया कर H_2SO_4 अम्ल बनाती है। यह अम्ल इमारतों एवं अन्य कीमती वस्तुओं को नष्ट कर देता हैं। इसके द्वारा नायलॉन, सूती, रेशमी कपड़े, कागज तथा चमड़े से बनी वस्तुएँ भी बेकार हो जाती हैं। लोहा (Iron) व जिंक (Zn) की बनी वस्तुएँ भी गलने लगती हैं।

बहुत कम मात्रा (0.032 ppm) उपस्थित होने पर भी SO_2 पेड़–पौधों का विनाश कर देती है। SO_2 तथा H_2SO_4 भी वायुमण्डल में उपस्थित जीवधारियों एवं मनुष्य के लिए बहुत अधिक हानिकारक होती है। इसके कारण आँखों व श्वसन में परेशानी होती है और अधिक मात्रा में उपस्थित होने पर मनुष्यों में हृदय तथा फेफड़े के भयंकर रोग हो जाते हैं। कम स्तर (1 ppm) पर रहने वाले मनुष्यों में ब्रोन्को रूकावट आ जाती है तथा वे दमा रोग से पीड़ित हो जाते हैं।

उच्च श्रेणी के पादपों की पत्तियों में नेक्रोटिक क्षेत्र (necrotic areas) बन जाते है। मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों की अपेक्षा पादप SO_2 के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। अधिकतर पादपों की पत्तियाँ SO_2 की अधिक सान्द्रता में मृत हो जाती हैं। क्लोरोफिल 'ए', फियोफाइटिन 'ए', में परिवर्तित हो जाता है। अतः पत्तियों का हरा रंग साफ हो जाता है।

3. हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) – सड़ी गली वनस्पतियाँ तथा जन्तु H_2S का प्रमुख सत्रोत होती हैं। यह क्रिया प्रायः जलीय आवासों में होती हैं। इसके अतिरिक्त गन्धक झरनों, ज्वालामुखी, वाहित मल सल्फर युक्त ईंधन वाली ऊसर भूमि से भी यह प्राप्त होती है।

(a) हाइड्रोजन सल्फाइड का प्रभाव (Effect of H_2S) – मनुष्यों में साँस लेने पर बहुत कम सान्द्रता की H_2S शरीर में प्रवेश करती है जिससे सिरदर्द तथा जुकाम हो जाता है। यह दुर्गन्ध वाली गैस होती है जिसके 5 ppm स्तर पर भूख (appetite) में कमी आ जाती है। अधिक सांद्रता 500 ppm पर इसका कुप्रभाव पड़ता है जिससे मनुष्यों में पेट खराब हो जाता हैं तथा ब्रोन्कल निमोनिया हो जाता है। यह गैस फेफड़ों द्वारा रक्त में प्रवेश करती है और इनके कारण मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

4. **नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (Nitrogen Oxides)** – मुख्य रूप NO, NO_2 से HNO_3 तथा प्रायः स्वचालित वाहन, पावर प्लाण्ट्स तथा रिफाइनरी द्वारा यह उत्सर्जित किए जाते हैं।

   (a) नाइट्रिक ऑक्साइड्स (Nitric Oxides) – यह गैस नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) बनाने वाले कारखानों (Factories), स्वचालित वाहनों आदि से निकलती है। इसकी अधिकतर मात्रा रासायनिक क्रियाओं के द्वारा NO_2 बनाती है, जो विषैली होती है और वायु में मिल जाती है। इस गैस की फोटो केमिकल क्रियाओं द्वारा वायुमण्डल में PAN, O_3 तथा कार्बोनायल यौगिक बनते हैं। इस गैस का स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव होता है।

   (b) नाइट्रोजन डाईऑक्साइड्स (NO_2) – वायु मण्डल में यह एक हानिकारक प्रदूषक होती है। बड़े–बड़े शहरों में इसके द्वारा फोटोकेमीकल धुन्ध बनता है।

नाइट्रोजन ऑक्साइड्स का प्रभाव (Effect of Nitrogen Oxides)

1. यह धातुओं को गलाकर नाइट्रेट के कण (nitrate particles) वायुमण्डल में मिलाते हैं।
2. खेती में NO_3 पौधों की वृद्धि कम कर देती है तथा उनको क्षति पहुँचाती है।
3. NO_2 की मात्रा वायुमण्डल में होने पर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
4. धूम्रपान करने वाले मनुष्यों में NO_2 के द्वारा विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं और अन्त में मृत्यु तक हो जाती है।

4.9.3 अम्ल वर्षा (Acid Rains)

नाइट्रोजन तथा सल्फर के ऑक्साइड्स वायु के लिए महत्वपूर्ण गैसीय प्रदूषक होते हैं। यह ऑक्साइड्स जीवाश्म ईंधन, पावर प्लाण्ट्स, स्वचालित वाहनों के निर्वात, घरों में जलाए जाने वाले ईंधन से उत्पन्न होते हैं। वायुमण्डल में प्रमुख रूप से H_2SO_4 तथा HNO_3 अम्ल बनते हैं जो वर्षा के जल में घुलकर पृथ्वी पर आते हैं जिसे अम्ल वर्षा कहते हैं। कभी–कभी ये अम्ल बादलों या कोहरे में भी

विद्यमान रहते हैं। अम्ल वर्षा पादपों, फसलों, जीव–जन्तुओं तथा कीमती इमारतों के लिए बहुत हानिकारक होती है।

टिप्पणी

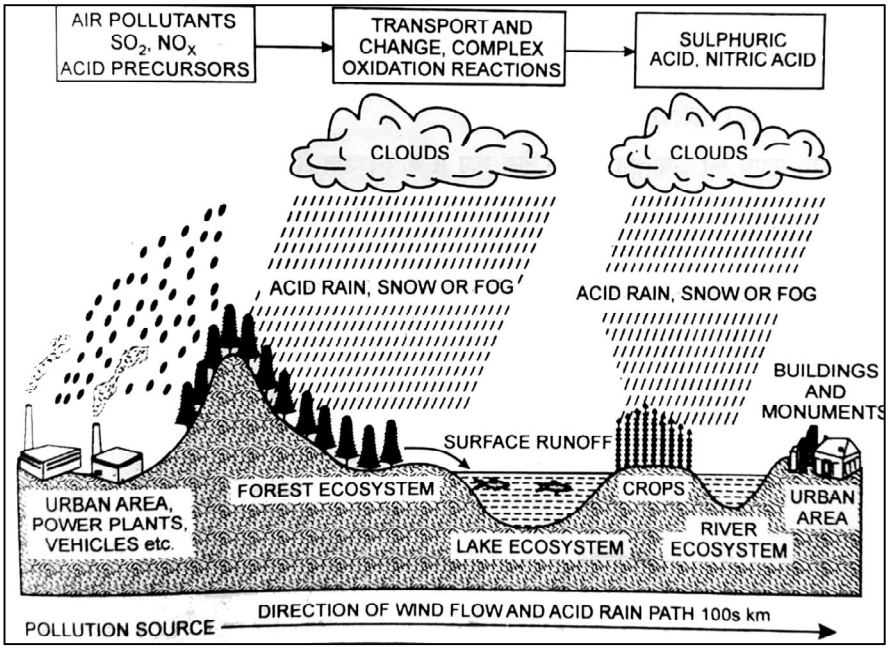

चित्र क्र. 4.7: अम्ल वर्षा तथा उससे प्रभावित विभिन्न क्षेत्र

अम्ल वर्षा H_2SO_4 तथा HNO_3 का मिश्रण होती है जिसमें सल्फर तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स विभिन्न अनुपात में होते हैं। H_2SO_4 के कारण 60-70% तथा HNO_3 के कारण 30-40% अम्लीयता होती है। अम्ल वर्षा द्वारा अनेक पारिस्थितिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि S तथा N के ऑक्साइड्स वायुमण्डल की बहुत दूरी तय करते हुए पृथ्वी पर पहुँचते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें अनेक भौतिक व रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं, जो अत्यंत हानिकारक पदार्थों का निर्माण करते हैं। अम्ल वर्षा के द्वारा मृदा अम्लीयता बढ़ जाती है जिससे वनस्पतिजात (Flora) तथा प्राणिजात (Fauna) प्रभावित होते हैं। अम्ल वर्षा का जल पादपों की पत्तियों को हानि पहुँचाता है जिससे प्रकाश–संश्लेषण दर कम हो जाती है। नदियों, तालाबों तथा झीलों में पहुँचकर यह जल जलीय जीवन, फसल उत्पादकता तथा मानव स्वास्थ्य को बहुत अधिक हानि पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त अम्ल जल बहुमूल्य इमारतों, स्मारकों, रेलिंग तथा पुलों इत्यादि को अपक्षयित कर देता है। विभिन्न धातुओं, जैसे– Al, Mn, Zn, Cd तथा Cu जैसी भारी धातुओं का स्तर पानी में अम्लीयता के कारण बहुत बढ़ गया है। मछलियों के अतिरिक्त अन्य जलीय जीवों की मृत्यु से जल प्रदूषण व वायु प्रदूषण में वृद्धि हुई है। अम्लीकरण के कारण अनेक जीवाणु एवं नील–हरित शैवालों की मृत्यु हो जाती है जिससे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाता है। अम्ल वर्षा के कारण वनों को भी हानि पहुँचती है। हमारे देश के वातावरण में विभिन्न प्रकार के ऑक्साइड्स मनुष्य के क्रिया–कलापों द्वारा वृद्धि कर रहे हैं और जिसके दुष्परिणाम भविष्य में भुगतने पड़ेंगे। (चित्र क्र. 4.7, 4.8)

फ्लूरोकार्बन्स (Fluorocarbons)

बहुत कम मात्रा में यह मनुष्य के दाँतों को सड़ने से बचाता है। सबसे अधिक घातक फ्रिऑन (Freon) होता है जिसे रेफ्रीजरेटरों, एयर कण्डीशनरों, फोम तथा ऐरोसॉल के छिड़काव के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

टिप्पणी

हाइड्रोकार्बन (Hydrocarbons)

भारत में दो तथा तीन पहिए वाले वाहन वायुमण्डल में सबसे अधिक हाइड्रोकार्बन्स उत्सर्जित करते हैं। इसमें 40% हाइड्रोकार्बन्स अधजले डीजल या पेट्रोल के कारण उत्पन्न होते हैं। यह फेफड़ों पर प्राणघातक प्रभाव डालते हैं।

धातुएँ (Metals)

अधिकतर धातुएँ, जैसे – Hg, Pb, Zn तथा Cd कणों के रूप में वायु में उपस्थित होती है। इनका उत्सर्जन उद्योगों तथा मनुष्य के क्रिया–कलापों द्वारा होता है। धातुओं के कण श्वसन के साथ शरीर में पहुँचते है जो तन्त्रिका तन्त्र, नेत्रों तथा यकृत को नष्ट कर डालते हैं जिससे सिरदर्द होने लगता है तथा भूख समाप्त हो जाती है।

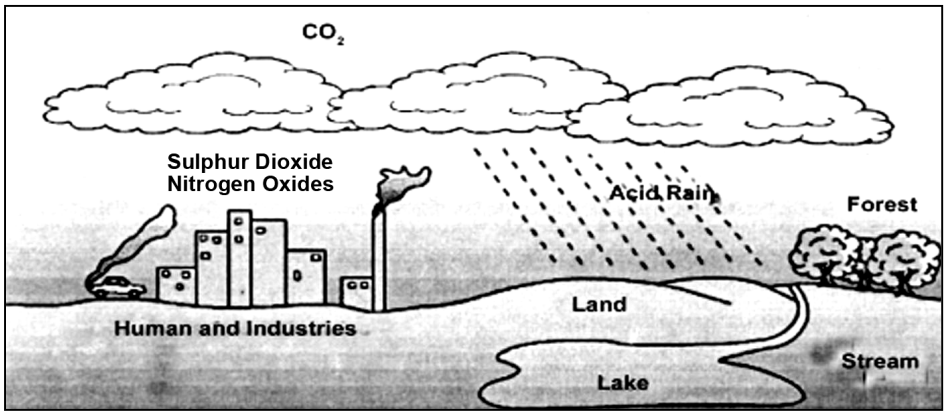

चित्र क्र. 4.8: अम्ल वर्षा

4.9.4 फोटोकेमिकल उत्पाद (Photochemical Products)

यह प्रकाश की उपस्थिति में वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन ऑक्साइड्स, हाइड्रोकार्बन्स तथा O_3 से प्रक्रिया कर बनते हैं जो वायु में अधिक विषैले द्वितीयक प्रदूषकों के रूप में पाए जाते हैं।

यह विभिन्न प्रकार के फेफड़ों के रोग, जैसे दमा, ब्रोन्काइटिस तथा एम्फीसीमा (emphysema) आदि को उत्पन्न करता है। (चित्र क्र. 4.9)

4.9.5 विविक्त (कणिकीय) पदार्थ (Particulate Matter)

किसी पदार्थ का अपविष्ट द्रव या ठोस रूप में वायुमण्डल में सूक्ष्म कणों के रूप में रह सकता है। इसके प्राकृतिक स्त्रोत मृदा, धूल, ज्वालामुखी द्वारा उत्सर्जन, समुद्री

छिड़काव, दावानल तथा प्राकृतिक गैसों की क्रियाएँ हो सकती हैं। ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

टिप्पणी

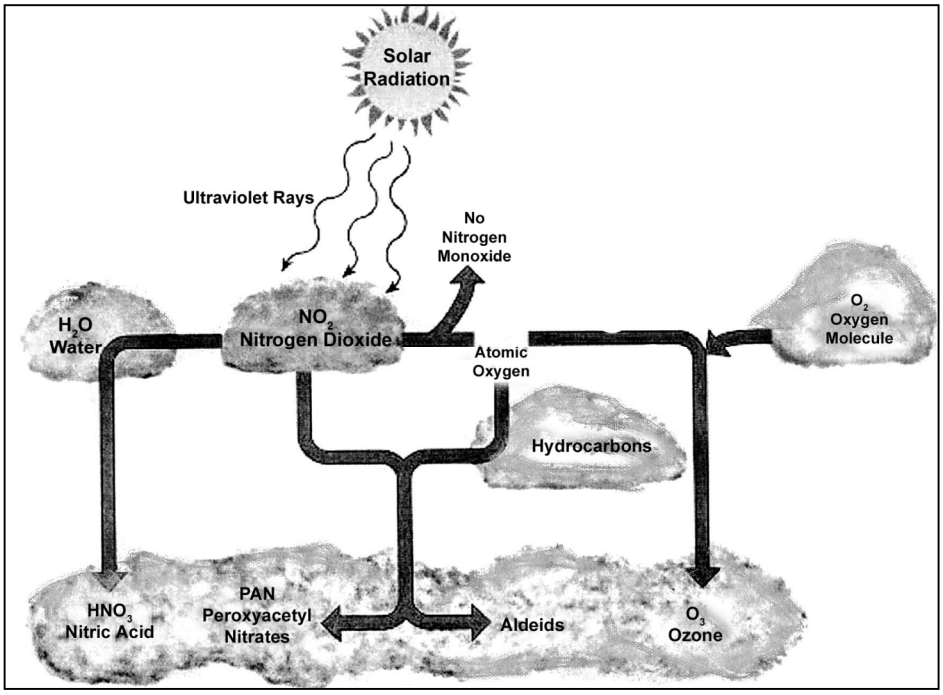

चित्र क्र. 4.9: फोटोकेमिकल धुन्ध निर्माण की रासायनिक क्रियाएँ

4.9.6 टॉक्सीकेन्ट्स (Toxicants)

वायु प्रदूषकों के अतिरिक्त अन्य विषैले पदार्थ; जैसे आर्सेनिक, एस्बेस्ट्स, कार्बन टेट्राक्लोराइड्स, क्लोरोफॉर्म तथा फ्लूरोकार्बन्स आदि वायु मण्डल में पाए जाते हैं। यह पदार्थ शरीर में पहुँचकर एन्जाइम्स द्वारा उपापचयी क्रियाओं में भाग लेते हैं जिससे कैन्सर उत्पन्न करने वाले पदार्थ बनते हैं।

वायु प्रदूषण नियन्त्रण की विधियाँ (Methods of Air Pollution Control)

वायु प्रदूषण की रोकथाम निम्नलिखित विधियों द्वारा की जा सकती है–

1. चिमनियों में धुएँ के कणों को इकट्ठा करने के लिए फिल्टरों का प्रयोग करना चाहिए।
2. मोटर–कारों और स्कूटरों से अधजला धुआँ नहीं निकलने देना चाहिए।
3. अधिक कूड़ा–करकट नहीं जलाना चाहिए।
4. अधिक पेड़–पौधों को उगाना चाहिए।
5. विषैले प्रदूषकों आदि कीटनाशी यौगिकों के कणों को वायुमण्डल में नहीं मिलने देना चाहिए।
6. नगरवासियों को वायु प्रदूषण का ज्ञान कराना चाहिए।
7. सरकार को वायु प्रदूषण सम्बन्धी नियम बनाने चाहिए, जिनका उल्लंघन करने वालों को दण्ड दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी

4.10 जल प्रदूषण (Water Pollution)

प्रत्येक जीवधारियों के लिए जल अत्यंत आवश्यक होता है। प्रकृति में अनेक स्रोतों से जल प्राप्त किया जाता है, जैसे कि पीने का पानी, कुओं, तालाबों, झरनों तथा नदियों से प्राप्त किया जाता है। मनुष्य ने सागर, झीलों तथा नदियों के पानी में अनेक प्रकार की गंदगियाँ मिला दी हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप पानी में मिलाये जाने वाली गंदगियों को रोकना मुश्किल हो रहा है जिसके कारण जल प्रदूषित हो रहा है। प्रदूषित जल का उपयोग करने पर विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती है।

रासायनिक दृष्टि से जल में अनेक प्रकार के तत्व घुली अवस्था में पाये जाते हैं, जैसे – घुलित गैसें (H_2S, CO_2, NH_3, N_2) घुलित खनिज, (Ca, Mg तथा Na लवण) क्ले, सिल्ट तथा बालू के निलम्बित कण तथा सूक्ष्म जीव आदि। यह प्राकृतिक अशुद्धियाँ जल में वायुमण्डल, मृदा तथा विभिन्न क्षेत्रों से आती हैं जो बहुत कम मात्रा में उपस्थित होती हैं तथा जल प्रदूषण न के बराबर करती हैं। प्रदूषित जल धुँधला (turbid) बदबूदार तथा अरूचिकर होता है। अतः इसका प्रयोग पीने, नहाने तथा कपड़ा धोने आदि में नहीं किया जाता है। शुद्ध जल में हाड्रोजन (H_2) के दो अणु तथा ऑक्सीजन (O_2) का एक अणु उपस्थित रहता है। जल में भौतिक, रासायनिक प्रकार्यात्मक एवं जैविक प्रकार का प्रदूषण पाया जाता है।

4.10.1 जल प्रदूषण के स्रोत (Sources of Water Pollution)

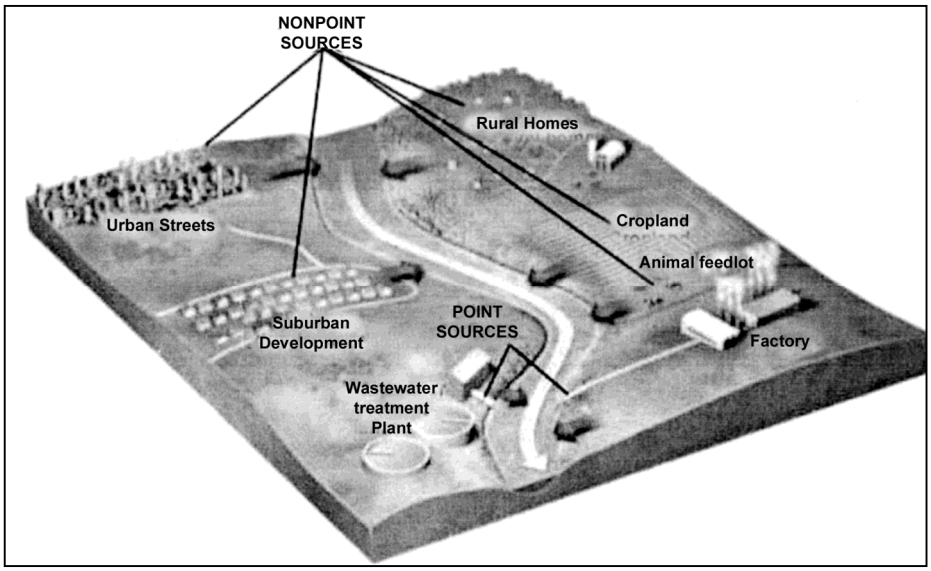

चित्र क्र. 4.10: जलप्रदूषण के स्त्रोत

जल प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत निम्न प्रकार हैं–

1. औद्योगिक बहिः स्त्रावी पदार्थ (Industrial effluents)
2. कृषि विसर्जित पदार्थ (Agricultural discharges)

टिप्पणी

3. वाहित मल एवं अन्य अपशिष्ट पदार्थ (Sewage and other wastes)
4. (a) रासायनिक उद्योगों, (b) थर्मल पावर प्लाण्ट्स तथा (c) नाभिकीय प्लाण्ट्स के अवशिष्ट पदार्थ ((a) chemical industries, (b) thermal power plants and (c) nuclear power plants) (चित्र 4.10)

उपर्युक्त स्त्रोतों से जल प्रदूषण होता है। प्रत्येक स्रोत द्वारा प्रदूषकों (Pollutants) का प्रवेश जल में होता है। प्रदूषण एवं विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों का वर्णन निम्न प्रकार है –

1. **औद्योगिक बहिः स्त्रावी पदार्थ (Industrial Effluents)** – कारखानों एवं अन्य औद्योगिक क्षेत्रों जैसे टेनरीज, कपड़ा, रंगाई कागज तथा पल्प बनने वाली मिलों तथा स्टील उद्योग के बहिःस्त्रावी पदार्थों मे कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों प्रकार के प्रदूषक उपस्थित होते हैं। इनमें मुख्य प्रदूषक तेल, ग्रीस, प्लास्टिक, प्लास्टीसाइजर्स, धात्विक अवशिष्ट तथा निलम्बित ठोस, फीनोल, टॉक्सिन्स, अम्ल, लवण, रंग, सायनाइड तथा DDT आदि होते हैं। इनमें से कुछ प्रदूषक अपघटित नहीं होते हैं, जिससे प्रदूषण की समस्या आ जाती है। उद्योगों से भारी धातुओं, जैसे – Cu, Zn, Hg, Pb व Na आदि के बहिःस्त्रावी पदार्थ पानी में छोड़ दिए जाते हैं और यह मनुष्य की तंत्रिका तन्त्र (Nervous system) पर प्रभाव करते हैं।

   नदियों मे छोड़े जाने वाले विषैले पदार्थ, अम्ल, क्षार, फ्लूराइड्स, स्वतंत्र अमोनियायुक्त नाइट्रोजन, रेडियोन्यूक्लाइड्स (radionucleoides), कीटनाशी, रंग, पारा (Hg), क्रोमियम तथा सीसा (Pb) होते हैं जिससे नदी के पानी में BOD का स्तर बहुत अधिक हो जाता है।

2. **कृषि विसर्जित पदार्थ (Agricultural Discharges)** – यह प्रमुख रासायनिक पदार्थ होते हैं जिन्हें उवर्रक तथा कीटनाशी आदि के निर्माण के लिए प्रयोग में लाया जाता है। भारत में इस प्रकार का विसर्जन (discharge) विश्व की अपेक्षा में कम है, किन्तु खेती उत्पाद बढ़ाने के लिए इनमें वृद्धि होने से प्रदूषण की सम्भावना बनी रहती है।

   कार्बनिक पदार्थ एवं कीटनाशी (Organic Matter and Pesticides) – इसके अंतर्गत कीटनाशी (pesticides) अथवा अन्य कार्बनिक अपघटित पदार्थ आते हैं।

   फसलों को कीटों एवं कवकों से सुरक्षित रखने के लिए कीटनाशी कार्बनिक यौगिकों का प्रयोग किया जाता है, जैसे – D.D.T., डाइएल्ड्रिन (Dielderin), BHC, PCBS तथा बेन्जीन यौगिक। इनके अत्यधिक प्रयोग करने से अनेक लाभदायक जीवधारी भी नष्ट होने लगते हैं और पारिस्थितिक तन्त्र असन्तुलित होने लगता है। मनुष्य के शरीर में पहुँचकर तंत्रिका तन्त्र एवं जनन ग्रंथियों को प्रभावित करते हैं। मिट्टी में मिलकर ये कीटनाशी लाभदायक जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं। जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है। कीटनाशी पदार्थ पौधे के अंगों,

जैसे–पत्तियों, तनों तथा फलों द्वारा मनुष्यों तथा जन्तुओं के शरीर में भोजन द्वारा पहुँच जाते हैं और अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

टिप्पणी

3. **वाहित मल एवं अन्य अपविष्ट पदार्थ (Sewage and Other Wastes)** – वाहित मल में अधिकतर विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थ, घरेलू अपविष्ट, जन्तु अपशिष्ट, मनुष्य का मल, कागज, कपड़ा, साबुन तथा अन्य डिटर्जेन्ट्स होते हैं जो उपस्थित जीवाणुओं तथा अन्य सूक्ष्मजीवों (micro-organism) द्वारा ऑक्सीकृत (oxidised) होकर डाइऑक्साइड (CO_2) तथा पानी (H_2O) मे बदल दिये जाते हैं। घरों व कारखानों से निकले हुए त्याज्य पदार्थ, मल–मूत्र, विषैली दवाएँ, वार्निश, तेल, साबुन तथा रसोईघरों के पदार्थ नालियों के पानी के साथ मिलकर वाहित मल (sewage) बनाते हैं। इन पदार्थों का विघटन नदियों के जल में होता है जिससे अमोनियम साइनाइड लवण **(NH_4CN)** क्लोरीन, क्रोमेट्स तथा अन्य विषैले पदार्थ बनते हैं। इन पदार्थों का कुप्रभाव जल के पारिस्थितिक तन्त्र पर पड़ता है। जिससे जल में उपस्थित अनेक जीवधारी मर जाते हैं तथा अनेक रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु व विषाणु प्रकट हो जाते हैं, साथ में जल की ऑक्सीजन की मात्रा घटने लगती है। ऑक्सीजन की कमी के फलस्वरूप नदियों में उपस्थित जलीय पौधे और मछलियों की मृत्यु होने लगती है और जल से दुर्गन्ध आने लगती है। वाहित मल तथा अन्य अपशिष्ट पदार्थों का वायवीय अपघटन होता है, अतः इनके एकत्रित होने से जैवीय ऑक्सीजन माँग **(Biological Oxygen Demand)** बढ़ जाती है। जल के इकाई आयतन में सूक्ष्मजीवों द्वारा जैवीय ऑक्सीकरण के लिए जितनी ऑक्सीजन की मात्रा की आवश्यकता होती है, वह BOD कहलाती है। BOD मान जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के समानुपाती होता है।

अतः अतिरिक्त वाहित मल अथवा अपशिष्ट पदार्थ को जल में मिला देने से ऑक्सीजन (O_2) स्तर कम हो जाता है, जिसे जल का BOD मान कहते हैं। जल में एस्चरीचिया कोलाई *(E.coli)* नामक जीवाणु बहुत अधिक तीव्रता के साथ वृद्धि करता हैं, जो अधिक मात्रा में ऑक्सीजन अवशोषित करता है। एक इकाई आयतन जल में उपस्थित इन जीवाणुओं की संख्या जल प्रदूषण की गणना करती है। अतः BOD जल प्रदूषण नियंत्रण में सहायक होती है। जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा तथा BOD जल में उपस्थित जीवधारियों के प्रकार को प्रदर्शित करते हैं। (चित्र क्र. 4.11)

4. **रासायनिक उद्योग (Chemical Industries) थर्मल पावर प्लाण्टस (Thermal Power Plants) तथा नाभिकीय पावर प्लाण्ट्स (Nuclear Power Plants) के अवशिष्ट पदार्थ (Wastes)** – थर्मल तथा न्यूक्लियर पॉवर स्टेशन्स में पानी का प्रयोग इन संयंत्रों में यंत्रों को ठण्डा करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में होता है। प्रयोग होने के पश्चात् बहुत अधिक तापमान का जल पुनः नदियों या झीलों में डाला जाता है। जिससे जलीय जीवों का जीवन प्रभावित हो जाता है। अतः इसे थर्मल प्रदूषण **(thermal**

टिप्पणी

pollution) कहते हैं। इसी प्रकार न्यूक्लियर पावर स्टेशन्स द्वारा बहुत अधिक ताप का उत्सर्जन होता है, जिसके निम्नलिखित कुप्रभाव होते हैं–

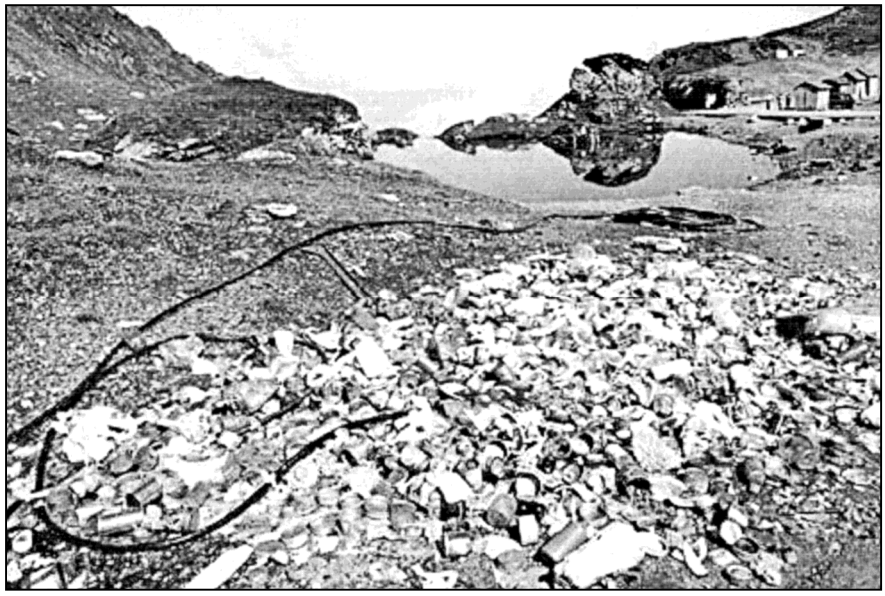

चित्र क्र. 4.11: अवशिष्ट पदार्थ

1. BOD में वृद्धि होने लगती है।
2. शैवालों के स्थान पर अधिक तापमान पर उगने वाले पौधे स्थान ले लेते हैं और कई पादपों की जातियाँ कम हो जाती हैं।
3. कुछ जीवधारियों का प्रवास (migration) हो जाता है।
4. जल के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में परिवर्तन आता है।
5. जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आती है।
6. मछलियाँ जल्दी अण्डे देने लगती हैं।

4.10.2 जल प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Water Pollution)

1. जल से मनुष्य में विभिन्न रोग उत्पन्न होते है
2. जल के जीवों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और O_2 गैस की कमी के कारण वह मर जाते हैं।

4.10.3 जल प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Water Pollution)

जल प्रदूषण की रोकथाम निम्नलिखित विधियों द्वारा की जाती है–

1. सीवेज का पानी सीधे नदियों में नहीं मिलाना चाहिए।
2. कारखानों से निकले बेकार तेल, धातुयुक्त पदार्थों को जल में सीधे नहीं मिलाना चाहिए।
3. घरों का कूड़ा–करकट शहर से दूर ले जाकर गड्ढों में दबा देना चाहिए।

4. ऐसे जलाशय जिनका पानी पीने के लिए प्रयोग होता है, उनके पास कपड़े नहीं धोने चाहिए तथा पशुओं को पानी नहीं पीने देना चाहिए।
5. खतरनाक कीटनाशक दवाओं का खेतों में कम से कम प्रयोग करना चाहिए एवं यह पानी नदियों में नहीं बहने देना चाहिए।

टिप्पणी

4.11 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मनुष्य खेती से अधिक पैदावार के लिए खेतों में अनेक कीटनाशी (insecticides), कवकनाशी (fungicides), आदि रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करता है। ये पदार्थ खेत की मिट्टी में मिल जाते हैं और इनका अधिक मात्रा में उपयोग करने से खेत की उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है तथा अनेक लाभदायक जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं जिसे मृदा प्रदूषण कहते हैं। बहुत से हानिकारक जीवाणु पदार्थ पौधों के माध्यम से हमारे शरीर में पहुँचते हैं, जिनके कारण अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

4.11.1 मृदा प्रदूषण के स्रोत (Sources of Soil Pollution)

1. कृषि क्रियाएँ (Agricultural Practices)
2. नगरों एवं कारखानों का अपशिष्ट (Urban and Industrial Wastes)
3. खनन परिचालन (Mining Operations)
4. अन्य स्रोत (Other Sources)

1. **कृषि क्रियाएँ (Agricultural Practices)** – जनसंख्या के अत्यधिक बढ़ने के कारण कृषि पर बहुत असर पड़ा है। जिसके चलते रसायन उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, कवकनाशी दवाओं, कृषि यंत्रों एवं मृदा अनुकूलनों का प्रयोग बिना सोचे–समझे किया जा रहा है, जिससे मृदा प्रदूषित होती चली जा रही है। इन उदाहरणों को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं –
   - **(i) उर्वरक प्रयोग (Fertilizers Applications)** – कृषि में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक उर्वरक अशुद्धियों को मृदा में विलीन कर देते हैं, जिससे मृदा एवं मृदा जल प्रदूषित हो जाता है।
   - **(ii) कीटनाशक (Pesticides)** – फसलों को कीटों से बचाने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। इसमें D.D.T., B.H.C., एल्ड्रिन पैराथियॉन तथा ऑर्गेनोफास्फेट प्रमुख हैं। इनका असर कई वर्षों तक मृदा में रहता है। जिससे मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों, पौधों तथा मनुष्यों का जीवन अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। ये तत्व मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों को प्रभावित करते हैं।
2. **नगरों एवं कारखानों का अपशिष्ट (Urban and Industrial Wastes)** – नगरों एवं कारखानों से निकला कूड़ा–करकट, प्रदूषित मल एवं अपशिष्ट पदार्थ मिट्टी के साथ मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं। इसमें प्रमुख रूप

टिप्पणी

से लवण, लोहा, पारा, ताँबा, ऐल्युमीनियम, प्लास्टिक, पॉलीथिन, कागज, कपड़ा एवं विषैले रसायन आदि होते हैं। मृदा में इनके मिलने से मृदा की गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ता है। इससे बचने के लिए निश्चित उपाय होना अत्यन्त आवश्यक है।

3. **खनन परिचालन (Mining Operations)** – मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भूमि से अनेक पदार्थों का खनन किया जाता है। जिससे भूमि की उपजाऊ परत नष्ट हो जाती है।
4. **अन्य स्त्रोत (Other Sources)** – अन्य स्त्रोत, जैसे–प्रदूषित जल में सिंचाई, रेडियोधर्मी पदार्थ, अम्लीय वर्षा, नाभिकीय विस्फोट आदि के द्वारा भी मृदा की गुणवत्ता दिन–प्रतिदिन नष्ट हो रही है।

4.11.2 मृदा प्रदूषण का प्रभाव (Effect of Soil Pollution)

पौधों एवं मनुष्यों के स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे रोग उत्पन्न होते हैं और मृदा नष्ट हो जाती है।

4.11.3 मृदा प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण की रोकथाम निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है –

1. कीटनाशी एवं कवकनाशी दवाओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
2. खुले स्थानों पर मल–मूत्र करने पर रोक लगनी चाहिए।
3. बेकार वस्तुओं का पुनर्चक्रीकरण (Recycling) कराना चाहिए।
4. नगरों एवं कारखानों के अपशिष्ट को निश्चित स्थानों पर एकत्रित करके वैज्ञानिक तरीके से उसका निस्तारण होना चाहिए।
5. रसायन उर्वरकों के स्थान पर कम्पोस्ट खादों का प्रयोग करना चाहिए।
6. प्रदूषित जल को भूमि पर नहीं बहने दिया जाना चाहिए। इसके भण्डारण की व्यवस्था औद्योगिक क्षेत्रों में की जानी चाहिए।

4.12 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

अनावश्यक तीव्र ध्वनि शोर कहलाती है। शहरों में मोटर–गाड़ियों, स्कूटरों, लाउडस्पीकरों, ट्रेक्टरों तथा कारखानों की मशीनों द्वारा रात–दिन शोर होता रहता है, जिसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। जिसके कारण सिरदर्द, थकान, निद्रा, रक्तचाप, हृदय रोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं तथा मस्तिष्क की सोचने–समझने की क्षमता क्षीण होने लगती है।

टिप्पणी

4.12.1 ध्वनि प्रदूषण के स्रोत (Sources of Noise Pollution)

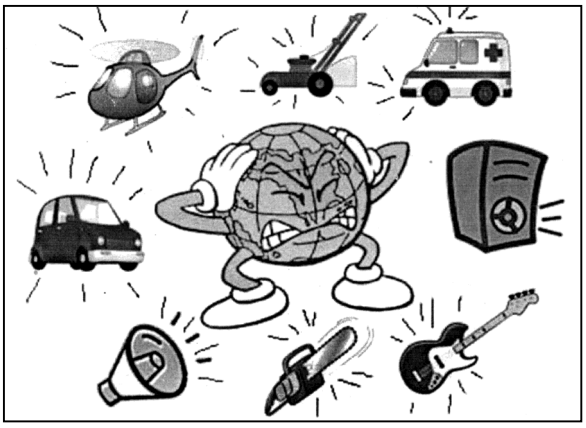

चित्र क्र. 4.12: ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोत

1. स्कूटर, मोटरों, ट्रेक्टरों तथा कृषि यन्त्रों के चलने से तथा विभिन्न प्रकार के हॉर्न बजाने, लाउडस्पीकरों आदि में बहुत अधिक ध्वनि उत्पन्न होती है।
2. हेलीकाप्टर तथा हवाई जहाजों के उड़ते समय बहुत अधिक ध्वनि उत्पन्न होती है, जिससे जन–जीवन को हानि होती है।
3. स्वचालित कारखानों जैसे–कपड़ा, इस्पात तथा स्कूटर, मोटर–कार बनाने वाली फैक्ट्रियों तथा मिलों में शोर होता है।
4. आवाज करने वाले पटाखों, बन्दूकों के चलने से भी बहुत अधिक आवाज होती है। (चित्र क्र. 4.12)

4.12.2 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Noise Pollution)

1. अधिक जोर की ध्वनि को निरन्तर सुनने से कान का परदा फट जाता है और मनुष्य बहरा हो जाता है।
2. ध्वनि का कुप्रभाव हृदय की धड़कन पर पड़ता है जिससे रक्त चाप तथा हृदय रोग हो जाते हैं।
3. निरन्तर ध्वनि के कारण नींद में बाधा पड़ती है। अतः सिरदर्द एवं थकान बढ़ जाती है।
4. ध्वनि का कुप्रभाव यकृत तथा मस्तिष्क पर भी पड़ता है।
5. तीव्र शोर से तन्त्रिका तन्त्र एवं पाचन तन्त्र प्रभावित होकर कमजोर होता है।

4.12.3 ध्वनि प्रदूषण का नियन्त्रण (Control of Noise Pollution)

1. अधिक ध्वनि न करने वाली मशीनों को प्रयोग में लाना चाहिए।
2. कमरों को ध्वनिरोधी (Noise-proof) करके मशीनों को लगाना चाहिए।

टिप्पणी

3. ध्वनि उत्पन्न होने वाले कारखानों में कार्यरत् कर्मचारियों को कानों (ears) में रुई (cotton) लगाना चाहिए।
4. तेज आवाज के हार्न बजाने पर कानूनी प्रतिबंध होना चाहिए।
5. सड़कों के किनारे ध्वनि शोषण हेतु वृक्षारोपण करना चाहिए।
6. लाउडस्पीकरों को ऊँची आवाज में नहीं बजाना चाहिए।
7. ध्वनि उत्पन्न करने वाले कारखानों को निवास–स्थानों से काफी दूर लगाना चाहिए।

4.13 रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive Pollution)

आधुनिक युग में अनेक प्रकार के परमाणु बमों के विस्फोट पर प्रयोग किये जा रहे हैं। जिनके कारण रेडियोधर्मी पदार्थों के अणुओं के केन्द्रक (nucleus) विघटित होकर गामा किरणें (γ-rays), एल्फा किरणें (α-rays) तथा एक्स किरणें (x-rays) उत्पन्न करते हैं। इन किरणों के प्रभाव से भयंकर रोगः जैसे–कैन्सर आदि उत्पन्न हो सकते हैं।

4.13.1 रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत (Sources of Radioactive Pollution)

परमाणु भट्टियों में उपयोग किये जाने वाले पदार्थों से प्राप्त विकिरण प्रदूषण पैदा करते हैं।

प्राकृतिक रूप में **स्ट्रान्शियम–90** (Strontium-90) तथा **सीजियम–137** (Cesium-137) के रेडियोधर्मी कण वर्षा के जल के साथ पृथ्वी पर आते हैं जिनका अवशोषण पौधे कर लेते हैं। पौधे मनुष्य का भोजन होते हैं और मनुष्य के शरीर में पहुँचकर अनेक प्रकार के भयंकर रोग उत्पन्न करते हैं। अतः रेडियोधर्मी कणों से प्रदूषण होता है।

4.13.2 रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Radioactive Pollution)

1. **कैंसर एवं ल्यूकीमिया (Cancer and Leukemia)** – थॉयराइड एवं कैंसर के लिए उत्तरदायी हैं। इसी तरह (Strontium-90) द्वारा भी बोन कैंसर तथा ल्यूकीमिया की बीमारी हो जाती है।
2. **जीन्स में परिवर्तन (Changes in Genes)** – फालआउट के कारण होने वाले विकिरण मनुष्य व अन्य जन्तुओं जीन्स में परिवर्तन ला देते हैं और इसी कारण संतान अपंग या विकृत भी हो सकती है।
3. **तंत्रिका तन्त्र में विकार (Defect in Nervous System)** – रेडियोएक्टिव प्रदूषण के द्वारा केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र प्रभावित होता है और संवेदी तन्त्रिकाओं में विकार पैदा हो जाता है। इससे मनुष्य में रोगों से बचने की क्षमता कम हो जाती है।

4.13.3 रेडियोधर्मी प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Radioactive Pollution)

टिप्पणी

रेडियोधर्मी प्रदूषण का नियन्त्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

1. रेडियोधर्मी प्रयोगशालाओं एवं शोध केन्द्रों की स्थापना जन–जीवन विहीन स्थानों पर की जानी चाहिए।
2. परमाणु ईंधन का प्रयोग सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिए।
3. दुर्घटना से बचाव के तरीके जनमानस को सिखाने चाहिए।
4. रेडियोधर्मी तत्वों के प्रयोग पर रोक लगानी चाहिए।
5. युद्ध स्तर पर भी रेडियोधर्मी तत्वों का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए।

4.14 विकिरण प्रदूषण (Radiation Pollution)

4.14.1 विकिरण प्रदूषण के स्रोत (Sources of Radiation Pollution)

रेडियोएक्टिविटी (Radioactivity) में आण्विक विखण्डन द्वारा α, β, γ कण निकलते हैं। मानव सूर्य तथा स्थल के विकिरण में रहते हैं। स्थल में रेडियम 224, यूरेनियम 238, पोटैशियम 40 तथा कार्बन 14 उपस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य विभिन्न प्रकार के विकिरण (Radiation) उत्पन्न करता है। जिनमें प्लूटोनियम एवं थोरियम का शुद्धिकरण, नाभिकीय प्रयोग एवं उत्पादन, नाभिकीय ईंधन (Nuclear fuel) तथा रेडियोधर्मी आइसोटोप्स का निर्माण बहुत हानिकारक होता है।

अमेरिका द्वारा जापान के दो नगरों हिरोशिमा तथा नागासाकी में सन् 1945 में बमबारी हुई थी जिसके फलस्वरूप अधिकांश जीव नष्ट हो गए तथा इस विकिरण प्रदूषण के कारण आज भी बच्चों में अनेक लक्षण देखने को मिलते हैं।

रेडियोएक्टिव पदार्थ नाभिकीय विघटन के फलस्वरूप गैसों तथा सूक्ष्म कणों में बदल जाते हैं जो वायुमंडल में विलीन हो जाते हैं। जब वर्षा होती है तब यह कण वायुमण्डल से पानी के साथ भूमि पर आते हैं जिन्हें पादपों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। पादपों को मनुष्य भोजन के रूप में प्रयोग करता है और यह कण मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार रेडियोएक्टिव अवशिष्ट पदार्थ जल के साथ बहकर नदियों में पहुँचते हैं और भोजन के साथ मनुष्य के शरीर में आ जाते हैं।

टिप्पणी

4.14.2 विकिरण प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Radiation Pollution)

(अ) विकिरण मनुष्य के अंगों को प्रभावित करता है जिससे कार्यक्षमता घट जाती है।

(ब) शरीर में अधिक समय तक विकिरण होने पर कैंसर जैसे रोग हो सकते हैं तथा जीन्स में परिवर्तन आ जाते हैं।

(स) अन्त में बहुत अधिक विकिरण के कारण जीवधारी मर जाते हैं।

(द) विकिरण प्रदूषण का प्रभाव आने वाली संतति पर भी पड़ता है।

4.14.3 विकिरण प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Radiation Pollution)

1. रेडियोएक्टिव ईंधन व आइसोटोप्स को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय सावधानी बरतनी चाहिए।
2. रिएक्टरों (Reactors) में किसी प्रकार का रिसाव नहीं होना चाहिए।
3. ऊर्जा संयंत्रों के अपविष्टों को अच्छी तरह उपचारित करके पृथक करना चाहिए।
4. आबादी वाले क्षेत्रों के पास कभी भी आण्विक रिएक्टरों को स्थापित नहीं करना चाहिए।
5. प्रदूषण नियंत्रण नियमों का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिए।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

6. मुख्य वायु प्रदूषक है –

   (अ) CO_2 (ब) CO

   (स) SO_2 (द) N_2

7. जल प्रदूषण के कारण उत्पन्न रोग है–

   (अ) रक्त कैंसर (ब) मलेरिया

   (स) मधुमेह (द) पीलिया

8. सूर्य प्रकाश की पराबैंगनी किरणों की अभिक्रिया से बनती है –

   (अ) फ्लोराइड (ब) CO_2

   (स) ओजोन (द) CO

टिप्पणी

9. वायुमण्डल में CO_2 की प्रतिशत मात्रा होती है –

(अ) 0.03% (ब) 0.3%

(स) 0.0003% (द) 3%

10. वायविय या वायु प्रदूषण मे कौन सा मुख्य कारक नहीं होता है?

(अ) औद्योगिक त्याज्य (ब) साबुन

(स) धुआँ (द) अमोनिया

4.15 पर्यावरणीय समस्याएँ (Environmental Problems)

परिचय – पर्यावरण प्रदूषण के कारण विभिन्न प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं जो निम्नलिखित रूप में देखी जाती हैं–

4.15.1 जलवायु परिवर्तन एवं विश्व का बढता तापमान (Climate Change and Global Warming)

जलवायु परिवर्तन (Climate Change)

वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) एवं ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता अधिक होने पर वायुमण्डल के तापक्रम में भी वृद्धि होने लगती है। इसे वैश्विक तापन **(global warming)** कहते हैं। इक्कीसवीं सदी में ग्लोबल वार्मिंग पर्यावरण की एक जटिल समस्या है जिसको हल करने के लिए अनेक देश प्रयासरत हैं। भू–स्थलीय ताप का प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ता है जिससे मानव जीवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है।

भू–स्थलीय जलवायु में परिवर्तन होते रहते हैं। प्राकृतिक जलवायवीय स्थिति होने पर, किसान फसल का उत्पादन करते हैं। जलवायु के परिवर्तित होने के साथ ही पर्यावरणीय स्थिति भी बदल जाती है, जिसका प्रभाव पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों पर पड़ता है। ये जलवायवीय परिवर्तन शीघ्र, निरंतर तथा अपरिवर्तनीय (irreversible) होते हैं।

ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण ग्रीन हाउस गैसें होती हैं। कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड तथा क्लोरो–फ्लोरो कार्बन **(CFC)** प्रमुख ग्रीन हाउस गैसें हैं। ये गैसें पर्यावरण में बहुत कम मात्रा में पायी जाती हैं। लेकिन इनमें इन्फ्रा रेड विकिरण को ग्रहण करने की क्षमता होती है जिसके कारण ये गैसें वायुमण्डल का ताप बढ़ा देती हैं। प्रकृति में साधारणतया ग्रीन हाउस गैसें पृथ्वी को निरन्तर गर्म रखती हैं। आधुनिक युग में औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों में विकास के साथ–साथ इन गैसों की सान्द्रता बढ़ जाती है जिससे पृथ्वी का ताप भी बढ़ जाता है। ग्रीन हाउस गैसें प्रकृति में अनेक दशकों तक विद्यमान रह सकती हैं।

टिप्पणी

चित्र क्र. 4.13: वैश्विक तापन

ग्लोबल वार्मिंग का दूसरा कारण ओजोन परत का कम होना है। ओजोन परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों **(UV Rays)** से जैव मण्डल की सुरक्षा करती है। आधुनिक युग में रेफ्रिजरेटर, वातानुकूलन, फोम उत्पादित उपकरण तथा स्प्रे केन में क्लोरो–फ्लोरो कार्बन प्रयोग किया जाता है। इसकी अधिकता ओजोन परत के लिये हानिकारक होती है।

पृथ्वी पर वैश्विक ताप वृद्धि का प्रभाव जलवायु पर अत्यधिक पडता है। जिसके कारण जलवायु परिवर्तित हो गई है। सामान्य रूप से जलवायु परिवर्तन से तात्पर्य जलवायु का सामान्य न होना है। गर्मी के मौसम में सामान्य से अधिक या कम गर्मी का पडना, वर्षा का सामान्य से अधिक या कम समय पर न होना। शीत ऋतु में भी जाड़ा सामान्य की तुलना में अधिक या कम व सामान्य न होकर देर से प्रारम्भ होना आदि। जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव पादपों, जीव–जंतुओं और कृषि पर पड़ता है। जिससे कृषि की पैदावार सामान्य से कम ह्रासात्मक होती है।

लगातार बढती औद्योगिक गतिविधियाँ शहरीकरण आधुनिक रहन–सहन, धुँआ उगलती चिमनियाँ, निरन्तर बढ़ते वाहनों एवं ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव से पृथ्वी के औसत तापमान में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, यह स्थिति 'ग्लोबल वार्मिंग' कही जाती है। तापमान वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन एक ऐसी पर्यावरण समस्या है जिससे सम्पूर्ण विश्व प्रभावित हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित नवीन रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक देशों में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन लगातार बढ़ रहा है और वर्ष 2020 से 2030 के मध्य इसके उत्सर्जन में 17 प्रतिशत वृद्धि होने की संभावना है। पिछले कुछ वर्षो में पूर्वी और केन्द्रीय यूरोपीय देशों मे अच्छी आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति हुई है और इसका प्रभाव उनके ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से भी स्पष्ट है। औद्योगिक देशों में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख क्षेत्रों के ऊर्जा, परिवहन, उद्योग और कृषि द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि हुई है। (चित्र क्र. 4.13)

ग्रीन हाउस प्रभाव (Greenhouse Effect)

टिप्पणी

प्राकृतिक एवं मानव केंद्रित ग्रीन हाउस गैसे वातावरण के ये गैसीय घटक है जो धरती की सतह से उष्मा के कुछ को अपनी ओर खींच कर उन्हें अपेक्षा से अधिक गर्म बना देने में आंशिक कंबल के रूप में काम करती है। सतह क्षेत्र से उष्मा को खींच कर पृथ्वी के वातावरण के गरमाने की असाधारण घटना को ग्रीन हाउस कहा जाता है। यद्यपि जोसेफ कोरियर ने 1984 में ही इस बातकी खोज कर ली थी, परन्तु मानव केंद्रित ग्रीन हाउस गैस के उप के घातक दुष्प्रभावों को विश्व के अधिकांश जलवायु वैज्ञानिकों ने पिछले दशक में ही स्वीकार करना शुरू किया है। हाउस प्रभाव के अस्तित्व के बारे में कोई विवाद नहीं है। अन्यथा भरती 19^0 से. की भयावह शीत पर ठिठुर रही होती।

पृथ्वी का ताप बढ़ाने में बढ़ती जनसंख्या और उसके द्वारा पृथ्वी के बढ़ते उपभोग का यह प्रभाव हुआ है कि वाहनों ग्रीन हाउस गैसों एवं औद्योगिक चिमनियों ने वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा अत्याधिक दिया है। यह कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य ग्रीन हाउस गैसों जैसे मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड तथा मानव निर्मित फ्लोरो कार्बन (सी. एफ. सी) आदि के साथ मिलकर वातावरण को अत्यधिक तेजी से गर्म कर रही है।

ग्रीन हाउस अर्थात ''पौधाधर''। यह वास्तव में एक उष्मारोधी दीवारों का ऐसा कमरा होता है जिसकी छत पारदर्शी प्लास्टिक की होती है। सूर्य की किरणे काँच को भेदकर कमरे के तापमान को बढ़ा देती है किन्तु उष्मा का बाहर की ओर विकिरण बहुत कम होता है। फलतः शीत ऋतु में भी कमरे का तापमान बाह्म वातावरण की अपेक्षा अधिक होता है कि ठंड के मौसम में भी कमरे के अंदर ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाली सब्जियाँ उगाई जा सकती है। सिद्धांत सौर कुकर में काम करता है। अर्थात एक बार किसी प्रकोष्ठ में प्रवेश करना और फिर वापस न लौट सकने के कारण वहीं ठहर जाना।

वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी का वातावरण एक ग्रीन हाउस के समान होता है जो सूर्य प्रकाश की सूक्ष्म विकिरण के लिए पारदर्शी होता है किन्तु पृथ्वी की लम्बी ताप किरणों के लिए अपारदर्शी वायुमंडल की कार्बन डाइ एवं जलबाष्प हरित गृह के समान कार्य करता हैं। आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण वर्तमान वातावरण में अनेक व्यर्थ औद्योगिक उत्पादों के घातक क्लोरो– फ्लोरो कार्बन यौगिक, खनिज तेल अन्य व्यापक स्तर पर उपयोग के कारण वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है।

वर्तमान समय में पृथ्वी एक सौर कुकर बनने की स्थिति में आ गयी है। सूर्य की उष्मा पृथ्वी से बाहर की ओर विकरित होती है किन्तु कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य तापरोधी गैसें इस उष्मा का कुछ अंश शोषित कर लेती हैं और पुनः भूतल पर वापस करत देती हैं। इस प्रक्रिया में निचले वायुमंडल में अतिरिक्त उष्मा जमा हो जाती है। पिछले कुछ वर्षो में इन तापरोधी गैसों की मात्रा वायुमंडल में बढ़ जाने के कारण वायुमंडल का औसत ताप बढ़ गया है।

टिप्पणी

कार्बन डाइऑक्साइड सदृश्य तापरोधी गैसों के कारण पृथ्वी के वायुमंडल के ताप में वृद्धि की सर्वप्रथम घोषणा स्वीडन के वैज्ञानिक स्वान्ते आहनियस ने पिछली सदी के अन्तिम चरण में किया। इन गैसों के वायुमंडल में जमाव पर विधिवत शोध कार्य सन 1958 से ही प्रारंभ हो सका और तब से स्क्रिप्स इंस्टिट्यूशन ऑफ ओसिनोग्राफी के चार्ल्स डी. कोलिंग द्वारा वायुमंडल में CO_2 के बढ़ते स्तर का अध्ययन विभिन्न केंन्द्रों में किया जाता रहा है। पृथ्वी की सतह पर तापमान मुख्यतः आगत सौर विकिरणों और पृथ्वी से परावर्तित विकिरणों के संतुलन पर निर्भर करता है। आगत सौर विकिरण स्पेक्ट्रम में दिखने वाली किरणे हैं और वे वायुमंडल की विभिन्न सतह को भेदकर पृथ्वी तक पहुँच सकती है। दूसरी और परावर्तित विकिरण लम्बे तरंगदैर्ध्य की अर्थात अदृश इन्फ्रारेड होती है। यदि आंगत सौर विकिरण के मध्य संतुलन नहीं रहे तो पृथ्वी पर कुल ताप में या तो कमी होने लगेगी या वृद्धि प्रारंभ हो जाएगी।

पृथ्वी का औसत तापमान 15^0 सें ग्रे. है। ग्रीन हाउस प्रभाव के बिना पानी की बाष्प CO_2 और मीथेन के कारण पृथ्वी लगभग 350 सें. ग्रे. ठंडी होगी। वातावरण में CO_2 का सान्द्रण बढ़ रहा है। इससे आगत विकिरण और बाहर उत्सर्जित होने वाले इन्फ्रारेड विकिरण के संतुलन में परिवर्तन आ रहा है। अंटार्क्टिका के बर्फीले केन्द्र में अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि मिथेन CO_2, के सांद्रण का घनिष्ठ संबंध है। अन्य गैसों क्लोरो–फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस ऑक्साइड (NO) आदि का अध्ययन भी किया गया है। इसमें CO_2 का सांद्रण सबसे अधिक था।

कार्बन डाइऑक्साइड मीथेन सी. एफ. सी.–11, सी. एफ. सी–12 नाइट्रस पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करने में कार्बन डाइऑक्साइड का योगदान 57 प्रतिशत अन्य गैसों के क्लोरो–फ्लोरो कार्बन का योगदान 25 प्रतिशत, मीथेन का 12 प्रतिशत, नाइट्रस ऑक्साइड का 6 प्रतिशत है। वर्तमान में पृथ्वी की गर्मी बढ़ाने में कार्बन डाइऑक्साइड का योगदान 49 प्रतिशत, मीथेन का लगभग 18 प्रतिशत, क्लोरो–फ्लोरो कार्बन का 14 प्रतिशत, नाइट्रस ऑक्साइड का 6 प्रतिशत एवं हेलोजन, ओजोन और सल्फर डाइऑक्साइड का योगदान कुल मिलाकर 1 प्रतिशत है।

ग्रीन हाउस के प्रभाव के कारण (Causes of Greenhouse Gases)

ग्रीन हाउस के प्रभाव के कारण (Causes of Greenhouse Gases) अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि ग्रीन हाउस प्रभाव का कारण कुछ गैसें (कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन) नाइट्रस ऑक्साइड एवं क्लोरो–फ्लोरो कार्बन हैं।

जलीय बाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (NH_3), मीथेन (CH_4) और ओज़ोन धरती के वायुमंडल में पाई जाने वाली प्राथमिक ग्रीन हाउस गैसें हैं। रेफ्रिजरेशन और सेमीकंडक्टर में प्रयोग होने वाली फ्लोरीनयुक्त दो गैसें, यथा–परफ्लोरो कार्बन (पी. एफ. सी), हाइड्रोफ्लोरो कार्बन (एच. एफ. सी) और सल्फर हेक्साफ्लोराइड (एस. एफ. 6) भी वायुमंडल में ग्रीन हाउस प्रभाव को बढ़ाने में योगदान करती हैं।

टिप्पणी

मानवकेंद्रित ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में प्रमुख योगदान कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन गैसो का रहता है। कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन मुख्यतः कोयला आधारित विद्युत संयंत्रों, इस्पात और उर्वरक संयंत्रों, पेट्रोल और डीजल चालित वाहनों में जीवाश्म ईंधन के जलने से और भवनों वाणिज्यिक तथा आवासीय दोनों से होता है।

ग्रीन हाउस गैसों के स्त्रोत (Sources of Greenhouse Gases)

ग्रीन हाउस गैसें मुख्य रूप से कोयला, तेल, गैस, लकड़ी आदि पदार्थो के जलने से बनती है। मीथेन गैस जलने वाले ईंधनों के अतिरिक्त जैव पदार्थ (बायोमास) के धीरे–धीरे सड़ने तथा धान के खेतों आदि से उत्पन्न होकर वायुमंडल में जाती है। इन ग्रीन हाउस गैसों में सबसे अधिक योगदान कार्बन डाइऑक्साइड गैस का है।

मुख्य स्त्रोत

1. प्लास्टिक बनाने वाले पदार्थ
2. सफाई के काम आने वाले पदार्थ
3. रेफ्रिजरेटरों में काम में आने वाले पदार्थ
4. प्रोपेजेंट आदि
5. जंगल के नष्ट होने से
6. जलने वाले ईंधन (कोयला, तेल, गैस)

प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों का वर्णन इस प्रकार हैः

कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2)

यह प्रमुख ग्रीन हाउस गैस है। सर्वप्रथम प्रसिद्ध प्रकृति वैज्ञानिक जॉन टिंडल ने सन् 1661 में CO_2 से संबंधित ग्रीन हाउस प्रभाव की जानकारी दिया। कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा वायुमंडल में बहुत कम है केवल दस हजार भाग में तीन भाग वायुमंडल के संगठन में कार्बन डाइऑक्साइड की आधे प्रतिशत से भी कम मात्रा में उपस्थित यह गैस वातावरण को सूर्य प्रकाश की अनुपस्थिति में भी सामान्य बनाए रखती है। इसकी मात्रा में वृद्धि ग्रीन हाउस प्रभाव से अब तक वायुमंडल की कार्बन डाइऑक्साइड 25 प्रतिशत बढ़ी हैं, परंतु आयतन में यह वायुमंडल की मात्रा 0.03 प्रतिशत है। धरती के तापमान को नियंत्रित रखने का उत्तरदायित्व इसी गैस पर हैं। सूर्य की गर्म किरणे वायुमंडल को भेदकर पृथ्वी तक पहुंचती है तो पृथ्वी को गर्म कर देती है। कुछ उष्मा पृथ्वी द्वारा सोख ली जाती है और कुछ वायुमंडल में चली जाती है, किन्तु गर्मी उत्पन्न करने वाली अवरक्त किरणें कार्बन डाइऑक्साइड को नहीं भेद पाती और धरती के वातावरण को गर्म करती हैं।

मौसमों में स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 2300 अरब टन बनी रहे। गैस का संतुलन बनाये रखने में समुद्र का अधिक महत्व है। धरातल मे 70 प्रतिशत से अधिक भाग पर इसका विस्तार है। अपने में वायुमंडल से लगभग 50 गुना अधिक कार्बन डाइऑक्साइड समेटे हुए है। इस गैस की कुछ मात्रा पानी में रहती है, लेकिन अधिकांश भाग कार्बोनेट यौगिकों के रूप

टिप्पणी

मे विद्यमान रहता है। समद्रों और वायुमंडल के मध्य प्रतिवर्ष लगभग 200 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड आदान–प्रदान होता है। यदि वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड अधिक हो जाए तो सागर उसका लगभग आधा भाग सोख लेते हैं और यदि कम हो जाए तो समुद्र वायुमंडल में अधिक से अधिक कार्बन डाइऑक्साइड छोडने की कोशिश करते हैं।

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड को सोखने का दूसरा स्त्रोत ज्वालामुखी है। प्रतिवर्ष अनुमानतः 100 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में आती है।

वायुमंडल की कार्बन डाइऑक्साइड को सोखने का सबसे बड़ा साधन वनस्पति जगत है। पेड–पौधों को प्रकाश की सहायता से अपना भोजन बनाने के लिए कार्बन डाइऑक्साइड की आवश्यकता होती है। पेड–पौधे प्रतिवर्ष वायुमंडल से 60 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करते हैं, लेकिन गैस की यह संपूर्ण मात्रा वायुमंडल को फिर वापस मिल जाती है, क्योंकि जन्तु–जगत श्वसन के समय यही गैस (लगभग 60 अरब टन) छोड़ते हैं। इसके अलावा वनस्पतियों के सड़ने से भी CO_2, गैस वायुमंडल में पहुँचती है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2000 ई. में 100 प्रतिशत बढ़ जाएगी। वायु के तापमान में कार्बन इसके एकीकरण से हुए परिवर्तन को समझा जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, कनाडा, रूस, मध्य के आर्थिक रूप से विकसित देशों में कार्बन डाइऑक्साइड फैलाव अधिक है।

मीथेन (Methane) (CH_4)

कार्बन डाइऑक्सांइड की तुलना में मीथेन की मात्रा बहुत कम है, परंतु इसकी विकिरण शीलतां के कारण यह कार्बन डाइऑक्साइड से 20 गुना अधिक ग्रीन हाउस प्रभाव ला सकती है। पृथ्वी का ताप बढ़ाने में इसका योगदान लगभग 18 प्रतिशत है। मीथेन मुख्यतः प्राकृतिक एवं जैविक प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती है। अतः इसकी वृद्धि विभिन्न उपायों द्वारा आसानी से नहीं रोकी जा सकती। मीथेन का उत्सर्जन चावल (धान) की खेती, पशुधन के सड़ने, ठोस शहरी कचरा, कोयला खनन, तेल एवं प्राकृतिक गैस और जैव कचरे के जलने आदि से होता है। वैश्विक स्तर पर कृषि गतिविधियों से 22 प्रतिशत मीथेन का उत्सर्जन होता है। मीथेन ग्रीन हाउस प्रभाव वाली गैसों में सर्वाधिक प्रभावी (तेज) होती हैं।

यह पाया गया है कि किसी भी मवेशी के पाचन तंत्र में भोजन का 5 से लेकर 10 प्रतिशत मीथेन में बदल जाता है। इन मवेशियों के मल–मूत्र या गोबर त्याग करने पर थोडा मीथेन से निकलकर वायुमंडल में चली जाती है। पश्चिम जर्मनी के वैज्ञानिकों द्वारा हाल ही में किए गये अध्ययन के अनुसार एक अकेली गाय प्रतिदिन लगभग 200 ग्राम मीथेन उत्पन्न करते है। धान के खेतों से बड़ी मात्रा में मीथेन निकलती है। चीन मे किए गये परीक्षणों के अनुसार विश्व भर में धान के खेतों में प्रतिवर्ष 15 करोड़ टन मीथेन के निकलने का अनुमान है। क्षारीय भूमि में अधिक मीथेन निकलती है। दलदल और कोयलेखानों में भी मीथेन बनती है। उद्योगों से अन्य प्रदूषक गैसों के साथ मीथेन निकलती है। पिछले 200 वर्षों मे वायुमंडल में प्रोयोन की मात्रा दो गुनी से अधिक हो गई है। वर्तमान में इसकी मात्रा बढ़ने की दर लगभग एक प्रतिशत है।

टिप्पणी

नाइट्रस ऑक्साइड

नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन जीवाश्म ईंधन के दहन, मिट्टी से परोक्ष उत्सर्जन, नाइट्रिक अल्प उत्पादन, कृषि अवशिष्टों के इहन और कृषि में उर्वरको के उपयोग से होता है। पृथ्वी का ताप बढ़ाने में इस गैस का योगदान 6 प्रतिशत है। नाइट्रस ऑक्साइड वायुमंडल में 100 वर्ष तक विद्यमान रहता है। अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2030 तक नाइट्रस ऑक्साइड के कारण पृथ्वी के ताप में जो वृद्धि होगी, वह कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ी मात्रा के कारण होने वाली ताप वृद्धि का 20–40 प्रतिशत के मध्य होगी।

क्लोरो–फ्लोरो कार्बन

क्लोरो–फ्लोरो कार्बन ऐसे यौगिकों का व्यावसायिक नाम है जिनके मीथेनों, ईथेनों और इंथलीनों के प्रत्येक अणु में कम से कम एक फ्लोरीन (एफ) परमाणु होता है। ग्रीन हाउस प्रभाव का एक प्रमुख कारण क्लोरो–फ्लोरो कार्बन है जो क्लोरीन एवं कार्बन के संयोग से बनता है। क्लोरो–फ्लोरो कार्बन का प्रयोग रेफ्रीजरेटरों एवं गाडियों में प्रयोग होने वाले एयर कण्डीशनरों, गद्देदार सीट या सोफा में काम आने वाले फोम और रेग्जीन तथा खुशबूदार कॉस्मेटिक एयरोसोल स्प्रे के निर्माण में किया जाता है। वर्तमान समय में छोटे–छोटे इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की सफाई में भी इन गैसों का प्रयोग होने लगा है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि क्लोरो–फ्लोरो कार्बन एवं हेलोजन गैसों का ग्रीन हाउस प्रभाव की वृद्धि में 90 प्रतिशत तक योगदान संभव है। ये गैसें वायुमंडल में स्थित प्राणरक्षक ओजोन को नष्ट करती है। क्लोरो–फ्लोरो कार्बन का एक ओजोन के एक लाख अणुओं को तोड सकती है। इस वर्ग की गैसें दीर्घजीवी होती हैं। यदि सी. एफ. सी. वर्ग की इन गैसों के उत्पादन और प्रयोग की यही दर रही तो सन् 2050 तक 18 प्रतिशत से अधिक ओजोन वायुमंडल से गायब हो जाएगी।

ग्रीन हाउस गैसों की वायुमंडल में निरंतर वृद्धि हो रही है। इसके दो प्रमुख कारण हैं।

1. **औद्योगिकरण** – औद्योगिकरण के फलस्वरूप वर्तमान समय में उद्योंगों एवं घरों में जीवाश्म ईंधनों, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थों के उपयोग में अत्यधिक वृद्धि हुई है। वर्तमान समय में प्रतिवर्ष लगभग 4 अरब टन जीवाश्म ईंधन जलाए जा रहे हैं, जिसमें प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। जीवाश्म ईंधन से 5 अरब टन कार्बन वायुमंडल में पहुँचता है। इस प्रकार जीवाश्म ईंधन के दहन से वायुमंडल के तापमान में वृद्धि होती है।
2. **वनों का विनाश** – प्रतिवर्ष विश्व में लगभग 6 करोड हेक्टेयर भूमि वृक्ष विहीन कर दी जाती हे। अकेले भारत में 16 लाख हेक्टेयर वन प्रतिवर्ष नष्ट हो रहे हैं। इसी गति से शताब्दी के अन्त तक कुल भूमि में केवल पांच प्रतिशत पर ही बन जाएंगे। परिणामस्वरूप लगभग 20 प्रतिशत जीव–जन्तु समाप्त हो जाएंगे। भारत में कुल राष्ट्रीय क्षेत्रफल का मात्र 11 प्रतिशत ही बनाच्छादित रह गया है।

टिप्पणी

पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड को विघटित कर ऑक्सिजन छोड़ते हैं और इस प्रकार वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड स्तर में संतुलन बनाए रखते हैं। वनों के विनाश से कार्बन डाइऑक्साइड की दो तरह वृद्धि होती है। एक और प्रकाश संश्लेषण के घटने से कार्बन डाइऑक्साइड का विघटन घट जाता है, दूसरी ओर वृक्षों के ईंधन रूप में जलने या प्राकृतिक रूप से विघटित होने से अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड वातावरण में पहुंचती है। वृक्षों के विनाश द्वारा 2 अरब टन कार्बन (वार्षिक) वायुमंडल में पहुंच रहा है जिसका 80 प्रतिशत उष्ण कटिबंधीय वनों के नष्ट होने के कारण उत्पन्न हो रहा है।

वैश्विक तपन का दुष्परिणाम पिछले दशक में मानव केंद्रित कारणों से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर जो अप्रत्याशित जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

परिवर्तन एवं विश्व का बढता तापमान

सौर ऊर्जा एवं अन्य गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का अधिक प्रयोग किया जाए। ग्रीन हाउस प्रभाव के खतरों से बचने के लिये भारत ने सन् 1990 में सम्पन्न हुए गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन में ''पृथ्वी रक्षा कोष'' स्थापित करने का सुझाव दिया, जिसे सैद्धांतिक तौर पर मान लिया गया है। इस कोष में विकासशील देशों को ऐसी महंगी तकनीकी को अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकेगा जो पर्यावरण प्रदूषण रोकती है। सन् 1987 में मॉंट्रियल में 24 देशों ने क्लोरो–फ्लोरो कार्बन के प्रयोग पर सन् 1999 तक 50 प्रतिशत की कटौती लाने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। ''पृथ्वी दिवस 1990'' का आयोजन पर्यावरण सुरक्षा की दिशा में एक पहल हैं।

4.15.2 जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effects of Changing Weather on Human Health)

ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता में वृद्धि के कारण पृथ्वी के औसत तापमान में भी वृद्धि हुई है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण बीसवीं शताब्दी में भूमण्डलीय औसत तापमान में लगभग 0.7°C तक वृद्धि हुई है। उपोष्ण–कटिबन्धीय **(Sub-tropical)** क्षेत्रों में प्रत्येक दशक में वर्षा की दर में 0.3 प्रतिशत की कमी हुई है। ऐसा मानना है कि यदि ग्रीन हाउस गैसों की उत्सर्जन दर 1990 के स्तर पर रहे तो इक्कीसवीं सदी के अंत तक औसत तापमान में 1.4°C-5.8°C तक की वृद्धि होगी। पृथ्वी के अलग–अलग स्थानों पर इसमें अंतर हो सकता है। जलवायु के परिवर्तन से मानव जाति के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ेगा।

जलवायु परिवर्तनों का मानव स्वास्थ्य पर भी काफी गंभीर प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि अनेक रोगों एवं उनके रोगजनों तथा वाहको का सीधा संबंध वातावरण के साथ होता है। भूमंडलीय ताप के मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले संभावित खतरे इस प्रकार हैं।

जलवायु परिवर्तन के मानव स्वास्थ्य पर विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ सकते हैं। विवरण इस प्रकार हैः

टिप्पणी

1. असंक्रामक रोग

(अ) अत्यधिक ताप (लू अथवा हीट वेव) – वायु के तापमान में दोनों ही शिखर चाहे वह अत्यधिक गर्म हो अथवा ठंडा की मध्यवर्ती (इंटरमीडिएट) अथवा अनुकूलतम सीमा की तुलना में मानव अस्वस्थता एवं मृत्यु की उच्च स्तरों से जुड़े होते है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लू (हीट वेव) को तुफान, बाढ़ एवं चक्रवातों की तुलना में अधिक खतरनाक माना जाता है। मृत्यु यद्यपि तापमान से जुड़ी अस्वस्थता विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होती है। किंतु 'अर्बन हीट आइलैंड प्रभाव' के अंतर्गत सडक, पार्किंग की जगह, छतों आदि के कारण कम परावर्तन के फलस्वरूप गर्मी का अवशोषण बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में पेडों के कम होने से वाष्पन वाष्पोत्सर्जन (इवेपोट्रांस्पिरेशन) का शीतलन (कूलिंग) प्रभाव समाप्त हो जाता है और ताप मे वृद्धि हो जाती हैं। साथ ही साथ वायु प्रदूषण से यह समस्या और गंभीर हो जाती है। शहरी क्षेत्रों को वैश्विक एवं स्थानिक दोनों प्रकार के तापन से जूझना पड़ता है।

(ब) समुद्री चक्रवात एवं सागर का बढता स्तर – विगत वर्षो में बाढ़, सूखे एवं चक्रवात के कारण अनेक व्यक्तियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है और अन्य बहुत से व्यक्तियों के जीवन बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। औसतन 1,23,000 व्यक्ति प्रतिवर्ष प्राकृतिक आपदाओं के शिकार हो जाते हैं। आपदा–संबंद्ध मानसिक विकारों के कारण अनेक व्यक्ति प्रभावित होते हैं जिसके दीर्घगामी परिणाम हो सकते है।

समुद्र सतही तापमान में वृद्धि के कारण चक्रवात की संख्या में वृद्धि हो रही है, जिससे अधिक संख्या में व्यक्ति प्रभावित होते हैं। हिमनदों (ग्लेशियर्स) के पिघलने तथा समुद्र के गर्म होने से सागर तल ऊपर उड़ रहा है। फलस्वरूप तटवर्ती क्षेत्रों मीठा पानी लवणयुक्त हो जाएगा तथा जल निकासी एवं सीवेज निपटान में भी अवरोध आ सकता है।

(स) सूखा – बढ़ते तापमान एवं सूखे के फलस्वरूप कृषि उत्पादन के प्रभावित होने से कुपोषण की समस्या उत्पन्न हो सकती है। यह संपूर्ण विश्व में एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है। सूखे के परिणामस्वरूप जल संसाधनों के कम होने से स्वच्छता बनाए रखने में आई बाधा के कारण अतिसार की घटनाओं तथा ठीक से साफ–सफाई न होने से संबद्ध स्केबीज, कंजेक्टीवाइटिस एवं ट्रेकोमा जैसे रोगों के मामलों में वृद्धि हो जाएगी।

(द) वायु गुणवत्ता एवं जलवाय – वायु का तापमान वायु प्रदूषको द्वारा उत्पन्न समस्याओं को प्रभावित करता है। वायु के बढ़ते तापमान के चलते भूस्तरीय ओजोन धूम–कोहरा (स्मोग) और गहरा जाएगा। पृथ्वी के गरमाने के कारण वायु में परागकणों के स्तर बढ़ सकते है क्योंकि कार्बन डाइऑक्साइड के उच्च स्तर इसकी वृद्धि को बढ़ावा देते हैं, जो श्वसन संबंधी समस्याओं को बढाते हैं। इसके अलावा बाढ़ की घटनाओं में वृद्धि के

कारण बाढ़ के बाद की परिस्थितियों में मोल्ड्स को पनपने का अच्छा अवसर प्राप्त होता है जो मनुष्य में सांस संबंधी बीमारियाँ पैदा करते हैं।

टिप्पणी

2. संक्रामक रोग

(अ) जल एवं खाद्य जन्य रोग – आर्थिक रूप से पिछड़े अस्वच्छ स्थितियों के चलते अतिसारीय रोगों में वृद्धि हो सकती हैं इसके अलावा बाढ़ के कारण पेयजल के प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो जाती हैं। ये मानव में तीव्र आघात, अतिसारीय एवं स्मृति लोप (ऐमनीसिक) विषाक्तता तथा समुद्री स्तनधारियों, मछलियों एवं शेलफिश को नष्ट करता है। विश्व में विषाक्त शैवालों तथा शैवाली स्त्रोतों से मानव में विषाक्तता की घटनाएँ बढ़ रही है।

विब्रिओं की प्रजाति भी गर्म समुद्री जल में प्रचुर मात्रा में पनपती हैं। शैवालों पर निर्भर रहने वाले जूप्लॅक्टॉन विब्रिओं कॉलेरी तथा मानव के अन्य रोगजनों के लिए भंडारण का कार्य करते हैं। बांग्लादेश में समुद्र सतही तापमान में वृद्धि, जरो प्लेक्टॉन की आबादी को बढ़ावा देता है, इसके फलस्वरूप हैजा रोग की घटनाएँ देखी गई।

(ब) रोगवाहक अन्य रोग – चूँकि कीटों एवं कृंतकों (रोडेंट्स) द्वारा संचालित मानव रोगजनक अपना काफी समय अपने कशेरूकी परपोषी के बाहर गुजारते हैं, अतः वे वातावरणीय परिस्थितियों से काफी प्रभावित होते हैं। निम्नलिखित रोगवाहक जन्य रोग मौसमी परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं:

(i) मलेरिया– मलेरिया विश्व जनस्वास्थ्य की एक गंभीर समस्या है तथा प्रतिवर्ष सम्पूर्ण विश्व में 30–50 करोड व्यक्ति इस रोग से पीड़ित होते हैं और लगभग 27 लाख व्यक्तियों की इस रोग के कारण मृत्यु हो जाती है, जिनमें अफ्रीकी देशों के बच्चों की संख्या अधिक होती हे यह अत्याधिक जलवायु–संवेदी उष्णकटिबंधीय रोग है। मच्छरों की विकास प्रक्रिया, उनकी उत्तरजीविता तथा रोग संचरण गतिकी में तापमान एवं आर्द्रता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्च तापमान पर मलेरिया परजीवी की बाह्य उद्भवन अवधि (एक्सटेंसिव इनक्यूबेशन पीरियड–ई आई पी) उल्लेखनीय रूप से कम हो जाती है तथा मच्छर बहुत जल्दी संक्रामक हो जाते हैं। संचरण अवधि के दौरान बड़े तापमान के कारण मच्छर के डिंभक कम समय में परिपक्व होकर अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा मादा व्यस्क तेजी से रक्त को पचा जाती है तथा फिर से रक्तपान करके संचरण तीव्रता को बढ़ाती है। तापमान में वृद्धि के साथ महामारी की संभावना बढ़ जाती है तथा जलवायु परिवर्तन एवं विश्व का बढ़ता तापमान परिवर्तन से मलेरिया के कारण 1–3 प्रतिशत तक जनसंख्या को खतरा तथा नए क्षेत्रों में फैलने का खतरा बढ़ सकता है। इसके फलस्वरूप मुक्त क्षेत्रों में इसके पुन पंजाब में अत्यधिक वर्षा के साथ मलेरिया प्रकोपों की घटनाओं में वृद्धि देखी गई है। इसके

टिप्पणी

अलावा एल नीनो घटना के पश्चात् मलेरिया में 5 गुना वृद्धि की आशंका व्यक्त की गई है।

धरती के गरमाने के कारण उँचाई वाले क्षेत्रों मे तापमान में वृद्धि के साथ मलेरिया का खतरा बढ़ जाएगा जिसे 'हाईलैंड मलेरिया' का नाम दिया गया है।

(ii) वाइरस– यद्यपि डेंगू एवं चिकनगुन्या फैलाने वाला मच्छर एडीज एजिप्टाई शहरी क्षेत्रों में पारिस्थितिकी एवं मानव के क्रियाकलाप से प्रभावित हेाता है परन्तु यह प्रजाति तापमान, आर्द्रता एवं सूर्य के विकिरण के प्रति भी अत्यधिक संवेदनशील है। एडीज एजिप्टाई में डेंगू वाइरस को प्रतिकृति (रिप्लीकेशन) की दर वायु के तापमान के साथ सीधे संबंद्ध रहती है, तथा तापमान में वृद्धि के साथ इसमे तीव्रता आ जाती है। तापमान में वृद्धि के साथ डेंगू की महामारी की संभावना बढ़ जाती है।

दिल्ली भारत के अन्य अनेक भागों से डेंगू एवं चिकनगुन्या की महामारियों की घटना से अनेक व्यक्ति इसकी चपेट मे आये। विश्व के अनेक भागों में डेंगू की घटनाओं मे निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। कई वैज्ञानिक इसे धरती के गरमाने से भी जोड़ रहे हैं। कुछ अन्य अर्बोवाइरस जैसे सेंट लुईस एंसेफिलाइटिस वाइरस (एस. एल. ई. वी.) भी जलवायु संबंद्ध कारको के साथ जुडे हैं। फ्लोरिडा में चिकिन फ्लाक्स में एस. एल. ई. वी. की उपस्थिति सूखे के पश्चात् नमीयुक्त अवधि के कारण देखी गई। एक बार सूखा खत्म होने के बाद तथा जल संसाधनों के पुनः सुचारू होने पर संक्रमित रोगवाहको तथा परपोषी के बिखरने से ज्यादा भौगोलिक विस्तार में एस. एल. ई. वी. का संचरण हो जाता है। सूखे की स्थिति में मच्छर रोगवाहक क्युलेक्स निग्रीपाल्पस तथा पक्षी घने छायादार आवासों मे छिप जाते हैं तथा अनुकूल स्थिति आने पर हमला करते हैं।

जलवायु परिवर्तन का वेस्ट नील वाइरस पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः तापमान के कारण अर्कोवाइरसों पर पड़ने वाले प्रभावों के चलते पहले से सचेत रहने की आवश्यकता है।

(iii) चूहें आदि से फैलने वाले रोग – मानव में हंटा वाइरस का संचरण मुख्यतः संक्रमित चूहे आदि कृंतकों (रोडेंट्स) के मल के संपर्क में आने के कारण होता हैं इसके फलस्वरूप गंभीर रोग उत्पन्न होता है और मौतें भी होती हैं। 1993 में दक्षिण पश्चिम अमेरिका में हंटा वाइरस फुफ्फुसीय संलक्षण (पल्मोररी सिंड्रोम) का उभरना मुख्यतः मौसमी घटनाओं विशेषकर अत्यधिक वर्षा से संबंधित रहा है जिसके कारण कृंतकों की जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप वाइरस संचरण में बढोत्तरी हो गई।

टिप्पणी

अम्लीय वर्षा (Acid Rain)

अम्लीय वर्षा वायु प्रदूषण का विनाशक परिणाम है। अम्ल वर्षा का प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है। इसकी खोज सन 1852 में राबर्ट अंगुस स्मिथ ने मैनचेस्टर में की थी। वर्तमान में यह देश 'अम्लीय वर्षा' सूचना स्थल (ए.आर.आई.सी.) के नाम से भी जाना जाता है। इस स्थल की स्थापना 1984 में हुई थी। स्केनडनेवियन देशों के लिए अम्लीय वर्षा सबसे बड़ी समस्या है। प्रायः वर्षा का जल थोडा अम्लीय होता है। इसका कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का पानी में घुल जाना है। अम्लीय वर्षा में अम्लों का प्रतिशत इतना बढ़ जाता है कि वह पेड–पौधों इमारतों को गंभीर नुकसान पहुँचाने लगता है। वर्तमान समय मे औद्योगिक प्रगति के साथ–साथ यातायात और ऊर्जा उत्पादन के साधनों का उपयोग बहुत बढ़ गया है। इन सभी स्थानों पर जीवाश्म ईंधन अर्थात पेट्रोलियम पदार्थों और कोयला का उपयोग बहुत बढ़ गया है। दैनिक जीवन मे जीवाश्म ईंधन के जलाने से सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन डाइऑक्साईड की मात्रा बढ़ती है। यह क्रम वर्षों से चल रहा है। वर्तमान में वायुमंडल में सल्फर ऑक्साइडों की 60 प्रतिशत और नाइट्रोजन के ऑक्साइडों की 30 प्रतिशत मात्रा ताप विद्युतघरों से उत्पन्न होती हैं। वातावरण की नमी के संपर्क में आने पर ये गैसें क्रमशः सल्फ्युरिक और नाइट्रिक अम्ल बनाती है, जो वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरती है। यह क्रिया अम्लीकरण कहलाती है। अम्ल बनने की क्रिया दो स्तरों पर होती है। 1. गैस स्तर पर, 2. तरल स्तर पर। दोनों स्तरों की रासायनिक क्रियाओं सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड विभिन्न स्थितियों से गुजरते हैं। इसमें सूर्य प्रकाश और दूसरे तत्व जैसे मैंगनीज आदि उत्प्रेरक का कार्य करते हैं इसके परिणामस्वरूप अम्ल बनने की क्रिया तेज होती है। अम्लीयता को नापने की इकाई पी एच (pH) है। पी एच स्केल 0 से 14 तक फैला होता है। किसी उदासीन घोल का पी एच मान 7 होता है जैसे दूध सात से नीचे यह अम्लीयता और 7 से ऊपर क्षारीयता को इंगित करता है।

अम्लीयता का कारण (Causes of Acid Rain) – प्रायः अम्लीयता का कारण वातावरण मे कार्बन डाइऑक्साइड गैस की उपस्थिति है जो कार्बोनिक अम्ल (HCO_3) बना लेती है। कार्बोनिक अम्ल एक मन्द या तनु अम्ल है जो पानी में कुछ कुछ विघटित हो जाता है। इस अम्ल से पर्यावरण को क्षति नही पहुँचती। इस कारण वर्षा जल को शुद्ध जल माना जाता है और इसका पी एच मान 5.6 होता है। वर्षा जल की बढ़ती अम्लीयता का मुख्य कारण सल्फर डाइऑक्साइड गैस है जो ताप विद्युत संयंत्रों, तांबा और निकेल के प्रगालको और जीवाश्म ईंधन जलाने वाले गावों तथा शहरी क्षेत्रों में निकलती हैं यही गैस निरंतर वातावरण में ऊपर पहुँचती रहती है और उसे दूषित करने का मुख्य कारक है। इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन के ऑक्साइड भी अम्लीयता में वृद्धि करते हैं जो संयंत्रों (विद्युत) ऑटोमोबाइलों का धुआँ, और स्पेस हीटरों से निकलते रहते हैं। सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइडों का जब ऑक्सीकरण होता है तब गंधक का अम्ल और नाइट्रिक अम्ल बनता है। वस्तुतः इन्हीं अम्लों के कारण वर्षा जल और हिम अम्लीय हो जाते हैं। यही अम्ल वर्षा जल या हिम के पिघलने के साथ धरती पर आकर

टिप्पणी

जैव मंडल को हानि पहुँचाते हैं। अम्ल वर्षा नम और शुष्क दोनों प्रकार की होती है। वस्तुतः इसे अम्ल वर्षा न कहकर 'अम्ल विक्षेपण' कहना अधिक उपयुक्त होगा। अम्ल विक्षेपण ही पर्यावरण के लिए अधिक हानिकारक है। अम्ल वर्षा लगभग 70 प्रतिशत सल्फर के ऑक्साइड के कारण होती है।

अम्लीय वर्षा के दुष्परिणाम अम्लीय वर्षा के पर्यावरण पर पड़ने वाले परिणाम गंभीर एवं दूरगामी होते हैं। इसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि अम्लीय वर्षा कैसे कहाँ ओर किस रूप में हो रही है। सूखी अवस्था में अर्थात् जब अम्ल पानी के साथ बरसकर वायुमंडल में सूखे रूप में रहते हैं तो वे मकानों तथा इमारतों को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव से चूना, लोहा आदि कमजोर हो जाते हैं।

गैस की अम्लीय अवस्था में रहने पर इनका प्रत्यक्ष प्रभाव पेड–पौधों पर पड़ता है। पत्ते पीले पड़ जाते हैं। उनकी क्लोरोफिल बनाने की प्रक्रिया प्रभावित होती है जिससे वे अपना भोजन नहीं बना पाती तथा मर जाती हैं। मिट्टी की उपजाऊ क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। तरल अवस्था में पानी के साथ–साथ गिरने पर यह वर्षा नदी, तालाब, झीलों के पानी का अम्लीय प्रतिशत बढ़ाती है। इसके परिणामस्वरूप पानी में रहने वाले जीवों की मृत्यु हो जाती है। मछलियाँ, एल्गी, बैक्टीरिया अर्थात् बड़े जीवों से लेकर एककोशीय जीव सभी की मृत्यु हो जाती है तथा संपूर्ण जलीय व्यवस्था समाप्त हो जाती है। अम्लीय वर्षा का दुष्प्रभाव विशेष रूप से वनों पर पड़ता है। स्वीडन, उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी एवं सन 1982 मे स्वीडन के लगभग 34 प्रतिशत वृक्ष नष्ट हो गये थे। ब्रिटेन के पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार यह सल्फ्युरिक अम्ल वायु के साथ पश्चिमी यूरोप तक जाता है। यह वायु जीव–जंतुओं पर हानिकारक प्रभाव डालती है। पश्चिम जर्मनी में नाइट्रोजन के ऑक्साइड की अधिकता के कारण ओजोन तह पतली होकर साथ ही अम्लीय वर्षा के बुरे प्रभाव भी देखे गये हैं। स्वीडन के झीलों के पानी के अम्लीयता सम्पूर्ण वर्ष (1988 में) लगभग 15.5 पी एच आंकी गई यह सामान्य बिन्दु से लगभग 1.5 कम है। यही कारण है कि स्वीडन के झीलों में मछलियों की संख्या तेजी से कम हो रही है। कभी–कभी तो पानी की अम्लीयता 5 पी एच तक पहुँच जाती है। सन 1985 में स्वीडन में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार वहाँ की 85,000 झीलों में से 15,000 झीले वायु प्रदुषण के द्वारा अम्लीय हो गयी हैं। अम्लीय वर्षा पर शोधरत वैज्ञानिकों के अनुसार वाहनों की गति बढ़ने के साथ ही नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स भी बढ़ने लगते हैं।

अम्ल वर्षा से कलाकृतियाँ, महान स्मारकों और सुंदर भवनों को भी क्षति पहुँचती है। पिछले 200 वर्षों से जो भवन प्राकृतिक कोप से अप्रभावित और सुरक्षित थे, पिछले कुछ ही दशकों में उनकी रंगत बदलने लगी है। ऐसे कला स्मारकों में भारत का ताजमहल, यूनान स्थित की मूर्ति और अमेरिका का लिंकन स्मारक आदि प्रमुख हैं।

भारत में अम्लीय वर्षा पर कोई गंभीर कार्य अभी तक नहीं हुआ है। वैज्ञानिकों ने हाल ही में इस ओर ध्यान देना प्रारंभ किया है। कोयले और पेट्रोलियम के दहन और धातुओं के विगलन के फलस्वरूप निकली हुई सल्फर

टिप्पणी

डाइआक्साइड गैस ही अम्ल वर्षा का प्रमुख कारण है। जहाँ एक ओर मुंबई, कोलकाता और दिल्ली जैसे बड़े शहरों में सल्फर डाइऑक्साइड की सांद्रता के अधिक होने के कारण स्थिति काफी गंभीर हो चुकी है। वहीं अहमदाबाद, कानपुर और हैदराबाद जैसे औद्योगिक नगरों में भी खतरे की घंटी बज चुकी है। 'राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान' (नीरी), नागपुर, द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार मुंबई में सबसे ज्यादा सल्फर डाइऑक्साइड गैस वातावरण में विमुक्त होती है।

अम्लीय प्रदूषण का दूसरा बड़ा स्त्रोत धातुओं (तांबा, सीसा और जस्ता) का विगलन है। तांबे के विगलन से 11,000 टन और जस्ते से 21,000 टन सल्फर डाइऑक्साइड गैस निर्मुक्त होती है। साथ ही गंधक का तेजाब बनाने वाले संयंत्रों और कागज उद्योगों से ही संपूर्ण सल्फर डाइऑक्साइड का 4 प्रतिशत निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे उद्योगों और घरेलू कार्यों में ईंधन के दहन से निकली सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड और दूसरी गैसें भी पर्यावरण को निरंतर प्रदूषित करती है।

'ताजमहल' भी अम्ल वर्षा की चपेट से मुक्त नहीं रह सका है। ताजमहल से 40 किलोमीटर दूर स्थित मथुरा तेल शोधक कारखाने से निकलने वाली गैस से ताज के लिए खतरा बढ़ता जा रहा है। इस गैस के दुष्प्रभाव से श्वेत धवल संगमरमर पीला पड़ना प्रारंभ हो गया है। इस तेल शोधक कारखाने के अतिरिक्त ताज के चतुर्दिक 250 अन्य छोटे–बड़े उद्योगों और रेलवे शंटिंग यार्डो के विषैले धुएँ ने समस्या की गंभीरता को और बढ़ा दिया है। मात्र तेलशोधक कारखाने से ही प्रतिदिन निकलने वाली अनुमानित सल्फर डाइऑक्साइड गैस 5 टन है। इसके कुप्रभाव का इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। दिल्ली स्थित लाल किले का सुर्ख रंग भी दो रेल्वे यार्डों से निकले धुएँ के कारण फीका पड़ने लगा। है। कितने ही अन्य ऐतिहासिक स्मारक और कलात्मक भवन इस जहरीली वर्षा के कुप्रभाव से विनाश की ओर कदम बढ़ा रहे हैं।

तेजाबी वर्षा की रोकथामः सोफिया (बलगेरिया) में 1 नवम्बर सन 1988 विश्व के लगभग 25 देशों में एक अंतर्राष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किया। जिसमें कारखानों से निकलने वाले नये नाइट्रोजन के ऑक्साइड को कम करने पर अधिक जोर दिया गया था। सन् 1985 में ऐसी ही एक संधि हुई थी जिसमें विभिन्न देशों ने सल्फर के निष्कासन पर 30 प्रतिशत की कमी लाने की बात पर बल दिया था। यह कमी सन् 1990–93 के मध्य किया जाना था।

विश्व के ऐसे प्रथम देश हैं, जिन्होंने सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड को कम करने के लिए सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित किया। स्वीडन, संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा ने एक नवीन तकनीकी का उपयोग वाहनों में करना प्रारंभ किया है। इस तकनीक का नाम है – 'श्री वे केटेलिटिक कन्वर्टर' स्वीडन में सन् 1989 में बनने वाली कारों तथा अन्य वाहनों में इस तकनीक का ध्यान रखा गया है। केवल यूरोपीय देशों में ही नहीं बल्कि विश्व के लगभग सभी देशों में सन् 2000 तक 'केटेलिटिक कन्वर्टर' तकनीक का उपयोग किया जाएगा। इस तकनीक के प्रयोग से वाहनों के प्रयोग से निकलने वाले हाइड्रोकार्बन को कम किया जा

सकता है। वाहनों को मध्यम गति से ही चलाना चाहिए। अधिक तीव्र गति से वाहन चलाने से हाइड्रोकार्बन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। अभी हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार नाइट्रोजन के ऑक्साइड 0.6 ग्राम बढ़ते हैं यह वृद्धि 50 किलोमीटर प्रति घंटे की चाल पर होती है। यदि यही गति 80 कि.मी. प्रति घंटे हो जाये तो नाइट्रोजन के ऑक्साइड 1.4 ग्राम प्रति कि. मी. की दर से बढ़ते हैं। सन् 1983 के जून माह में स्वीडन में विभिन्न देशों के मध्य संधि हुई। इसमें इंग्लैंड, स्वीडन, कनाडा, नार्वे, पश्चिमी जर्मनी, डेनमार्क, ऑस्ट्रिया, स्विटजरलैण्ड आदि देशों ने भाग लिया था। इसमें इस बात पर जोर दिया गया कि सन् 1993 तक सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा में 30 प्रतिशत की कमी लायी जायेगी, जो झीलें अम्लीकृत हो गई हैं उनमें क्षारीय पदार्थ जैसे चूना आदि मिलाये जायेंगे। यद्यपि चूने का दुष्प्रभाव भी जल जीवों पर पड़ता है, परंतु यह कुप्रभाव अम्लीय होने के प्रभाव से अधिक खतरनाक नहीं है।

भारत में भी अम्ल के कुछ कारखानों में पानी का अम्लीयकरण होने लगा है। यदि अम्लीय वर्षा का प्रारंभ भारत में हो गया तो निकट भविष्य में हमें पेयजल के भीषण संकट का सामना करना पड़ेगा अतः ऐसे जीवाश्म ईंधनों से निकलने वाली सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन डाईऑक्साइड को कम किया जाना चाहिए।

4.15.3 ओजोन परत क्षरण (Ozone Layer Depletion)

वायुमण्डल का गैसों युक्त स्तर ट्रोपोस्फियर (Troposphere) कहलाता है। जिसमें हम लोग एवं अन्य जीवधारी रहते हैं। दूसरा स्तर स्ट्रेटोस्फियर (Stratosphere) कहलाता है जो पृथ्वी से 50 कि.मी. ऊँचाई पर स्थित होता है। इसमें ओजोन का कवच स्थित होता है जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet rays) को अवशोषित करता है। ओजोन अत्याधिक क्रियाशील, हल्के नीले रंग की गैस होती है। इसकी गंध असहनीय होती है। वायुमण्डल में समुद्री सतह पर ओजोन की सान्द्रता 15 पीपीएम, सर्दी में 0.02 पीपीएम तथा गर्मी में 0.07 पीपीएम होती है। वायुमण्डल में इसका निर्माण ऑक्सीजन पर होने वाले विद्युत विसर्जन प्रभाव के कारण होता है। सम्भवतः यह क्रिया आण्विक ऑक्सीजन के साथ अधिक तापक्रम या पराबैंगनी किरणों के कारण होती है। ओजोन घातक एवं रक्षक दोनों का ही कार्य करती है। ओजोन के दो प्रभाव होते हैं। प्रथम, यह UV किरणों का अवशोषण कर पृथ्वी के जीवन को सुरक्षित रखती है। दूसरे, UV किरणों के अवशोषण से स्ट्रेटोस्फियर का तापमान बढ़ जाता है। अतः अधिक औद्योगीकरण वाले क्षेत्रों के वायुमण्डल के ऊपर प्रदूषकों के घने बादल (Clouds) छाये रहते हैं। पृथ्वी की सतह पर ओजोन की अधिक सान्द्रता फसलों की पैदावार घटा देती है। (चित्र क्र. 4.14)

ओजोन सूर्य की UV किरणों से हमारी रक्षा करती है, किन्तु धीरे–धीरे इसका स्तर (layers) पतला होता जा रहा है। ओजोन परत की क्षति का प्रमुख कारक क्लोरो–फ्लोरो कार्बन्स (CFCs) गैसें है। ये गैसें शीतलक (coolants), वातानुकूलक (air conditioners), रेफ्रिजरेटर्स, एरोसॉल नोदक (aerosol

टिप्पणी

propellants) तथा फोम विस्थापना (foam installation) में प्रयोग में लायी जाती हैं। CFCs के विघटन से वायुमण्डल में क्लोरीन (Cl) के परमाणु बनते हैं। क्लोरीन का एक परमाणु 1,00,000 ओजोन परमाणुओं का विनाश कर देता है।

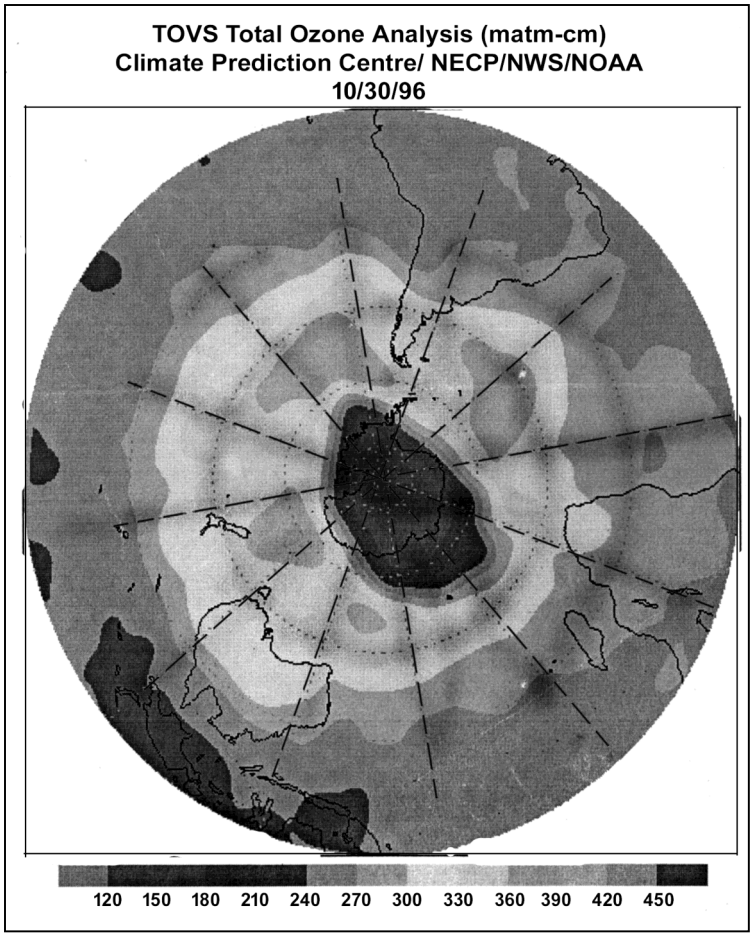

चित्र क्र. 4.14: ओजोन सतह माप

ऐसा माना जाता है कि ओजोन परत प्रत्येक दस वर्षों में लगभग 5% की दर से विघटित हो रही है। अण्टार्कटिका तथा उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रों में ओजोन परत की सान्द्रता सबसे कम है। अतः इसे सामान्यता ओजोन छिद्र कहा जाता है।

ओजोन परत कम (पतला) होने के कारण हानिकारक विकिरणों के अवशोषण की दर कम हो जाती है। जिसके फलस्वरूप त्वचा सम्बन्धी रोग, कैंसर तथा मोतियाबिन्द जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा फसल उत्पादन भी प्रभावित होता है। समुद्रों में मछलियाँ आदि भी प्रभावित होती हैं।

सूर्य का ताप बढ़ने पर ग्लोबल वार्मिंग की समस्या उत्पन्न होती है जिससे ध्रुवों पर बर्फ के पिघलने से समुद्र स्तर बढ़ सकता है। जिससे बाढ़ आने का खतरा बढ़ जाता है।

टिप्पणी

ओजोन शब्द यूनानी भाषा के ओजियन शब्द से विकसित हुआ है जिसका अर्थ 'सूंघना' होता है। ओजोन गैस (O_3) ऑक्सीजन का एक अपररूप है जिसके प्रत्येक अणु में तीन परमाणु होते हैं। ओजोन की खोज क्रिश्चियन फ्रेडरिक स्कोनबिन द्वारा की गयी थी, जिन्होंने सन् 1840 में इसका नाम 'ओजोन' रखा। यह एक हल्की नीली व अत्यधिक जहरीली गैस होती है जिसमें तीव्र गंध होती है। ओजोन का क्वथनांक 1119°C (169.52°F) और गलनांक 192.5°C (314.5°F) होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व 2.144 और हिमांक 251.4°C (420°F) होता है। यह 100°C (212°F) पर अथवा कमरे के तापमान पर कुछ उत्प्रेरकों की उपस्थिति में तेजी से विघटित होती है। तरल ओजोन एक गहरी नीली शक्तिशाली चुम्बकीय गुण वाली तरल होती है।

ओजोन परत पृथ्वी से 19 से 48 किमी. ऊपर 12 से 30 मीटर मोटाई का एक वायुमंडलीय क्षेत्र ओजोन का संकेंद्रण 10 पार्ट्स पर मिलियन (पीपीएम) होता है। वहाँ यह प्राथमिक रूप से लघु तरंग सौर पराबैंगनी निर्मित होती है, जो सामान्य आणविक ऑक्सीजन (O_2) को दो ऑक्सीजन परमाणुओं में तोड़ देता है। ये ऑक्सीजन परमाणु इसके बाद अविघिटित आणविक ऑक्सीजन से जुड़कर ओजोन का निर्माण करते हैं। ओजोन एक बार निर्मित होने के बाद 300 नैनोमीटर से कम तरंगदैर्ध्य के सौर पराबैंगनी विकिरण द्वारा आसानी से नष्ट किया जा सकता है। यह प्रक्रिया लाखों वर्षों तक चलती रहेगी लेकिन वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले नाइट्रोजन यौगिकों ने निचले स्तर पर ओजोन का संकेन्द्रण स्थिर अवस्था में बनाये रखा है। निचले स्तर पर ओजोन का यह संकेंद्रण श्वास के लिए काफी खतरनाक होता है और फेफड़ों को नष्ट कर सकता है। यद्यपि ओजोन परत पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवों को सूर्य के कैंसर कारक पराबैंगनी विकिरण से बचाती है, अतः यह काफी महत्वपूर्ण है। 1970 में ये खोज होने के बाद क्लोरो–फ्लोरो कार्बन या सी. एफ. सी कहलाने वाले रसायन, जो लंबे समय से रेफ्रीजरेटर में और एयरोसॉल स्प्रे प्रणोदक के रूप में प्रयोग किये जाते रहे हैं, ओजोन परत को नुकसान पहुँचाते हैं, वैज्ञानिक जगत में चिंता की लहर दौड़ गयी। वायुमंडल में मुक्त होने के बाद क्लोरीनयुक्त ये रसायन ऊपर उठते हैं, और सूर्य के प्रकाश तोड़ दिये जाते हैं, जहां क्लोरीन ओजोन से अभिक्रिया कर उसके अणुओं को नष्ट कर देती है। इस कारण ही अमेरिका और अन्य देशों में एयरोसॉल में सी. एफ. सी. का प्रयोग प्रतिबंधित किया गया है। ब्रोमीन हैलोकार्बन और उर्वरकों से प्राप्त बाइट्स ऑक्साइड जैसे कुछ अन्य रसायन भी ओजोन परत को नुकसान पहुँचा सकते हैं। ओजोन परत के विनाश से त्वचा कैंसर और मोतियाबिन्द के मामलों में वृद्धि, कुछ फसलों, प्लवकों और समुद्री खाद्य शृंखला को नुकसान तथा पौधों एवं सबकों के कम होने के कारण कार्बन डाइऑक्साइड में वृद्धि हो सकती है।

ओजोन परत का निर्माण आरंभ जब पृथ्वी का उद्‌भव हुआ था, ऑक्सीजन गैस नहीं थी। कुछ समय पश्चात समुद्रों के भीतर जीवन स्वरूपों उद्‌भव हुआ, जो कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण कर ऑक्सीजन का प्रजनन करने लगे। इस ऑक्सीजन ने वायुमंडल के ऊपरी भाग की ओर अग्रसर होना आरंभ किया, जहाँ पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में इसका विभाजन एटमों में होने लगा। इन एटमों ने संयुक्त

टिप्पणी

होकर ओजोन का रूप धारण कर 'समतापमंडल' (स्ट्रेटोस्फियर) में सांद्रित होकर 'ओजोन परत' का निर्माण किया। ओजोन परत पृथ्वी के ऊपरी 15–50 किलोमीटर ऊँचाई पर स्थित है और इसकी मोटाई लगभग 35 किलोमीटर है। ओजोन का निर्माण सौर–विकिरण द्वारा निरंतर होता रहता है, जिसका स्तर 300 मिलियन टन प्रतिदिन है। और इतनी ही मात्रा प्राकृतिक रूप से नष्ट भी होती रहती है।

ओजोन परत की संरचना

ओजोन परत की सरंचना आश्चर्यजनक है। सूर्य के प्रकाश से ही पृथ्वी के वातावरण की ऑक्सीजन बदलकर ओजोन बन जाती है। पृथ्वी के वातावरण में 15–30 किमी की ऊँचाई पर यह प्रक्रिया है। जब सूर्य विकिरण पृथ्वी की सतह पर आता है तो पृथ्वी की ऑक्सीजन (O_2) सूर्य की किरणों से प्रभावित होकर एक नए मॉलिक्यूल का निर्माण करती है। यह क्रिया सूर्य के प्रकाश के UV-C एवं UV-B भाग में होती है

ओजोन केमिस्ट्री

यहाँ हम देखते है कि UV-C विकिरण UV-B में O_2 की मात्रा प्रधान होती है। जैसे–जैसे सूर्य विकिरण UV-B तरंगदैर्ध्य में जाता है तो सूर्य की तरंगदैर्ध्य में बढ़ती मात्रा द्वारा O_2 से O_3, में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रक्रिया की संरचना सूर्य की UV B तरंगों के कारण होती है। परन्तु इस प्रक्रिया को प्रारम्भ करने के लिये एक तीसरे अणु की आवश्यकता होती है। जो स्वयं अपना रूप न बदल कर अपनी उपस्थिति में O_3 बनाने का कार्य करता है। इस अणु को 'कैटेलिटिक एजेन्ट' कहा जाता है जो स्वयं को प्रभावित न कर O_2, एवं सूर्य विकिरण द्वारा O_3 का निर्माण करता है। हम इसे दो समीकरणों द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

$$O_2 + hv \text{ (सूर्य विकिरण } 2 < 240mm) \rightarrow O + O \quad (1)$$

तत्पश्चात् $O + O_2 + M = O_3 + M$

हम स्पष्टतः देखते हैं कि M में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ''कैटलिटिक एजेन्ट'' अपना कार्य सम्पन्न करता है। इसे सावधानी के साथ अलग–अलग प्रक्रिया के लिये चुनना पड़ता है और इस एजेन्ट के चुनाव पर ही प्रक्रिया की सफलता निर्भर करती है। पृथ्वी के वातावरण में यौगिक क्लोरो–फ्लोरो कार्बन (CFC) का O_3, के वितरण में अधिक प्रभावकारी कार्य होता है। दो और रासायनिक अवयय 15–30 किमी. की ऊँचाई पर O_3 की मात्रा कंट्रोल करने में प्रभावकारी स्थिति पैदा करते हैं ये है CO एवं NO_2 ($NO + NO_2$) ऊँचाई के साथ इनकी मात्रा में बदलाव से भी O_3 के वितरण पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु इनकी संख्या काफी कम होती है।

ओजोन परत का महत्व

ओजोन परत एक सूर्य पट (सब–स्क्रीन) या फिल्टर का कार्य करती है। सूर्य की किरणों के अदृश्य भाग में अत्याधिक ऊर्जा वाली पराबैंगनी–बी (220–280 नैनोमीटर), पराबैंगनी–सी (280–320 नैनोमीटर) तथा पराबैंगनी–ए (320–400

नैनोमीटर) किरणें होती हैं। पराबैंगनी–बी और सी जीवन के लिए खतरनाक हैं। ओजोन परत इन किरणों का अधिकांश भाग रोक देती है और केवल 2–3 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी पर पहुँचता है।

टिप्पणी

वैज्ञानिकों के अनुसार ओजोन परत के नष्ट होने से आने वाली पराबैंगनी किरणों की बढ़ती मात्रा के कारण पृथ्वी वीरान एवं बंजर हो सकती है। यह विकिरण जीव–जंतुओं के लिए खतरनाक है। इसके सीधे सम्पर्क में आने से मनुष्य में त्वचा कैंसर और मोतियाबिंद की संभावना बढ़ जाती है। ओजोन में एक प्रतिशत की कमी से त्वचा कैंसर के पाँच हजार रोगी प्रतिवर्ष न हो सकते है। यह मनुष्य की रोग– अवरोधक क्षमता को भी प्रभावित करती है और कोशिकाओं की मौलिक संरचना पत्र दलन में सक्षम है।

पराबैंगनी किरणों के प्रभाव

1. मानव स्वास्थ्य

(क) रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी

(ख) आँखों पर बुरा प्रभाव, मोतियाबिंद की घटनाओं में वृद्धि

(ग) त्वचा कैंसर में वृद्धि।

2. स्थलीय पौधे

(क) कुछ फसलों जैसे सोयाबीन के उत्पादन में कमी

(ख) पत्तियों के क्षेत्र तथा पौधे की ऊँचाई में कमी।

(ग) जैव विविधता में कमी।

3. जलीय पौधे

(क) जन्तु और पादप प्लावक पर बुरा प्रभाव

(ख) जैविक उत्पादन क्षमता में कमी

(ग) जैव विविधता में कमी।

4. ट्रोपोस्फियर की वायु गुणवता

(क) प्रकाश रासायनिक स्मोग में वृद्धि।

5. अन्य पदार्थों पर प्रभाव

प्लास्टिक और अन्य पॉलीमर वाले पदार्थों को क्षति –

वर्तमान विश्वव्यापी परिदृश्य में ओजोन परत लगभग सभी क्षेत्रों में पतली होती जा रही है। ओजोन परत पतली होने की प्रथम जानकारी सन् 1974 में अमेरिकी वैज्ञानिक मेरियो मोलिना और एफ शेखुड रोलैण्ड ने अपने शोध पत्रों में प्रस्तुत किया लेकिन इसका वास्तविक ज्ञान सन् 1985 में हुआ। उपलब्ध आँकड़ों से ज्ञात होता है कि सन् 1970 के दशक में अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन परत में छेद

प्रकट होने लगे थे और अब ये छेद यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान एवं आस्ट्रेलिया के ऊपर भी प्रकट होने लगे हैं।

टिप्पणी

दक्षिणी ध्रुव की ऊपरी सतह पर ओजोन छिद्र

सम्पूर्ण विश्व में ओजोन की मात्रा का विश्वसनीय अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है। यद्यपि विश्व के कुछ देशों के अध्ययन को आधार मानकर यह मत व्यक्त किया जाता है कि पृथ्वी के ऊपर आकाश में ओजोन की मात्रा पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति एवं ऋतु परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती रहती है। इस तथ्य को वैज्ञानिक रूप में स्थापित करने के लिये हमें एक ही समय पर सभी स्थानों पर O_3, CO एवं NO_x की मात्रा, चुम्बकीय शक्ति का माप एवं ऋतु परिवर्तन का अध्ययन करना आवश्यक है जो आज तक विश्वव्यापी रूप में संभव नहीं हो पाया है। विकसित देशों यथा अमेरिका, इंग्लैण्ड एवं जर्मनी ने प्रयास किया है परन्तु इसके आधार पर कोई विश्वसनीय निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय समूह ने दक्षिणी ध्रुव पर प्रयोगशालायें बनाकर ओजोन की मात्रा का भाप करना प्रारम्भ और इसके आधार पर वैज्ञानिकों ने पाया कि दक्षिणी ध्रुव के कुछ हिस्सों में ओजोन (O_3) की मात्रा बहुत ही कम रहती है। अपने माप को वैज्ञानिकों ने बदलती हुई ऊँचाई के साथ भी किया। अपने माप को जब पृथ्वी की सतह से ऊँचाई के साथ प्लाट किया तो उन्हें आरेख 25:9 प्राप्त हुआ।

पृथ्वी तल से लगभग 8–16 किमी. की ऊँचाई पर O_3 का निकास अधिक होता है। इस प्रकार O_3 का उत्पादन कुछ भागों में कम हो जाता है अतः 8–16 किमी. के बीच आकाश में ओजोन मॉलिक्यूल की संख्या कम हो जाती है जिसे विश्व के वैज्ञानिकों ने "ओजोन छिद्र" या "ओजोन होल'' का नाम दिया है। इस छिद्र का प्रारूप भी समय के साथ घटता एवं बढ़ता हुआ पाया गया परन्तु यह किस प्रभाव से घटता एवं बढ़ता है इसका दृढ़ निश्चय नहीं हो पाया है। वैज्ञानिकों ने सूर्य के विकिरण एवं चुम्बकीय शक्ति की 11 वर्षीय साइकिल के साथ O_3 के कम और अधिक होने को कहा है परन्तु यह तथ्य अभी तक निश्चित नहीं हो सका है।

ओजोन का बनना एक प्रक्रिया है जो सूर्य की किरणों द्वारा प्रारम्भ होती है। ओजोन की मात्रा ही मानव को सूर्य के ज्ञानिकारक विकिरण से बचाती है। अतः स्वाभाविक है कि ओजोन की मात्रा उपयुक्त रहे जिससे जन–जीवन पर सूर्य विकिरण का कोई अनिष्टकारी प्रभाव न पड़े।

सूर्य स्वयं एक विशाल विकिरण का स्पेक्ट्रम पैदा करता है जिसमें हर प्रकार की तरंगों का समागम होता है। वातावरण में O_3 मात्रा पर UV-C एवं UV-B के प्रभाव से O_2–O_3 में बदलती रहती है UV-C के कुछ भागों में O_3 बना रहता है परन्तु जैसे ही UV-C-200 (nm) के ऊपर बढ़ता है तो स्पष्टतः देखते हैं कि UV-C एवं UV-B के प्रभाव में O_3 बनना प्रारम्भ हो जाता है और O_3 की अधिकतम मात्रा 250(um) पर स्पष्टतः दिखाई देती है। अब हम स्पष्टतः देख सकते हैं कि UV-C एवं UV-B विकिरण के प्रभाव द्वारा ही, की मात्रा में कमी होकर ओजोन

छिद्र का अवतरण होता है एवं इसी के प्रभाव में ओजोन छिद्र TO में भी परिवर्तन होते रहते हैं। यह एक अनिश्चित (अन्तरिम) निष्कर्ष है जिस पर वैज्ञानिक आज भी कार्यरत हैं और भविष्य में इस निष्कर्ष में परिवर्तन की संभावना बनी हुई है।

पृथ्वी जब अपने अक्ष पर घूमती है तो पिघला हुआ मैटेलिक घोल भी साथ–साथ घूमता है। ऐसी दशा में पृथ्वी के केन्द्र चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है। इस क्षेत्र में ऊर्ध्वाधर चुम्बकीय रेखायें उत्पन्न होती हैं। ऐसी मान्यता है कि हमारी पृथ्वी के दक्षिणी ध्रुव पर चुम्बकीय क्षेत्र का प्रसार समान नहीं है और इसके प्रसार में असमानता के कारण पृथ्वी के दक्षिणी ध्रुव पर चुम्बकीय छिद्र का निर्माण होता है। इस छिद्र का अपना महत्व है। इस क्षेत्र में चुम्बकीय रेखायें विरल हो जाती है, जिससे हानिकारक कास्मिक किरणें पृथ्वी तल तक पहुँचती हैं। अतः इसे वैज्ञानिकों ने 'चुम्बकीय होल' अथवा 'चुम्बकीय छिद्र भी कहा है।

ओजोन परत क्षरण के कारण

ओजोन परत के पतले पड़ने और उनमें दरार आने से उत्पन्न समस्या मानव जनित है। ओजोन परत की इस स्थिति के लिए क्लोरो–फ्लोरो कार्बन एक सीमा तक उत्तरदायी है। सन् 1920 के उत्तरार्ध में मानव ने इस यौगिक को बनाया। इसी का एक रुप फ्रियॉन ($CFCI_3$) है। सन् 1988 में सी. एफ. सी. को ओजोन क्षय के प्रमुख कारक के रूप में पहचाना गया। क्लोरो–फ्लोरो कार्बन ऐसे रासायनिक यौगिक है जिनमें कार्बन और हाइड्रोजन परमाणुओं के अतिरिक्त क्लोरीन और फ्लोरीन के परमाणु भी होते हैं। ये औद्योगिक रुप से बहुत महत्वपूर्ण यौगिक है। रेफ्रीजरेटरों में प्रयुक्त होने वाली प्रशीतक गैस फ्रियॉन इसी समूह का यौगिक है। इनका उपयोग विविध रूपों में होता है जैसे प्लास्टिक इंसुलेटिंग, फोम, ब्लोइंग एजेंट, एरोसोल स्प्रे, प्रोपेलेंट के रुप में इलेक्ट्रॉनिक मशीनरी की सफाई में साल्वेंट के रूप में होता है। इन रसायनों के वहीं गुण जो उन्हें पृथ्वी पर उपयोगी बनाते हैं, वातावरण में पहुंचने के बाद समस्या बन जाते हैं। अपनी तुलनात्मक बाष्पशीलता के कारण ये सी. एफ. सी. वातावरणीय वायुमंडल में शीघ्र प्रवेश कर जाते हैं एवं सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड एवं ऑक्सीडेशन आदि पद्धतियों से इन्हें वातावरण से अलग नहीं किया जा सकता। परिणामतः एक बार वातावरण में प्रवेश करने के बाद ये 150 वर्ष तक बने रहते हैं। इस अवधि में वे किसी प्रकार वातावरण की निचली सतह से उठकर 25 से 40 किलोमीटर की ऊँचाई वाले समताप मंडल में प्रवेश कर जाते हैं और यहीं उनकी ओजोन क्षरण प्रक्रिया प्रारंभ होती

ओजोन परत क्षरण की क्रियाविधि

क्लोरो–फ्लोरो कार्बन वर्ग के रसायन स्थायी प्रवृत्ति के होने के कारण आसानी से विघटित नहीं होते. परिणामस्वरुप वायुमंडल में एकत्र हो जाते हैं। पराबैगनी किरणों के प्रभाव से सी. एफ. सी. अणु का विघटन होता है जिससे क्लोरीन के अणु मुक्त होते हैं जो ओजोन से क्रिया कर उसे ऑक्सीजन में परिवर्तित कर देते हैं और स्वयं क्लोरीन मोनोऑक्साइड में बदल जाते हैं।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक अंतर्राष्ट्रीय पेनल की रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि इसे नियंत्रित नहीं किया गया तो मानव जाति को भयावह परिणाम झेलने होगे। पृथ्वी की ओर आती सूर्य की किरणों में पराबैगनी किरणें बहुत अधिक मात्रा में होती है जो बहुत हानिकारक है। यदि ये अपनी पूरी मात्रा में पृथ्वी पर आ जाएं तो इसके निम्नलिखित दुष्परिणाम होगे :

1. धूप बहुत तेज होगी, तापमान असहनीय हो जाएगा।
2. वनस्पतियाँ, जीव जंतु झुलस जाएंगे।
3. आँखे खराब हो जाएंगी।
4. शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाएंगी।
5. अनेक प्रकार के चर्म रोग हो जाएंगे।
6. त्वचा कैंसर तेजी से फैलेगा।
7. बुढ़ापा शीघ्र आएगा। रोगों से लड़ने की शक्ति नष्ट हो जाएगी।
8. जलवायु परिवर्तन एवं विश्व का बढ़ता तापमान
9. पेड़–पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया प्रभावित होगी।
10. कृषि पण्यों की उपलब्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। फसलों का उत्पादन कम हो जाएगा।
11. बीज के अंकुरण और विकास की क्रिया
12. समुद्रों में मछलियाँ कम हो जाएँगी।
13. तटवर्ती स्थानों से कहीं और व्यवस्थित करना होगा।
14. भीषण बाढ़ें और तूफान आएंगे।
15. देशों में अकाल, नदियाँ सूख जाएँगी सूखे से पीड़ित, महामारी बढ़ जाएँगी।
16. प्रचण्ड गर्मी से पहाड़ों और ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ तेजी से पिघलेगी।. शाश्वत हिम खंडों के पिघलने से नदियों, झीलों और सागरों में जलस्तर बढ़ जाएँगा और धरती का एक बड़ा भाग जलमग्न हो जाएँगा।
17. बर्फ के बड़े–बड़े खण्डों के गिरने से भूकम्प आएँगे।
18. सुप्त ज्वालामुखी भी जाग सकते हैं।

ओजोन परत को बचाने हेतु किए गए प्रयास

1. वियना समझौता सन 1985 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय तथा 21 अन्य देशों ने ओजोन परत को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने सम्बंधी कुछ निर्णय लिए गए।
2. मॉन्ट्रियल समझौता 16 सितम्बर सन 1987 को 24 देशों के प्रतिनिधि ओजोन क्षरण पदार्थों से सम्बंधित समझौते को अंतिम रूप देने के लिए मॉन्ट्रियल में मिले। इसी कारण प्रत्येक वर्ष 16 सितम्बर को ओजोन बचाओ

टिप्पणी

दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस ऐतिहासिक समझौता को ''मॉन्ट्रियल समझौता'' कहा जाता है। 1 जनवरी सन 1989 से लागू इस समझौते में ओजोन–भक्षी अनेक पदार्थों जैसे हैलन और सी. एफ. सी. वर्ग के रसायनों के उत्पादन में कटौती की बात कही है। समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले सभी देश सी. एफ. सी. के उत्पादन को प्रारंभ में सन् 1986 के स्तर पर रोकने और सन् 1998 तक इसे आधा करने पर सहमत हुए। वर्ष 1992 तक हेलन के उत्पादन को भी सन् 1986 के स्तर पर लाने की बात कही गई।

3. मॉन्ट्रियल समझौता (प्रथम संशोधन) मॉन्ट्रियल समझौते के बाद नए वैज्ञानिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि ओजोन के क्षरण की दर पहले से कहीं अधिक है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर जून सन 1990 में लंदन में मॉन्ट्रियल समझौते के लिए संशोधन प्रस्तुत किया जिनमें ओजोन भक्षी पदार्थों पर अधिक सख्त प्रतिबंध प्रस्तुत किए गए। लंदन संशोधन में कार्बन टेट्राक्लोराइड, ट्राइक्लोरोमीथेन और मिथाइल क्लोरोफार्म जैसे रसायनों के उत्पादन और उपयोग में कटौती की बात कही गई। सी. एफ.सी., हैलन और सी. टी. सी. के उपयोग को वर्ष 2000 तक समाप्त करना तथा वर्ष 2005 तक मिथाइल क्लोरोफार्म का उपयोग समाप्त करने का समझौता भी हुआ था।
4. कोपेनहेगेन संशोधन कोपेनहेगेन संशोधन पर नवम्बर सन 1992 में वार्ता हुई और यह जनवरी, सन 1994 से लागू हुआ। इस संशोधन में पहली बार विकसित और विकासशील देशों के लिए अलग समयावधि निर्धारित की गई। इस संशोधन के अनुसार ऐसे विकासशील देश जहाँ ओजोन–भक्षी पदार्थों की खपत 0.3 किलोग्राम वार्षिक से कम है उन्हें विकसित देशों की अपेक्षा इन रसायनों का उपयोग समाप्त करने के लिए 10 वर्ष अधिक समय दिया गया है।

मॉन्ट्रियल समझौते में जिन ओजोन–भक्षी पदार्थों का उल्लेख है, वे हैं:

1. सी. एफ. सी. 11, 12, 113 114 115 और इनका मिश्रण
2. हैलन– 1211, 1301
3. मिथाइल क्लोरोफार्म
4. कार्बन टेट्राक्लोराइड
5. एच. सी. एफ. सी., एच. बी. एफ. सी.
6. मिथाइल ब्रोमाइट।

इस समझौते के अंतर्गत 20 ओजोन क्षरण पदार्थों में से सात का उत्पादन और उपयोग भारत में किया जाता है। भारत में 6 उद्योग ओजोन क्षरण पदार्थों का उपयोग करते हैं। लघु औद्योगिक इकाइयों में फोम, एरोसोल, घोलक और हैलन का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। अनुमान है कि देश में उत्पादित कुल सी. एफ. सी. वर्ग के रसायनों में से दो–तिहाई का प्रयोग लघु उद्योग ही करते हैं।

टिप्पणी

ओजोन–भक्षी पदार्थों को नष्ट करना भी एक कठिन एवं खर्चीला कार्य है। सी. एफ. सी., हैलन, ट्राइक्लोरो ईथेन और कार्बन टेट्राक्लोराइड को नष्ट करने से अभिप्राय है, उन्हें ऐसे रसायनों में परिवर्तित करना है जो ओजोन की अपेक्षाकृत कम हानि पहुंचाएँ। ऐसी तकनीकों पर अनुसंधान चल रहा है तथा अभी व्यवहारिक स्तर पर बहुत कम तकनीक उपलब्ध है।

1 परिवर्तन एवं विश्व का बढ़ता तापमान मे सी. एफ. सी. रासायनिक दृष्टि से बहुत स्थिर पदार्थ है। इसे विखण्डित करना कठिन है, यद्यपि सैद्धांतिक तौर पर बाहरी ऊर्जा अन्य पदार्थों की सहायता से इन्हें विखण्डित या नष्ट किया जा सकता है।

ये विधियाँ हैं:

ऊर्जा विखंडन

1. भस्मीकरण तापीय विखण्डन
2. प्लाज्मा विखण्डन
3. रासायनिक विखण्डन
4. प्रकाश रासायनिक/रेडियो सक्रिय विखण्डन।

पदार्थ विखंडन

1. उत्प्रेरक विखण्डन
2. जैविक विखण्डन।

ओजोन की सुरक्षा में भारत का योगदान

हाल ही में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने नई ऐरोसोल इकाइयाँ, जो ओजोन–भक्षी पदार्थों का इस्तेमाल करेंगी, को प्रतिबंधित करने निर्णय लिया है। मंत्रालय शीघ्र ही ऐसा प्रावधान अन्य इकाइयों के लिए भी करने जा रहा है। यह कदम भारत में ओजोन समझौते को लागू करने की प्रतिबद्धता का परिचायक है। इस समझौते के अनुसार भारत जैसे विकासशील देशों को सी. एफ. सी. तरह के ओजोन क्षरण पदार्थों की खपत को जुलाई 1998 तक वर्ष 1996 के स्तर पर स्थिर रखना है, फिर इनका उपयोग धीरे–धीरे कम करते हुए 2010 तक पूर्णतः समाप्त करना है। 'कन्फेडेरेशन ऑफ इंडस्ट्रीज' ने अनुमान किया है कि शीतकरण (कूलिंग) और रेफ्रीजरेशन उद्योगों से ओजोन–भक्षी पदार्थों का उपयोग पूरी तरह बन्द करने में 65.3 करोड़ डालर का खर्च आएगा।

भारत ने विएना समझौते को मार्च सन् 1991 में तथा मॉन्ट्रियल समझौते को जून सन् 1992 में स्वीकार किया। मॉन्ट्रियल समझौते के शर्तों के पालन हेतु 1991 में एक कार्यदल का गठन किया गया। इसके अंतर्गत गठित तीन उप समितियों ने मार्च 1992 में रिपोर्ट तैयार की, जिसे सरकार के समक्ष मार्च सन् 1993 में प्रस्तुत किया गया। इस रिपोर्ट के आधार पर पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने एक 'ओजोन कक्ष' की स्थापना किया है।

ओजोन से संबंधित राष्ट्रीय कार्यक्रम को अगस्त सन 1993 में अंतिम रूप दिया गया। इसे तैयार करने में ओजोन कक्ष की मदद संबंधित उद्योग समूहों, विभिन्न मंत्रालयों, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम तथा टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान ने किया। राष्ट्रीय कार्यक्रम में लघु इकाइयों का विशेष ध्यान रखा गया है क्योंकि कुल ओजोन क्षरण पदार्थों में से 66 प्रतिशत भाग का प्रयोग लघु इकाइयाँ ही करती हैं।

ओजोन संरक्षण के लिए भारतीय प्रयास

184 देशों द्वारा हस्ताक्षरित मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के निर्देशों के अनुसार भारत ओजोन परत को बचाने में महत्वपूर्ण योगदान अदा कर रहा है:

1. मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के बहुपक्षीय कोष द्वारा अनुमोदित परियोजनाओं के माध्यम से भारत ने लगभग 9190 टन ओजोन क्षरण के लिए उत्तरदायी पदार्थों (ओ. डी. एस.) के उपभोग पर रोक लगा दी है।
2. पिछले तीन वर्षों (1999–2002) के दौरान भारत ने 5600 मॅट्रिक टन क्लोरो–फ्लोरो कार्बन (सी. एफ. सी) का उत्पादन बंद कर दिया।
3. हैलोन्स के उत्पादन एवं उपभोग पर पूरी तरह से रोक लगा दी गयी है।
4. ओजोन परत के क्षरण के लिए उत्तरदायी इन पदार्थों पर रोक लगाने के लिए भारत को अब तक 725 करोड़ रूपये प्राप्त हुए हैं।
5. एक राष्ट्रीय कार्बन टेट्राक्लोराइड प्रतिबंध योजना (उत्पादन और उपभोग दोनों के लिए) को स्वीकृति प्रदान की गयी है। इस योजना की कुल लागत 234 करोड़ रूपये है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

11. ग्रीन हाउस गैसों का उदाहरण हैं –

    (अ) CH_4 (ब) H_2O

    (स) CO_2 (द) उपरोक्त सभी

12. मृदा परिच्छेदिका का सर्वाधिक उपजाउ भाग है–

    (अ) CFCs (ब) FCF

    (स) RCR (द) CRC

टिप्पणी

4.16 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answer to Check Your Progress)

1.	(स)	5.	(अ)	9.	(अ)
2.	(अ)	6.	(ब)	10.	(स)
3.	(स)	7.	(द)	11.	(द)
4.	(स)	8.	(स)	12.	(अ)

4.17 सारांश (Summary)

वातावरण में मृदा एक प्रमुख पारिस्थितिक कारक है जिस पर सभी जीवधारी निर्भर करते है। मृदा में विभिन्न प्रकार के भौतिक रासायनिक गुण पाये जाते हैं। मृदा, वायु, जल में मनुष्य के द्वारा विषाक्त पदार्थ अधिक मात्रा में मिलाने के कारण प्रदुषण देखा जा रहा है जिसका निराकरण करना आने वाली पीढ़ियो के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

4.18 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **मृदा परिच्छेदिका** – भूमि की खड़ी काट जिसमे मृदा के विभिन्न स्तर अथवा होरीजोन दिखलाई पडते हैं।
- **हयुमस** – मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ जो पौधों एवं अन्य जीवधारियों की मृत्यु के पश्चात जीवाणुओं एंव कवकों द्वारा अपघटन किये जाने के फलस्वरूप निर्माण होता है।
- **नाइट्रोजन स्थिरीकरण** – मिट्टी में उपस्थित जीवाणु वायु मे उपस्थित नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके अमोनिया तथा नाइट्राइट्स मृदा में बनाते हैं।
- **प्रदूषण** – वातावरण में उपस्थित भौतिक, रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं के असन्तुलित परिवर्तनों द्वारा जो हानिकारक प्रभाव होते हैं उन्हें प्रदूषण कहते हैं।
- **प्रदूषक** – प्रदूषण उत्पन्न करने वाला पदार्थ।
- **अनिम्नीकारक प्रदूषक** – वह पदार्थ जिनका धीमी गती से या बिलकुल भी अपघटन नही होता है।
- **जैवनिम्नीकारक प्रदूषक** – कम मात्रा मे उपस्थित होने पर इनका सूक्ष्मजीवों के द्वारा सरल पदार्थों मे परिवर्तित हो जाते हैं।
- **अम्ल वर्षा** – वायुमण्डल मे उपस्थित H_2SO_4 तथा HNO_3 अम्ल, वर्षा के जल मे घुलकर पृथ्वी पर अम्ल वर्षा के रूप में मिलते हैं।

टिप्पणी

- **वैश्विक तापमान** – वायुमण्डल मे CO_2 एवं ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता अधिक होने पर वायुमण्डल के तापमान में वृद्धि होने को वैश्विक तापमान कहते हैं।
- **ओजोन छिद्र** – स्ट्रेटोस्फियर में उपस्थित ओजोन सुरक्षा कवच के रूप में हैं। क्लोर–फ्लोरो कार्बन्स के द्वारा ओजोन परत की क्षति होती हैं एवं वहाँ छिद्र का निर्माण होता है।

4.19 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. मृदा निर्माण की विधि का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए –
   (i) मृदा परिच्छेदिका
   (ii) मृदा जल
3. अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओं पर टिप्पणी लिखिए।
4. मृदा के भौतिक गुण लिखिए।
5. मृदीय कारक पर टिप्पणी लिखिए।
6. ह्यूमस पर टिप्पणी लिखिए।
7. खनिज (अकार्बनिक) पदार्थों पर टिप्पणी लिखिए।
8. जल प्रदूषण को समझाते हुए जल प्रदूषण को रोकने के उपायों को समझाइए।
9. वायु प्रदूषण के मुख्य कारण समझाते हुए उनका जन–जीवन पर प्रभाव एवं उनसे बचने के साधन बताइए।
10. ध्वनि प्रदूषण किस प्रकार होता है? इसके कुप्रभावों का वर्णन कीजिए।
11. मृदा प्रदूषण के स्रोत पर टिप्पणी लिखिए।
12. ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
13. जल तथा वायु को प्रदूषित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
14. आजकल ओजोन परत को क्षति किस प्रकार पहुँच रही है?
15. अम्ल वर्षा क्या है? मनुष्य में इसके दो प्रभाव लिखिए।
16. वायु प्रदूषण का पौधों पर प्रभाव लिखिए।

17. वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत एवं रोकथाम के उपाय लिखिए।
18. जल प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों को समझाइए।
19. ग्लोबल वार्मिंग पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. मृदा निर्माण एवं संगठन का वर्णन कीजिए।
2. मृदा का वर्गीकरण कीजिए एवं मृदाओं के भौतिक एवं रासायनिक गुणों का उल्लेख कीजिए।
3. मृदीय कारकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. प्रदूषण क्या है? वातावरणीय प्रदूषण के क्या कारण हैं? इनकी रोकथाम के उपाय बताइए।
5. वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण के विषय में जानकारी दीजिए। भारत की इस विषय में क्या स्थिति है? स्पष्ट कीजिए।
6. जल तथा वायु प्रदूषणों के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
7. वायु प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।
8. ''आधुनिकीकरण द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण में वृद्धि हुई।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
9. पर्यावरणीय प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।
10. ''विकिरण प्रदूषण सबसे हानिकारक प्रदूषण है''। इस कथन की पुष्टि उदाहरण सहित कीजिए।
11. रेडियोएक्टिव प्रदूषण से होने वाली बीमारियों का वर्णन कीजिए।
12. आतिशबाजी से पर्यावरण में किस प्रकार का प्रदूषण होता है?
13. ध्वनि प्रदूषण के स्रोत क्या है? ध्वनि प्रदूषण के कोई चार प्रभाव बताइए।
14. विकिरण प्रदूषण के स्रोत तथा विकिरण प्रदूषण के प्रभाव बताइए।
15. वायु प्रदूषण के प्रभावों तथा उनसे बचने के उपायों को समझाइए।
16. वायु प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।
17. वैश्विक तापन पर एक लेख लिखिए।
18. ओजोन छिद्र की विवेचना कीजिए।

4.20 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

टिप्पणी

1. इकोलॉजी – एम.पी. अरोरा
2. कॉलेज बॉटनी Volume II – एस. सुन्दरा राजन
3. द नेचर एंड प्रोप्रटीस और सोइल्स– 13 एडिशन – एन.सी. ब्रेडी एवं आर. आर. वेइल
4. एनवारनमेन्टल साइंस – एस. सी. सन्तरा
5. ए टेक्स्टबुक ऑफ प्लान्ट इकोलॉजी – आर एस शुक्ला एवं पी.एस. चन्देल

टिप्पणी

इकाई 5 पादप–भौगोलिक : भारत के पादप–भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश) (Phytogeography : Phytogeographical Regions of India)

संरचना (Structure)

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 भारत के पादप–भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश)
5.3 मध्यप्रदेश के वानस्पतिक प्रकार
  5.3.1 घास के मैदान
5.4 प्राकृतिक स्रोत (संसाधन): वर्गीकरण, संरक्षण एवं प्रबन्धन
  5.4.1 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण
  5.4.2 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबन्धन
  5.4.3 मृदा अपरदन
  5.4.4 मृदा अपरदन के साधन
  5.4.5 मृदा अपरदन के परिणाम
  5.4.6 भूमि–संरक्षण एवं प्रबन्धन
  5.4.7 भूमि संरक्षण की विधियाँ
5.5 वन संसाधन एवं उनका संरक्षण
  5.5.1 वनों के विनाश के कारण
  5.5.2 वन संरक्षण के उपाय
5.6 जल संसाधन प्रबन्धन
5.7 आर्द्र–भूमि संसाधन प्रबन्धन
5.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.9 सारांश
5.10 मुख्य शब्दावली
5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.12 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय (Introduction)

वह विज्ञान जिसके अन्तर्गत पादपों की उत्पत्ति, वितरण तथा पर्यावरणीय परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है उसे पादप–भूगोल (Phytogeography) कहते हैं। इसमें पारिस्थितिक विज्ञान (Ecology) तथा भूगोल का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पादप भूगोल दो प्रकार का होता है।

मध्यप्रदेश क्षेत्रफल के अनुसार भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। इसमें कई नदियाँ पायी जाती हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पायी जाती हैं।

प्रकृति के द्वारा प्रदान किये गये संसाधनों को प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है। मनुष्य की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति के द्वारा ही होती है।

इनके बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अतः संसाधन वे होते हैं, जिनका उपयोग मानव जीवन के लिये हो। कोई भी जैविक तथा अजैविक पदार्थ तब तक संसाधन नहीं बन सकता है, जब तक उसकी उपयोगिता मानव की सहायता के लिये न हो।

टिप्पणी

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के द्वारा भारत में उपस्थित विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी एवं उनका वितरण ज्ञात किया जा सकता है।

मनुष्यों की आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ–साथ नयी तकनीकियों एवं आविष्कारों के द्वारा संसाधनों का न केवल उपयोग हुआ है अपितु नये संसाधनों का ज्ञान भी होता है, जिसके कारण मनुष्यों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक सीमा मे दोहन किया जा रहा है, इसके कारण अनेक पारिस्थितिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। अतः इस अध्याय के द्वारा हम इन संसाधनों का संरक्षण एवं उनके प्रबन्धन की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.2 भारत के पादप–भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश) (Phytogeographical Regions of India)

जलवायु में विविधता के फलस्वरूप भारत में पायी जाने वाली वनस्पतियों में विभिन्न प्रकार की विविधताएँ देखने को मिलती है। जलवायु में स्पष्ट मौसमों के अनुसार परिवर्तन आते हैं और वर्षा वनस्पतियों का स्वरूप एवं इनकी वितरण सीमाएँ निर्धारित करती हैं। (चित्र 5.1)

1. **वर्गात्मक अथवा स्थिर पादप–भूगोल (Descriptive or Static Phytogeography)**– इसके अंतर्गत विभिन्न वानस्पतिक क्षेत्रों **(areas)** के वनस्पति जात **(flora)** एवं वनस्पतियों का अध्ययन किया जाता है।
2. **व्याख्यात्मक अथवा गतिक पादप भूगोल (Interpretive or Dynamic phytogeography)**– इसके अन्तर्गत पादपों के वितरण के कारणों का व्याख्यात्मक अध्ययन किया जाता है।

भारत की विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के वितरण का अध्ययन करने के लिए इसे निम्न प्रकार नौ वानस्पतिक क्षेत्रों **(Botanical Regions)** में बाँटा गया है–

टिप्पणी

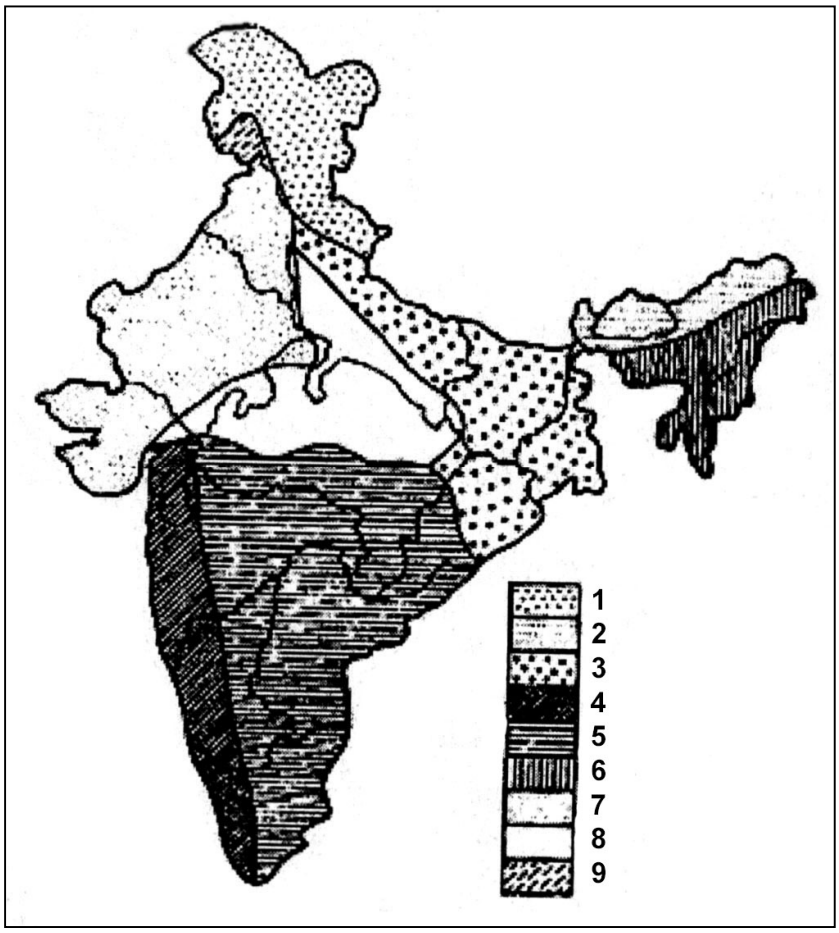

चित्र क्र. 5.1: भारत के वानस्पतिक क्षेत्र

(i) पश्चिमी हिमालय प्रदेश (Western-Himalayas)

(ii) पूर्वी हिमालय प्रदेश (Eastern Himalayas)

(iii) पश्चिमी भारतीय मरुस्थल (West Indian Deserts)

(iv) गंगा का मैदान (Gangetic plains)

(v) असम (Assam)

(vi) मध्य भारत क्षेत्र (Central Indian Regions)

(vii) मालाबार (Malabar)

(viii) दक्षिणी डेक्कन (Southern Deccan)

(ix) अण्डमान निकोबार प्रदेश (Andaman Nicobar Region)

(i) पश्चिमी हिमालय प्रदेश (Western Himalayas)– इस क्षेत्र का विस्तार कुमाऊँ (Kumaon) से कश्मीर के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों तक है। वार्षिक वर्षा 100 सेमी से 200 सेमी तक होती है। जलवायु की विविधता के कारण यहाँ की वनस्पतियों में अनेक अलग–अलग क्षेत्र मिलते हैं। ऊँचाई के बढ़ने से एक क्षेत्र शीघ्रता से दूसरे क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। पश्चिमी

हिमालय (Western Himalayas) में तीन जलवायुवीय कटिबन्ध पाए जाते हैं। और प्रत्येक कटिबन्ध की वनस्पति विशिष्ट प्रकार की होती है। जिसका वर्णन निम्न प्रकार है –

टिप्पणी

1. **अधोपर्वतीय अथवा निम्न क्षेत्रः उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय (Sub-montane or lower region–Tropical or Sub–Tropical)**– यह क्षेत्र हिमालय के चरण (Foot of Himalayas) या निचले भाग से लेकर 5,000 फीट की ऊँचाई तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र की जलवायु उष्ण कटिबन्धीय (tropical) एवं उपोष्ण कटिबन्धीय (Sub-tropical) है। जहाँ जून से सितम्बर तक वार्षिक वर्षा 80 से 90% तक होती है। इस कटिबन्ध के निम्न उष्ण कटिबन्धीय पर्णपाती वन (deciduous forest) का निर्माण करता है। वृक्ष सीधे तथा अधिक ऊँचाई वाले होते हैं, इनके तने धूसर (grey) रंग के होते हैं। इन वृक्षों के सघन (dense) और गहरे हरे रंग के पर्ण समूह से वन वितान (canopy) घना दिखाई देता है। इस वन मेखला के बीच–बीच में सवाना **(Savannah)** भी पाए जाते हैं। इस सवाना में ढाक *(Butea frondosa)* तथा सेमल *(Bombax malabricum)* के वृक्ष मुख्य रूप से पाए जाते हैं। पश्चिमी क्षेत्र में साल (Sal) के वृक्ष बिल्कुल भी नहीं पाए जाते हैं किन्तु अन्य वृक्ष, जैसे–आम *(Mangifera indica)*, कचनार *(Bauhinia variegata)*, अमलताश *(Cassia fistula)* तथा नीम ***(Azadirachta indica)*** बहुत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। निम्न प्रकार के वन इस मेखला के अन्य स्थानों पर पाए जाते हैं–

   (a) नदतटीय एवं दलदली वन (River Forests)– इस प्रकार के वन में अधिकतर कत्था तथा खैर *(Acacia catechu)* तथा सीसम *(Dalbergia sissoo)* के वृक्ष पाए जाते हैं।

   (b) अनूप वन (Swamp Forests)– इस प्रकार के वनों में जामुन *(Eugenia Jambolina)*, सिरस *(Albizzia procera)*, गूलर *(Ficus glomerata)*, पुत्रन्जीवा रोक्सबर्घाई *(Putranjiva roxburghii)* तथा बेंत *(Calamus tenuis)* के वृक्ष मिलते हैं।

   (c) शुष्क कँटीले वन (Dry Thorn Forests)– इस क्षेत्र में कँटीली झाड़ियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। इसमें बैर *(Zizyphus jujuba)* तथा इसकी अन्य जातियाँ पायी जाती हैं। इस वन के ऊपरी भाग में मिश्रित पर्णपाती **(mixed deciduous)** वन पाए जाते हैं, जिसमें आँवला *(Phyllanthus embilica)*, झीगल *(Odina wodior)*, अमलताश *(Cassia fistula)*, एवं सूखी घास भी पायी जाती है।

   इन वनों में जनवरी से मार्च तक पतझड़ हो जाती है, जिससे वन स्थल अमावृत दिखायी देने लगता है। वृक्षों पर कुछ परजीवी जातियाँ–जैसे–विस्कम *(Viscum)* तथा लोरेन्थस *(Loranthus)*

टिप्पणी

की जातियाँ उगने लगती हैं। इसके अतिरिक्त अधिपादप **(epiphytes)** भी उगने लगती है।

2. **शीतोष्ण कटिबन्धीय एवं पर्वतीय क्षेत्र (Temperate and Montane Zone)**– यह कटिबन्धीय 5,000 फुट से लेकर 11,000 फुट की ऊँचाई तक फैला हुआ है। पूर्ववर्ती क्षेत्रों की अपेक्षा इसमें वर्षा कम होती है तथा औसत तापमान कम होता है। शीत ऋतु की वर्षा प्रायः हिमपात के रूप में होती है। वनस्पति अपेक्षाकृत अधिक होती है। शंकु वृक्षी तथा पर्णपाती वृक्षों से भरपूर वन मिलते हैं।

   उप–पर्वतीय क्षेत्र के निम्न भाग के *Pinus longifolia* तथा ***Pinus roxburghii*** पहले शंकु वृक्ष (Cone trees) कहलाते हैं। जो लगभग 6,000 फीट की ऊँचाई पर पाए जाते हैं और यह धीरे–धीरे फैलने लगता है। इस क्षेत्र का यह विलक्षण शंकुधारी वृक्ष होता है। इसके अतिरिक्त अन्य शंकुधारी वृक्ष देवदार *(Cedrus deodara)* भी इसी ऊँचाई पर पाया जाता है। 7,500 से 9,500 फीट की ऊँचाई पर देवदार मेखला के ऊपर पाइसिया मोरिंडा *(Piceas morinda)* की मेखला (belt) दिखायी देता है। एबीज पिंड्रो *(Abies pindrow)* तथा टेक्सा बेक्काटा *(Taxas baccata)* के वृक्ष 8,000 फीट की ऊँचाई पर मिलते हैं। केवल उत्तरी ढालों पर 8,000 से 9,000 फुट की ऊँचाई तक साइप्रस *(Cyprus)* तथा क्यूप्रेसस टोरुलोसा *(Cupressus torulosa)* के वृक्ष पाए जाते हैं। इस प्रकार शंकुवृक्षी *(Coniferous)* वनों की पाँच श्रृंखलाएँ पायी जाती हैं। ऊपर की तीन शंकुवृक्षी मेखलाओं में ओक *(Oak)* के पत्ती वाले वृक्ष मिलते हैं। सबसे निचली मेखला में देवदार के साथ क्यूरकस इनकाना (*Quercus incana)* तथा मध्य मेखला में क्यूरकस डिलाटाटा *(Quercus dilatata*), पाइसिया मोरिंडा *(Picea morinda)* के साथ तथा सबसे ऊपरी मेखला में एबीज पिंड्रो *(Abies Pindro)* के साथ क्यूरकस सेमीकारपीफोली ***(Quercus semicarpifoli)*** के वृक्ष पाए जाते हैं। शीतोष्ण क्षेत्र में, वृक्षों के साथ झाड़ीदार पौधे पाए जाते हैं।

3. **एल्पाइन प्रदेश (Alpine Zone)**– इस प्रदेश की 11,000 से 12,000 फुट की ऊँचाई वृक्ष सीमा से लेकर बर्फ क्षेत्र तक माना जाता है। इस ऊँचाई के पश्चात् वृक्षरहित (Treeless) वनस्पति के दो क्षेत्र होते हैं– (1) कम ऊँचाई पर उप–अल्पाइन (Sub-alpine)– यह झाड़ीयुक्त स्थल होता है। (2) अधिक ऊँचाई पर अल्पाईन घास के मैदान (Alpine meadows)। उप–अल्पाईन क्षेत्र के उच्च पर्वतीय पौधे में सिल्वर फर्न *(Silver fern)* बेट्यूला यूटिलिस *(Betula utilis)*, जूनीपर *(Juniper)* तथा रोडोडेण्ड्रॉन *(Rhododendron)* की झाड़ियाँ पायी जाती हैं। यह पौधे काष्ठिल (Woody), बौने तथा झाड़ीनुमा होते हैं जो वहाँ की वनस्पति कहलाती है। ऊपरी अल्पाइन (upper alpine) क्षेत्र की ऊँचाई

टिप्पणी

15,000 फीट तक होती है। ऐसे स्थानों पर शाकीय (herbaceous) वनस्पति उगती है, जैसे–घास तथा रंग–बिरंगे फूलों वाली बूटियाँ आदि। यह पौधे छोटे तथा बौने (dwarf) होते हैं, जैसे– अरीनेरीया सरफाईलीफोलीया (*Arenaria serphyllifolia),* ऐसट्रेग्लस रेसीमोसस्स, *(Astragalus racemosus, Crana)* तथा ऐन्ड्रोसेस (*Androsace)* आदि जो हिमालय के तोषक (cushion) कहलाते हैं।

(ii) पूर्वी हिमालय प्रदेश (Eastern Himalaya Zone)– पूर्वी हिमालय सिक्किम (Sikkim) से लेकर असम एवं अरूणाचल प्रदेश तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र के उत्तर (North) में तिब्बत तथा दक्षिण (South) में बंगाल है। इस क्षेत्र में बहुत आर्द्रता (Humidity) एवं अधिक तापमान पाया जाता है। इस क्षेत्र को भी तीन जलवायुवीय (climatic) एवं वनस्पति प्रदेशों में बाँटा गया है –

(अ) उष्ण उप–पर्वतीय प्रदेश (ब) शीतोष्ण प्रदेश तथा

(स) अल्पाईन प्रदेश।

(अ) उष्ण उप–पर्वतीय प्रदेश (Tropical Sub-Montane Zone)– यह प्रदेश मैदानी क्षेत्रों से लेकर 5,000 फीट की ऊँचाई तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा होती है। इस क्षेत्र की प्रमुख वनस्पतियाँ निम्न प्रकार हैं–

(i) साल वन (Sal Forest)– इसके अन्तर्गत साल, सवाना के क्षेत्र सम्मिलित हैं। घास की प्रमुख जाति सेक्रम नेरंगा *(Saccharum narenga)* यहाँ पायी जाती है।

(ii) नद तटीय (Riverian)– इस क्षेत्र में सीसम *(Dalbergia sissoo)* तथा कत्था *(Acacia catechu)* के वृक्ष पाए जाते हैं।

(iii) मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed Decideuous Forest)– इसमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों की जातियाँ पायी जाती है, जैसे–टेरमिनेलिया *(Terminalia),* लेजरस्ट्रोमिया पारवीफ्लोरा *(Lagerstroemia parviflora, Sterculia villosa),* बोम्बेक्स मालबेरीकम *(Bombax malabaricum, Anthocephalus cadamba)* तथा *Schima wallichii* आदि।

(iv) आर्द्र सवाना वन (Moist Savannah Forest)– यहाँ पर ऊँची–ऊँची सवाना घास की जातियाँ पायी जाती हैं तथा कहीं–कहीं *Albizia procera, Bischofia, javanica* के वृक्ष भी मिलते हैं। *Saccharum procerum* नामक घास बहुत अधिक मात्रा में उगती है।

(v) सदाहरित वन (Evergreen Forest)– इसमें पाये जाने वाले *Dillenia indica, Michelia champaca, Eugenia, Echinocarpus* सदाहरित वृक्ष पाए जाते हैं। यह वन बहुत सघन हो जाते हैं। अतः इन्हें पार करना दुर्लभ हो जाता है।

टिप्पणी

(ब) शीतोष्ण या पर्वतीय प्रदेश (Temperate or Montane Zone)– यह प्रदेश 5,000 से 12,000 फुट की ऊँचाई तक फैला हुआ है और इसकी जलवायु में बहुत अधिक आर्द्रता पायी जाती है। इस क्षेत्र के वनों को अग्र दो मेखलाओं (belts) में बाँटा गया है–

(a) निचली मेखला (Lower belt)– इसकी ऊँचाई 5,000 से 9,000 फीट तक होती है जिसमें पर्णपाती (deciduous) वन पाए जाते हैं। इसमें सामान्यतया *Quercus lamellosas, Q. lineata* तथा *Q.pachyphylla, Cedrela bucklandia, Echinocarpus, Birch, Eugenia* तथा *Laurels* के वृक्ष पाए जाते हैं।

(b) ऊपरी मेखला (Upper belt)– इसकी ऊँचाई 9,000 से 12,000 फीट तक होती है, जिसमें शंकु वाले वृक्ष पाए जाते हैं, जैसे– *Abies babaina, Picea morinda, Larix griffithii Tsuga brunoniana* तथा आदि। इसके अतिरिक्त *Junipers, Rhododendron* तथा *Willows* की भी जातियाँ उपस्थित होती हैं।

(स) अल्पाइन क्षेत्र (Alpine Zone)– यह विभिन्न क्षेत्रों में बाटाँ गया हैं– निचले क्षेत्र में उप–अल्पाइनी वन (Sub-alpine forests) मिलते हैं, जिनमें ऐबीस डेन्सा *(Abies densa)*, बेटूला यूटिलिस *(Betula Utilis)*, जूनिपेरस *(Juniperus)*, पॉलिगोनम *(Polygonum)* आदि पाये जाते है। उप–अल्पाइनी क्षेत्र के ऊपर अल्पाइन स्क्रब वनस्पतियाँ होती है। जिनमें सैलिक्स *(salix)*, रोडोडेन्ड्रॉन *(Rhododendron)* पाई जाती है। अल्पाइन स्क्रब के ऊपर अल्पाइनी घासीय क्षेत्र पाया जाता है जिसमें जेरानियम *(Geranium)*, प्राइमूला *(Primula)*, ऐस्ट्रागैलम *(Astragalus)* आदि उपस्थित रहते हैं।

घासीय क्षेत्र के ऊपर पथरीले आधार पर भी कुछ पौधे पाये जाते है। इस क्षेत्र को अल्पाइनी पथरीली मरूस्थल *(Alpine stony desert)* के नाम से जाना जाता है।

(iii) पश्चिमी भारतीय मरुस्थल (West Indian Deserts)- इस क्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान, कच्छ (Kutch), दिल्ली तथा गुजरात का कुछ हिस्सा सम्मिलित किया गया है। ग्रीष्म ऋतु में यहाँ की जलवायु बहुत गर्म तथा शरद ऋतु में ठण्डी हो जाती है। वर्षा 70 से.मी. से भी कम होती है। यहाँ पर अधिकतर मरुद्भिद पौधे (Xerophytic plants), जैसे– *Acacia nilotica, Prosopis spicigera, Salvadora oleoides, S. persica, Tecomella, Capparis aphylla, Tamarix dioica* तथा *Zizyphus nummularia* के वृक्ष पाए जाते हैं। *Calotropis sp., Panicum antidotale, Eleusine sp.* तथा *Tribulus terrestris* आदि मरुस्थलीय भूमि पर उगते हुए पाए जाते हैं। कुछ पौधे, जैसे– मंजू *(Saccharum munja), Panicum*

antidotale, Cenchrus ciliaris, Tamarix articulata तथा *Acacia leucophloea* आदि के पौधे उगाए जाते हैं।

टिप्पणी

(iv) गंगा का मैदान (Gangetic Plain)– इसके अंतर्गत उत्तरप्रदेश, बिहार तथा बंगाल जैसे उर्वर (fertile) क्षेत्र सम्मिलित किए गए हैं। जल वायवीय कारक जैसे तापमान तथा वर्षा (rainfall) दोनों ही अलग प्रकार की वनस्पति उत्पन्न करते हैं। उत्तरी उ.प्र. में वर्षा 70 से.मी. से कम होती है, किन्तु बंगाल में वर्षा 150 से.मी. तक होती है। इस क्षेत्र में वनस्पति नम उष्ण कटिबन्धीय तथा शुष्क पर्णपाती वनों के समान होती है। हिमालय के चरण (foot) के समीप उत्तरी पश्चिमी उत्तरप्रदेश में प्रायः सीसम *(Dalbergia sissoo)* तथा बबूल *(Acacia nilotica)* के वृक्ष पाए जाते हैं। यमुना के दक्षिण में स्थित नदी तथा अन्य जातियों के विरल कँटीले वन (Open thorn forest) मिलते हैं। उत्तरी क्षेत्र में साल *(Shorea robusta)* के वन पाए जाते हैं। जो विशाल अधो हिमालयी उत्तर प्रदेश से बंगाल तक फैले साल क्षेत्र से जा मिलते हैं। इस क्षेत्र के अन्य वृक्षों में चिरौंजी, तेन्दू, महुआ, पीपल *(Ficus religiosa)*, बरगद *(F. bengalensis)*, आम, नीम *(Azadirachta indica)* आदि प्रमुख हैं। इसके साथ–साथ बेर *(Zizyhpus)*, केशिया *(Cassia)*, तथा खरपतवारों आदि की झाड़ियाँ भी मिलती हैं। पूर्वी सिरे पर सुन्दर वन के मेंग्रूव (Mangrove) तथा ज्वारीय (tidal) वन जो गंगा के डेल्टा के समीप ज्वारीय क्षेत्र में पाए जाते हैं। इनमें राइजोफोरा मुकरोनाटा *(Rhizophora mucronata)*, रा. कन्जूगेटा *(R. conjugata)*, एकेन्थस इलीसीफोलियस *(Acanthus ilcifolius)*, कण्डेलिया रहीडी *(Kandelia rheedii)*, बुगुरा जिम्नोराइजा *(Bruguiera gymnorrhiza)*, सेरीओप्स *(Ceriops)* तथा एविसीनिया *(Avicennia)* के वृक्ष पाए जाते हैं।

(v) असम (Assam)– इस क्षेत्र में बहुत अधिक वर्षा अर्थात् 200 से.मी. से भी अधिक होती है। चेरापूँजी में 1,000 से.मी. तक वर्षा होती है। ब्रह्मपुत्र तथा सुर्मा (Surma) की घाटी में मेसूआ फेरिया *(Masua ferrea)*, आर्टोकार्पस, मिचीलिया, चम्पाका, लेजरस्ट्रोमिया, एल्सटोनिया स्कोलेरिस *(Alstonia scholaris)*, गारसीना *(Garcina)*, कोरेलिया *(Corallia)*, स्टरकुलेरिया एलैटा *(Stercularia alata)*, सिड्रिला टूना, मोरस लैवीगेटा *(Morus laevigata)*, फाइकस इलास्टिका *(Ficus elastica)* तथा अन्य कई जातियाँ सामान्य रूप से मिलती है। बाँस की प्रचलित जाति *(Dendrocalamus hamiltonii)*, बेंत *(Caryota)* की अनेक जातियाँ सामान्य रूप से मिलती है तथा सदाबहार झाड़ियाँ प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। नदियों के तट पर एल्बीजिया प्रोसेरा *(Albizzia procera)*, बाम्बेक्स मालाबारिकम *(Bombax malabaricum)* प्रायः मिलते हैं। गारो *(Garo)* के पर्वतीय क्षेत्रों में साल *(Shorea robusta)* के वन पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की घासें, जैसे – *Imperata sp., Saccharum arundinaceum, Themeda sp.* एवं *Phragmites sp.* भी पायी जाती है।

टिप्पणी

कुछ कीटभक्षी पौधे जैसे – निपेन्थिस ***(Nepenthes)*** भी मिलते हैं। उत्तरी शीत क्षेत्रों में *Alnus nepalensis, Rhododendron arboreum, Betula sp.* आदि भी मिलते हैं। पर्वतीय भागों में *Pinus khasiyana* तथा *P. insularis* उपस्थित होते हैं।

(vi) मध्य भारत क्षेत्र (Central Indian Regions)– इस क्षेत्र के उत्तर में गंगा तथा दक्षिण में गोदावरी नदी है। इसमें मध्यप्रदेश (M.P.), ओडीशा (Odisha) तथा गुजरात (Gujrat) के दक्षिणी भाग सम्मिलित हैं। प्रतिवर्ष वर्षा के अनुसार इस क्षेत्र को तीन वनस्पति प्रदेशों में बाँटा गया है –

1. **साल वन (Sal Forest)**– इस प्रकार के वन मध्यप्रदेश तथा ओडिशा के पूर्वी भाग में पाए जाते हैं।
2. **मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed Deciduous Forest)**– मध्यप्रदेश का भाग इन वनों से आच्छादित है। इस वन के प्रमुख वृक्ष सागौन *(Tectona grandis),* डायोस्पीरोस मेलेनोजायलोन *(Diospyros melanoxylon)*, ढाक *(Butea monosperma),* टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा *(Terminalia tomentosa)* तथा डेलबर्जिया लेटोफोलिया *(Dalbergia latifolia)* है।
3. **कँटीले वन (Thorny Forest)**– यह मध्य भारत क्षेत्र के अपेक्षाकृत शुष्क भाग में फैला हुआ है जिसमें कँटीली वनस्पति के पौधे, जैसे–केरीसा स्पाइनेरस *(Carissa spinarum)*, बेर *(Zizyphus rotundifolia),* अकेशिया ल्यूकोफ्लोइया *(Acacia leucophloea)*, अ. केटेचू *(A.catechu)* तथा ब्यूटिया फ्रोण्डोसा *(Butea frondosa)* पाए जाते हैं।

(vii) मालाबार (Malabar)– यह प्रदेश भारत के पश्चिमी तटीय भाग से गुजरात तक फैला हुआ है और यहाँ पर वर्षा बहुत अधिक होती है। इसकी वनस्पति के अनुसार निम्न प्रकार के वन मिलते हैं–

1. उष्ण कटिबन्धीय नम सदाबहार वन (Tropical moist evergreen forest)
2. मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed deciduous forest)
3. उपोष्ण या शीतोष्ण सदाबहार वन (Sub-tropical or Temperate evergeen forest)
4. मेंग्रूव वन (Mangrove forest)

इनमें से उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन प्रमुख हैं जिनमें बहुत अधिक वनस्पति उगती हुई पायी जाती है, जिनमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष प्रमुख हैं। यह वृक्ष बहुत लम्बे होते हैं, जैसे– डिप्टेरोकारपस इण्डिकस *(Dipterocarpus indicus)*, स्टरकुलिया अलाटा *(Sterculia alata)*, सिड्रेला टूना *(Cedrela toona)*, सागौन *(Tectona grandis)* तथा डलबर्जिया लेटीफोलिया *(Dalbergia latifolia)* इन वृक्षों के अतिरिक्त बाँस

की जातियाँ जैसे– *Dendrocalamus strictus* तथा *Bambusa arundinacea* भी उपस्थित होती हैं।

टिप्पणी

(viii) डेक्कन (The Deccan)– यह क्षेत्र गोदावरी नदी के दक्षिण में, पश्चिमी तट के आर्द्र (moist) भाग को छोड़कर सारे दक्षिणी प्रायद्वीप (Peninsula) में फैला हुआ शुष्क (drier) भाग है। यहाँ पर वर्षा लगभग 10 सेमी. होती है। इसके अन्तर्गत आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु तथा कर्नाटक सम्मिलित किए गए हैं। इस क्षेत्र को दो भागों में बाँटा गया है –

1. **दक्षिणी पठार (Deccan Plateau)**– इसकी औसत ऊँचाई 2,000 से 2,500 फीट तक है। इस पर्वतीय क्षेत्र में शुष्क वन पाए जाते हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष, जैसे– सागौन *(Tectona grandis)*, बोस्वेलिया सिर्राटा *(Boswellia serrata),* हर्डविकिया पिन्नेटा *(Hardwickia pinnata)* तथा टेरोकारपस सेन्टेलम *(Petrocarpus santalum)* आदि पाए जाते हैं।
2. **कोरोमण्डल तट (The Coromandal Coast)**– यहाँ की वनस्पति शुष्क सदाबहार वनों की है जिनमें प्रमुख रूप से चन्दन *(Santalum album)*, सिड्रेला टूना *(Cedrela toona)* के वन पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त करील *(Capparis)*, आँवला *(Phyllanthus)* तथा यूफोर्बिया *(Euphorbia)* की भी अनेक जातियाँ *(species)* पायी जाती हैं।

(ix) अण्डमान निकोबार प्रदेश (Andaman Nicobar Region)- इस क्षेत्र में अण्डमान तथा निकोबार के द्वीप सम्मिलित किए जाते हैं। इसमें पायी जाने वाली वनस्पति म्यांमार तथा मलेशिया से मिलती जुलती है। समुद्री तट पर मेंग्रूव *(Mangrove)* के वन और इससे दूर पहाड़ी क्षेत्रों में सदाबहार बहुत अधिक ऊँचाई वाले वृक्ष मिलते हैं। इन द्वीपों के भीतरी भागों में छोटे–छोटे शुष्क स्थान भी पाए जाते हैं। इस द्वीप (Island) की प्रमुख वनस्पति राइजोफोरा *(Rhizophora),* मिमुसोप्स *(Mimusops),* कैलोफाइलम *(Callophyllum),* डिप्टेरोकारपस *(Dipterocarpus),* लेजरस्ट्रोमिया *(Lagerstroemia)* तथा टर्मिनेलिया *(Terminalia)* की जातियाँ हैं। कुछ स्थानों के वनों को साफ करके धान तथा गन्ना की खेती भी की जाने लगी है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. भारत को कितने वानस्पतिक क्षेत्रों में बाँटा गया हैं?

(अ) 6 (ब) 5

(स) 9 (द) 8

टिप्पणी

2. कोनिफर्स कहाँ पाये जाते हैं?

(अ) पूर्वी घाट में (ब) पश्चिमी घाट में

(स) राजस्थान में (द) पूर्वी एवं पश्चिमी घाट में

3. उष्ण कटिबन्धीय नम सदाबहार वन भारत के किस क्षेत्र में पाए जाते हैं?

(अ) मालाबार (ब) डेक्कन

(स) अण्डमान (द) पश्चिमी हिमालयं

4. गांगेय मैदानी क्षेत्र मे किस प्रकार की मृदा पायी जाती है?

(अ) कॉल्युक्यिल (ब) एओलियन्

(स) एलुवियल (द) सेडीमेन्टैरी

5. भारत मे वर्षा वन कहाँ पाये जाते हैं?

(अ) पूर्वी घाटी में (ब) मध्य प्रदेश में

(स) उत्तर–पूर्व हिमालय (द) उत्तर–पश्चिम हिमालय

5.3 मध्यप्रदेश के वानस्पतिक प्रकार (Vegetation types of Madhya Pradesh)

प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाने वाली पादप जातियाँ उस क्षेत्र की वनस्पति कहलाती हैं। केन्द्रीय भारत के बीचों–बीच स्थित मध्य प्रदेश (M.P.) एक वानस्पतिक प्रदेश **(Floristic region)** कहलाता है जो एक निश्चित वानस्पतिक इकाई प्रदर्शित करता है। मध्य प्रदेश में अनेक प्रमुख वृक्ष, जैसे– चम्पा *(Madhuca),* साल *(Shorea robusta),* कचनार *(Bauhinia),* फाइलेन्थस *(Phyllanthus),* आम *(Mangifera indica),* टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा *(Terminalia tomentosa)* आदि पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक झाड़ीदार पौधे, घास आदि भी पाये जाते है।

5.3.1 घास के मैदान (Grassland Vegetation)

(I) घास के मैदान– में मुख्य रूप से छोटी–छोटी घासें तथा उनके समरूप पौधे पाये जाते हैं। इन पौधों की जातियाँ एकवर्षी अथवा बहुवर्षी होती है। घासों में वर्धी प्रजनन पाया जाता है। घास के मैदान अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है।

मध्य प्रदेश की घास स्थल वनस्पति को डॉ. एस. डी. एन. तिवारी (Dr. S.D.N. Tiwari) के अनुसार निम्नलिखित 8 प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

(1) एण्ड्रोपोगोन पुमीलस– हेलेण्डिया लेटीब्रोसा प्रकार *(Andropogon umilus-Heylendia latebrosa type)*– मध्य प्रदेश (M.P.) के पहाड़ी स्थानों में जहाँ की मिट्टी हल्के लाल (Light

टिप्पणी

red) रंग की महीन (fine), शतकणी (gritty), तथा बलुई (sandy) होती है, वहाँ पर चरागाहों (pastures) का निर्माण करके घास स्थल बनाये गये हैं। इन चारागाहों में विभिन्न प्रकार की घासों की अनेक जातियाँ लगाई जाती है, जैसे – एरिस्टिडा एडसेन्सियोनिस *(Aristida adscensionis),* केशिया तोरा *(Cassia tora)*, इरेग्रोस्टिस *(Eragrostis sp.),* एलाइसिकारपस *(Alysicarpus sp.)* की जातियाँ एवं हिटरोपोगोन कोन्टोर्टस *(Heteropogon contortus),* स्पोरोबोलस डाइन्डर *(Sporobolus diander)* आदि।

(2) **एण्ड्रोपोगोन पुमीलस– इण्डिगोफेरा प्रकार (*Andropogon pumilus-Indigofera type*)**– मध्यप्रदेश (M.P.) के मैदानी एवं पठारी भागों में भूरे लाल रंग की स्थायी *(Sedentary)*, रेतीली मिट्टी *(Sandy soil)* पाई जाती हैं। जहाँ पर घास स्थल बनाये गये हैं। जिनमें विभिन्न प्रकार की घासों की जातियाँ उगाई जाती हैः जैसे– एण्ड्रोपोगोन पुमीलस *(Andropogon pumilus)*, इण्डिगोफेरा कॉर्डीफोलिया *(Indigofera cordifolia)*, इण्डिगोफेरा लिनीफोलिया *(Indigofera linifolia)*, अर्गोस्टिस विस्कोसा *(Ergostis viscosa),* अर्गोस्टिस टेनेला *(Erogostis tenella)* तथा मेलेनोसेन्क्रिस रोयलियाना *(Melanocenchris royleana)* आदि। इन घासों की जातियों के अतिरिक्त अन्य घासों की जातियाँः जैसे– पोलीगेला चाइनेन्सिस *(Polygala chinensis),* कन्वोल्वुलस प्लूरीकोलियस *(Convolvulus pleuricaulis),* इवोल्वुलस एल्सीनोडिस *(Evolvulus alsinoides)*, ट्राइकोडेस्मा इण्डिका *(Trichodesma indica)* तथा फिम्ब्रिस्टिलिस डाइफिला *(Fimbristylis diphylla)* आदि।

(3) **गोइक्सलेक्राइमा जोबी– हेलेण्डिया लेटीब्रोसा प्रकार *(Goix lachryma jobi - Heylandia latebrosa type)***– मध्य प्रदेश में पाई जाने वाली नहरों (Canals) तथा नदियों (rivers) के किनारों की मिट्टी (Soil) बहुत नम तथा गहरे काले रंग की क्ले होती है जिसमें कार्बोनेट्स (CO_3), नाइट्रेट्स (NO_3), प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं तथा कार्बनिक पदार्थों (Organic matter) की अधिकता होती है। ऐसे स्थानों में घास स्थलों की स्थापना की गई है, जिनमें विभिन्न प्रकार की घासों की अनेक जातियाँ पाई जाती हैं, जैसे– एलाइसीकारपस *(Alysicarpus sp.)*, एटाइलोसिया प्लेटीकार्पा *(Atylosia platycarpa)*, एपलूडा अरिस्टेटा *(Apluda aristata sp.)* गोइक्सलेक्राइमा जोबी *(Goixlachryma jobi),* हिलेण्डिया लेटीब्रोसा *(Heylandia latebrosa),* सेकेरम स्पोण्टेनियम *(Saccharum spontaneum),* इकाइनोक्लोआ कोलोनम *(Echinochloa colonum)* आदि।

टिप्पणी

(4) बोथ्रियोक्लोआ परटुसा– हेलेण्डिया लेटीब्रोसा प्रकार *(Bothriochloa pertusa-Heylandia latebrosa type)*– मध्यप्रदेश के पहाड़ी (hilly) स्थानों के ढालू स्थलों की मिट्टी भूरी चाक युक्त (chalky) तथा ग्रेवल लोम (gravel loam) प्रकार की होती है। ऐसे स्थानों पर घास स्थलों (grassland) की स्थापना की गई है जहाँ पर विशेष प्रकार की घासों की अनेक जातियाँ (species) पाई जाती हैं, जैसे–इण्डिगोफेरा *(Indigofera sp.),* एण्ड्रोपोगोन पुमिलस *(Andropogon pumilus)*, डाइकेन्थियम *(Dichanthium* sp.) मेनीसुरिस ग्रैनुलेरिस *(Manisuris granularis)*, तथा रिन्कोशिया मिनीमा *(Rhynchosia minima)* आदि।

(5) थिमेडा कॉडेटा– एलिसीकार्पस प्रकार *(Themeda caudata-Alysicarpus type)* मध्य प्रदेश (M.P.) में अनेक स्थानों पर मिडोज (Meadows) पाये जाते हैं, यहाँ की मिट्टी गहरे काले रंग की क्ले (clay) होती है। इन स्थानों पर विभिन्न प्रकार के घास स्थल (grassland) स्थापित किए गए हैं। जिनमें विशेष प्रकार की घासों की अनेक जातियाँ पायी जाती हैं, जैसे– एम्फिलोप्सिस *(Amphilopsis sp.),* एटीलोसिया प्लेटीकार्पा *(Atylosia platycarpa)*, सिम्ब्रोपोगोन मार्टिनी *(Cymbropogon martini)*, सेन्क्रस सिलिऐरिस *(Cenchrus ciliaris)*, एपलूडा एरिस्टेटा *(Apluda aristata)*, एलीसीकार्पस *(Alysicarpus sp.),* ट्रेगस रेसीमोसस *(Tragus racemosus),* थिमेडा कॉडेटा *(Themeda caudata)* तथा सेहीमा नरवोसम *(Sehima nervosum)* आदि। यहाँ की घास स्थलों (grassland) की मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों (organic matter), कार्बोनेट्स (CO_3) तथा नाइट्रेट्स (NO_3) की अधिक मात्रा पायी जाती है।

(6) आइसीलेमा एन्थीफोरोइडिस– एलाइसीकार्पस प्रकार *(Iseilema anthephoroides Alysicarpus type)*– प्रायः देखा गया है कि मध्य प्रदेश (M.P.) के चरागाहों (pastures) में आग लग जाने के कारण कुछ समय तक यह उपयोगी नहीं रहते हैं, अतः इन स्थानों पर विभिन्न प्रकार के घास स्थल विकसित किए गए हैं। जिनमें अनेक प्रकार की घासों की विभिन्न जातियाँ पायी जाती हैं– जैसे– आइसीलेमा एन्थोफोरोइडिस *(Iseilema anthephoroides),* बोथ्रिओक्लोआ पर्टुसा *(Bothriochloa pertusa)*, केशिया पुमिला *(Cassia pumila)*, एलाइसीकार्पस *(Alysicarpus sp.),* साइनोडोन डेक्टाइलोन *(Cynodon dactylon),* इन्डिगोफेरा लिनीफोलिया *(Indigofera linifolia),* इरेग्रोस्टिस टेनेला *(Eragrostis tenella),* जोरिना डाइफिल्ला *(Jorina diphylla),* सेटेरिया ग्लॉका *(Setaria galuca)* तथा स्पोरोबोलस डाइएण्डर *(Sporobolus diander)* आदि।

टिप्पणी

(7) डाइकेन्थियम एन्युलेटम– डेस्मोडियम प्रकार *(Dichanthium annulatum-Desmodium type)*– मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों पर छायादार घने जंगल पाए जाते हैं। जहाँ पर अनेक चरागाह (pasture) विकसित किए गए हैं। इन चरागाहों में घास स्थलों (grassland) का निर्माण किया गया है जिनमें काले रंग की क्ले मिट्टी (clay soil) पायी जाती है। इस मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ (organic matter), नाइट्रेट्स (NO_3) तथा कार्बोनेट्स (CO_3) प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं। ऐसे घास स्थलों में घासों की विभिन्न प्रकार की जातियाँ (species) पायी जाती हैं, जैसे–बोथ्रिओक्लोआ पर्टुसा *(Bothroichloa pertusa),* क्लाइटोरिया *(Clitoria sp),* डाइकेन्थियम एनुलेटम, केसिया टोरा *(Cassia tora),* केशिया पुमीला *(Cassia pumila),* इन्डिगोफेरा ग्लेण्डुलोसा *(Indigofera glandulosa),* डेस्मोडियम *(Desmodium sp.),* डेस्मोस्टेकिया बाइपिन्नेटा *(Desmostachiya bipinnata),* सेटेरिया ग्लॉका *(Setaria glauca)* तथा स्पोरोबोलस डाइएण्डर *(Sporobolos diander)* आदि।

(8) हिटरोपोगोन कण्टोर्टस– इन्डिगोफेरा प्रकार *(Heteropogon contortus-Indigofera type)*– मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों पर भूरी (brown), रेतीली (sandy), लोम मिट्टी (loam soil) पायी जाती है। ऐसे स्थानों पर घास स्थलों का निर्माण किया गया है, जिनमें घासों की विभिन्न जातियाँ उगती हुई पायी जाती है, जैसे–हिटरोपोगोन कण्टोर्टस *(Heteropogon contortus),* फेसियोलस ट्राइलोबस *(Phaseolus trilobus),* जोर्निया डाइफिल्ला *(Zarnia diphylla),* रिन्कोशिया मिनीमा *(Rhinchosia minima),* इण्डिगोफेरा *(Indigofera),* इल्युसाइन *(Elusine sp.)*, तथा एण्ड्रोपोगोन पुमिलस *(Andropogon pumilus)* आदि।

इन विभिन्न प्रकार के घास स्थलों में लगाई घासों की जातियाँ बहुत आर्थिक महत्त्व की होती है, जिनसे पशुओं के लिए चारा (fodder), विभिन्न उद्योगों के लिए तेल आदि प्राप्त किए जाते हैं। मध्य प्रदेश (M.P.) में पायी जाने वाली यूलेलिओप्सिस बाइनेटा *(Eulaliopsis binnata)* नामक घास से कागज की लुग्दी (pulp) बनायी जाती है जिस पर अनेक कागज उद्योग (paper industry) निर्भर है।

टिप्पणी

मध्यप्रदेश में पायी जाने वाली प्रमुख घासों की जातियाँ, उनके वास स्थान एवं आर्थिक महत्व (Important Grasses of M.P., their Habitat and Economic Value)

क्रमांक (S.N.)	घासों के नाम (Name of Grasses)	वासस्थान (Habitat)	आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)
1.	एपलूडा ऐरिस्टेटा *(Apluda aristata)*	मध्यप्रदेश के पहाड़ी ढालू स्थान एवं मण्डला की बंजर भूमि	चारा *(fodder)*
2.	एम्फीलोपिस ग्लेबरा *(Amphilopis glabra)*	मध्यप्रदेश के पहाड़ी स्थल	चारा
3.	एण्ड्रोपोगोन मेरीडिस *(Andropogon merides)*	मध्यप्रदेश के वन एवं पहाड़ी स्थान	चारा
4.	एलोटेरोप्सिस सीमिसिना *(Alloteropsis*	रेतीली, लोम, बेकार भूमि	चारा *ciminciana*
5.	एपोकोप्सिस विगटी *(Apocopsis wightei)*	पथरीले नालों की भीगी मिट्टी के समीप	चारा
6.	एपोकोप्सिस पेलिडा *(A.pallida)*	खाली जंगलों की भूमि में	चारा
7.	एरण्डीनेला बेन्घालेन्सिस *(Arundinella bengalensis)*	दलदली स्थान तथा नाले के समीप रेतीली, लोम मिट्टी में	चारा
8.	सेन्क्रस सिलिऐरिस *(Cenchrus ciliaris)*	बहुत कम स्थानों पर उगता है।	बहुत अच्छा चारा प्राप्त होता है
9.	सिम्बोपोगोन मार्टीनी *(Cymbopogon martine)*	मध्यप्रदेश के बेतूल, छिन्दवाड़ा, मण्डला जिले में	सुगन्धित तेल प्राप्त होता है
10.	ऐरिस्टिडा फ्यूनिकुलेटा *(Aristida funiculata)*	रेतीली मिट्टी में	चारा
11.	क्राइसोपोगोन ऐसिकुलेटस *(Chrysopogon asiculatus)*	अधिक चराई किये गये घास स्थानों में	अच्छे चारे के रूप में

II. जल में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ (Hydrophytic Vegetation)– जल के अन्दर विभिन्न प्रकार के पौधे पाए जाते हैं जो विशिष्ट प्रकार के लक्षण प्रदर्शित करते हैं। इन पादपों द्वारा जलाशयों से खनिज लवण, ऑक्सीजन (O_2), कार्बन डाइऑसाइड (CO_2) तथा अन्य आवश्यक पदार्थ प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

III. वनों में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ (Forest Vegetation)– मध्यप्रदेश के वनों में विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. **उष्ण सदाबहार वन (Tropical Evergreen Forests)**– इस प्रकार के वनों में सदा हरे–भरे (evergreen) रहने वाले वृक्ष पाए जाते हैं। इन वनों में वृक्ष काफी घने होते हैं। जिन पर उपरिरोही पौधे **(epiphytes),** बहुत भारी संख्या में मिलते हैं। उपरिरोही पौधों के साथ–साथ कुछ कम लम्बाई वाले झाड़ीदार पौधे **(shruby plants)** भी पाये जाते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों की ऊँचाई 50 से 150 फीट तक होती है, जैसे– डिप्टेरोकारपस इण्डिकस *(Dipterocarpus indicus)*, होपिया पारविफ्लोरा *(Hopea parviflora),* केलोफाइलम टोमेण्टोसम *(Callophyllum tomentosum)* तथा मेन्गीफेरा इण्डिका *(Mangifera indica)* इन वनों से होकर बहुत चौड़े रास्ते बना लिए गए हैं और विभिन्न प्रकार के रबर *(rubber)* के तथा पान *(Piper)* के पौधे लगाए गए हैं।

2 **उष्ण नम आंशिक सदाबहार वन (Moist Tropical Semi Evergreen Forests)**– इन वनों में इस प्रकार के पौधे उगते हुए देखे जाते हैं जिनमें पतझड़ की अवधि बहुत कम होती है। अतः ये पौधे डेसीडुअस **(Deciduous)** कहलाते हैं। इन वनों में पाए जाने वाले वृक्ष कटहल *(Artocarpus),* मिचेलिया *(Michelia)* तथा यूजेनिया *(Eugenia)* प्रमुख हैं। टर्मिनेलिया *(Terminalia)*, टेट्रामेलिस *(Tetrameles)* तथा साल *(Shorea)* भी पाये जाते हैं।

3. **उष्ण नम डेसीडुअस वन (Tropical Moist Deciduous Forests)**– इन वनों में पाये जाने वाले कुछ वृक्षों के द्वारा पत्तियाँ (leaves) गिरा दी जाती है। कुछ वृक्ष सदाबहार हरे (evergreen) बने रहते हैं और कुछ वृक्ष कुछ समय के लिए हरे बने रहते हैं। मध्यप्रदेश (M.P.) में इन वनों में सागौन *(Tectona grandis)* तथा साल *(Shorea robusta)* के वृक्ष बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त टर्मिनेलिया *(Terminalia),* ग्रेविया *(Grewia),* गेरिया *(Gariya),* बॉम्बैक्स *(Bombax),* सेमल *(Salmalia)*, एडीना कार्डीफोलिया *(Adena cardifolia)*, मेलिया *(Melia)*, सिरिस *(Albizzia),* सीसम *(Dalbergia)* आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

4. **शुष्क उष्ण डेसीडुअस वन (Dry Tropical Decidous Forests)**– इन वनों में पाये जाने वाले वृक्ष कई सप्ताह तक पत्ती रहित होते हैं। इन वृक्षों की लम्बाई सामान्यतः 2.5 मीटर तक होती है। इन वनों में काँटेदार झाड़ियाँ, घासें तथा बाँसों *(Bambusa)* के वृक्ष भी पाये जाते हैं। अन्य वृक्ष, जैसे–बकरा धौरा *(Anogeissus latifolia)*, खैर *(Acacia catechu)*, अर्जुन *(Terminalia tomentosa),* डेण्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस *(Dendrocalamus strictus),* आँवला *(Emblica officinalis)*। इसके अतिरिक्त साल *(Shorea)*

टिप्पणी

के वृक्ष भी इन वनों में बिखरे हुये दिखाई देते हैं। अतः इन वनों में डेसीडुअस वृक्षों *(Deciduous trees)* के साथ बिखरे झाड़ियोंदार पौधे भी पाये जाते हैं, जैसे–डेण्ड्रोकेलेमस *(Dendrocalamus),* लान्टाना *(Lantana)*, हेलिक्टेरिस *(Helicteris)* आदि। इन वनों में पाये जाने वाले साधारण घासें पेनीकम *(Panicum),* एण्ड्रोपोगोन *(Andropogon)* तथा हिटरोपोगोन *(Heteropogon)* होती है।

5. **मोण्टेन सम– उष्ण वन (Montane Sub-tropical Forest)**– मध्य प्रदेश में ये वन पचमढ़ी **(Panchmarhi)** तथा अन्य पहाड़ी स्थानों पर 3,000 से 4,600 फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। ये वन उष्ण वनों *(tropical forest)* से ठण्डे तथा टेम्प्रेट वनों *(temperate forests)* से गर्म होते हैं। इनमें पाये जाने वाले वृक्ष यूजीनिया *(Eugenia),* एक्टिनो डेफनी *(Actino daphne),* केन्थियम *(Canthium)*, आम *(Mangifera)*, तथा बरगद *(Ficus)* हैं। इनके अलावा कुछ लताएँ, जैसे–पाइपर ट्राइकोस्टेकीयोन *(Piper trichostachyon),* नीटम स्केन्डेस *(Gnetum scandens)* तथा स्माइलेक्स मेक्रोफाइला *(Smilax macrophylla)* भी पाई जाती है। इन वनों में विभिन्न प्रकार के बाँस *(Bambusa)* तथा अनेक उपरिरोही पौधे, जैसे–ऑर्किड्स तथा फर्न्स बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। इन वनों के वृक्ष सदा हरे–भरे होते हैं।

6. **उष्ण काँटेदार वन (Tropical Spiny Forest)**– इन वनों में पाये जाने वाले वृक्ष काँटेदार (thorny) पत्ती रहित तथा कम लम्बाई वाले होते हैं, जैसे– नागफनी *(Opuntia)*, बबूल *(Acacia)*, पीली कटेरी *(Argemone mexicana)*, तथा अन्य मरुद्भिद पौधे (Xerophytic plants) ।

7. **मोन्टेन उष्ण एवं स्म–उष्ण वन (Montane, Tropical and Sub-Tropical Forests)**– इस प्रकार के वन पहाड़ियों के ढलान (slopes) पर पाये जाते हैं। इन वनों में टिम्बर (timber) प्रदान करने वाले वृक्ष, जैसे– शोरिया रोबस्टा *(Shorea robusta)* मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सीसम *(Dalbergia sissoo),* सेड्रेला टूना *(Cedrella toona)*, फाइकस ग्लोमेरेटा *(Ficus glomerata)* तथा यूजीनिया जेम्बोलाइना *(Eugenia jambolina)* भी पाए जाते हैं। इन वनों में स्थान–स्थान पर घासें तथा अन्य वृक्ष, जैसे – अकेसिया केटेच्यू *(Acacia catechu)*, ढाक *(Butia monosperma)* आदि भी पाये जाते हैं। कुछ स्थानों पर साल *(Shorea robusta)* के स्थान पर मरुद्भिद पौधे *(Xerophytic plants),* जैसे–केरीसा *(Carissa),* एकेशिया *(Acacia)* तथा जिजीफस *(Zizyphus)* एवं काँटेदार यूफोर्बिया *(Euphorbia)* की जातियाँ पाई जाती हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

6. मध्यप्रदेश की घास स्थल वनस्पति कितने भागों में विभजित हैं?

(अ) 5 (ब) 6

(स) 7 (द) 8

7. मध्यप्रदेश की वनस्पतियों को कितने भागों में बाँटा गया हैं?

(अ) 3 (ब) 4

(स) 5 (द) 6

5.4 प्राकृतिक स्रोत संसाधनः वर्गीकरण, संरक्षण एवं प्रबन्धन (Natural resources: Classification, Conservation and Management)

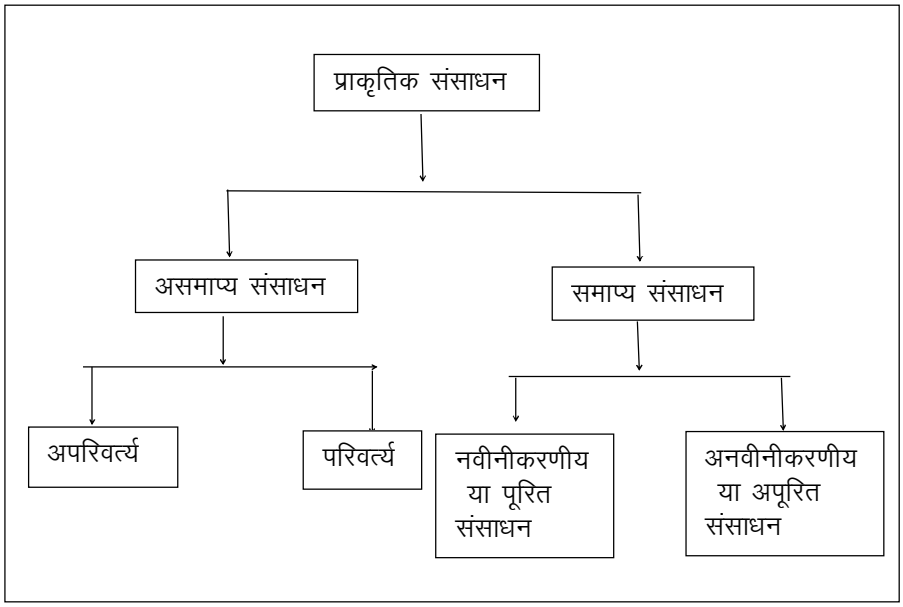

चित्र क्र. 5.2: प्राकृतिक संसाधन का वर्गीकरण

5.4.1 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Natural Resources)

प्राकृतिक संसाधनों की उनकी उपलब्धता एवं अधिकता के आधार पर दो अग्र भागों में बाँटा जा सकता है–(चित्र 5.2)

(I) असमाप्य संसाधन (Inexhaustible Resources)

(II) समाप्य संसाधन (Exhaustible Resources)

टिप्पणी

(I) असमाप्य संसाधन (Inexhaustible Resources)– ये वे संसाधन हैं जो मनुष्य के प्रयोग के बावजूद भी कभी समाप्त नहीं होंगे। इन संसाधनों को पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) अपरिवर्त्य (Immutable)– इनमें मानव गतिविधियों के द्वारा कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है, जैसे–आण्विक शक्ति, वायु शक्ति, ज्वार–भाटे की शक्ति आदि।

(ii) परिवर्त्य (Mutable)– इनमें मानव गतिविधियों के द्वारा परिवर्तन हो जाते हैं। जैसे– वायु एवं जल प्रदूषण।

(II) समाप्य संसाधन (Exhaustible Resources)– ये वे संसाधन होते हैं जो उपयोग करने के कारण समाप्त होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

1. **नवीनीकरणीय या पूरित संसाधन (Renewable Resources)**– ये वे संसाधन होते है। जो समाप्त होने के बाद पुनः प्राप्त किये जा सकते हैं। प्राकृतिक दशाओं के अनुकूल रहने पर जब इन संसाधनों की स्वयं पुनः निर्माण की दर मनुष्य के उपयोग की दर से अधिक हो जाती है तो उनकी पुनर्स्थापना अपने आप हो जाती है। इनके प्रबन्धन एवं संरक्षण से इनका प्रयोग बिना समाप्त हुये किया जा सकता है, जैसे–मृदा, पानी, लकड़ी, फसलें तथा जीव।
2. **अनवीनीकरणीय या अपूरित संसाधन (Non-Renewable Resources)**– ये वे संसाधन हैं जिनका प्रयोग करने के पश्चात् उन्हें पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जैसे–पेट्रोलियम, तेल, कोयला, खनिज (ताँबा, लोहा, सिलिका, टिन, सोना, माइका आदि)

वन्य सम्पदा वैसे तो पूरित संसाधन हैं, परन्तु मनुष्य के अधिक उपयोग के कारण यह आज अपूरित होने लगा है।

5.4.2 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबन्धन (Conservation and Management of Natural Resources)

(1) भू–संसाधन प्रबन्धन (Land Resources Management)

भूमि की ऊपरी परत मृदा (soil) की बनी होती है। जिस पर पेड़–पौधे उगाये जाते हैं तथा पोषक तत्वों के स्तर को बनाये रखने के लिए खाद, जैव–उर्वरक तथा रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। पृथ्वी के इस भाग पर प्राणी निवास करते हैं। पेड़–पौधे एवं वनस्पतियाँ उगती हैं तथा खनिजों का भण्डार पाया जाता है, इसे भूमि (land) कहते हैं। भूमि पृथ्वी का 3/10 वाँ भाग है, जिसे स्थलमण्डल के नाम से भी जानते हैं।

टिप्पणी

उपलब्धता एवं उपयोगिता के आधार पर भूमि को निम्न प्रकार मे वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. **प्राकृतिक या सामान्य भूमि (Natural Land)**– यह भारत में कुल भू–भाग का लगभग 1/4 भाग है। इसका सामान्य उपयोग जैसे–खेती करना, पेड़–पौधे लगाना आदि में किया जाता है।
2. **आर्द्र या नम भूमि (Wet Land)**– ऐसी भूमि जिसमें हमेशा पानी भरा रहता है तथा इसमें सामान्य खेती नहीं की जा सकती हो, को नम भूमि (wet land) कहते हैं। इस प्रकार की भूमि नहरों के रिसाव से बनती है या सामान्य से नीचे क्षेत्र में पानी भर जाने के कारण बनती है। इसका उपयोग मछली पालन, पशु चारा उगाने आदि के काम में होता है। भारत में घाना (राजस्थान), चिल्का (ओडिशा), हरिके (पंजाब), वुलर (जम्मू–कश्मीर) आदि नम भूमि क्षेत्र हैं।
3. **बंजर भूमि (Waste Land)**– भूमि की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी के परत के बह जाने के बाद जो चट्टानी भूमि शेष रह जाती है, उसे बंजर भूमि (Waste Land) कहते हैं। इसमें सिंचाई के साधनों को विकसित करके वनरोपण, ईंधन एवं चारे के विकास के लिये काम में लाया जा सकता है। ''राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड'' **(National Waste Land Development Board)** इस क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत है।
4. **रेगिस्तानी भूमि (Desert Land)**– इस प्रकार की भूमि मोटी बालू युक्त होती है। जिसमें पानी सोखने की एवं नम रहने की क्षमता नहीं होती है। इस पर फसलें, घास एवं पेड़–पौधों को आसानी से नहीं उगाया जा सकता है। ऐसे स्थानों पर केवल कंटीली झाड़ियाँ ही पायी जाती है।
5. **कच्छ वनस्पतियुक्त भूमि (Mangrove Land)**– इस प्रकार की भूमि समुद्र के किनारों पर पायी जाती है। यह दलदली भूमि होती है जिसमें लवणों की अधिकता होती है। इसमें मेंग्रूव पौधे ही उग पाते हैं। जो समुद्रों के कटाव को रोकते है।

5.4.3 मृदा अपरदन (Soil Erosion)

मृदा अपरदन (Soil Erosion) का अर्थ नष्ट होना होता है। मृदा अपरदन के समय मिट्टी की उपजाऊ सतह अपने मूल स्थान से हटकर दूसरे स्थानों पर स्थानान्तरित हो जाती है। मृदा अपरदन में अनेक भौतिक (Physical) एवं रासायनिक परिवर्तन (Chemical changes) होते रहते हैं।

मृदा अपरदन के प्रकार (Types of Soil Erosion)

अपरदन निम्न दो प्रकार का होता है –

I. **सामान्य अपरदन (Normal Erosion)**
II. **तीव्र अपरदन (Accelerated Erosion)**

टिप्पणी

I. सामान्य अपरदन (Normal Erosion)– जब शीर्ष मृदा (top soil) धीरे–धीरे प्रकृति में प्राकृतिक (natural), भौतिक (physical), जैविक (biological) तथा अन्य साधनों द्वारा पृथक हो जाती है तो यह क्रिया सामान्य अपरदन कहलाती है।

II. तीव्र अपरदन (Accelerated Erosion)– जब बहुत तीव्र गति के साथ शीर्ष मृदा (top soil) विभिन्न साधनों द्वारा हटा ली जाती है तो यह क्रिया तीव्र अपरदन कहलाती है।

5.4.4 मृदा अपरदन के साधन (Agencies Causing Soil Erosion)

I. वातावरणीय साधन (Climatic Agencies)

II. जैवीय साधन (Biotic agencies)

I. वातावरणीय साधन (Climatic Agencies)– जल तथा वायु वातावरणीय प्रमुख साधन हैं, जिनके द्वारा मृदा अपरदन होता है।

(अ) जल द्वारा मृदा अपरदन (Soil Erosion by Water)– जल, मृदा अपरदन का महत्वपूर्ण कारक है। अधिक वर्षा, पहाड़ों की चोटियों पर पिघलती हुई बर्फ शीर्ष मृदा को पृथक कर देती है। जल अपरदन निम्नलिखित विधियों द्वारा होता है –

(i) परत अपरदन (Sheet Erosion)– इस विधि में जल द्वारा उपजाऊ मिट्टी की सतह समान रूप से हटा ली जाती है अर्थात् किसी भी प्रकार के चिन्ह शेष नहीं रहते हैं। हटाई हुई मिट्टी पानी के बहाव के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जायी जाती है।

(ii) क्षुद्र सरिता अपरदन (Rill Erosion)– इस विधि द्वारा मिट्टी पर बहता हुआ जल कहीं–कहीं से अधिक उपजाऊ और कहीं–कहीं कम उपजाऊ मिट्टी को अपने साथ बहाकर ले जाता है जिसके कारण अनेक टेढ़ी–मेढ़ी नालियाँ **(rill)** बन जाती हैं। जिनकी गहराई बहुत कम होती है। भूमि की सतह पर इस प्रकार की बनी नालियाँ अपरदन को प्रदर्शित करती हैं।

(iii) अवनलिका अपरदन (Gully Erosion)– कहीं–कहीं भूमि उभरी हुई होती है जिसके किनारों पर अनेक क्षुद्र सरिताएँ (rills) एक–दूसरे से मिलकर चौड़ी नाली जैसी संरचनाएँ बना लेती हैं जो अवनलिकाएँ **(gully)** कहलाती हैं। इन्हीं अवनलिकाओं में वर्षा का पानी बहुत तीव्र गति के साथ बहता है जिसके कारण इसके दोनों ओर की मिट्टी लगातार कटती चली जाती है और ये अवनलिकाएँ चौड़ाई में बढ़ती रहती हैं। (चित्र क्र. 5.3)

टिप्पणी

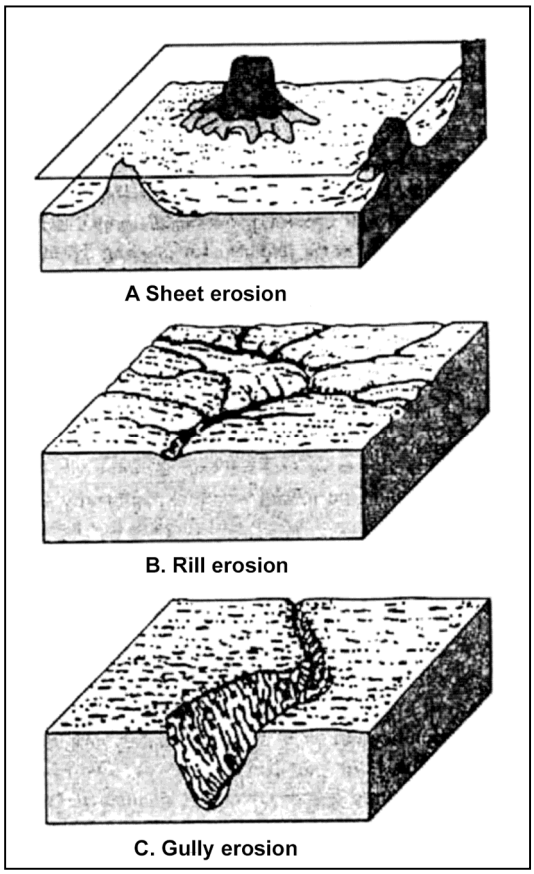

चित्र क्र. 5.3: परत अपरदन, क्षुद्र एवं अवनलिका अपरदन

(iv) नदी तटीय अपरदन (Stream Bank Erosion)– जिन नदियों में तीव्र गति से पानी का बहाव होता है, उनमें इस प्रकार का अपरदन पाया जाता है। जल के बहाव के कारण नदियों के किनारों (banks) की मिट्टी कटकर पानी में मिल जाती है और यह पानी उस मिट्टी को अपने साथ बहा ले जाता है।

(ब) वायु द्वारा मृदा अपरदन (Wind erosion)– वायु द्वारा उपजाऊ मिट्टी की सतह को उड़ा ले जाना वायु अपरदन कहलाता है। तीव्र गति से चलने वाली आँधियाँ उपजाऊ मिट्टी को अपने साथ उड़ाकर ले जाती हैं और किसी अन्य स्थान पर मिट्टी के ढेरों **(Dunes)** के रूप में एकत्रित कर देती है। वायु द्वारा मिट्टी के कण एक स्थान से दूसरे स्थान पर निम्नलिखित विधियों द्वारा पहुँचते हैं – (चित्र क्र. 5.4)

(i) साल्टेशन (Saltation)

(ii) निलम्बन (Suspension)

(iii) सतह चलन (Surface creep)

टिप्पणी

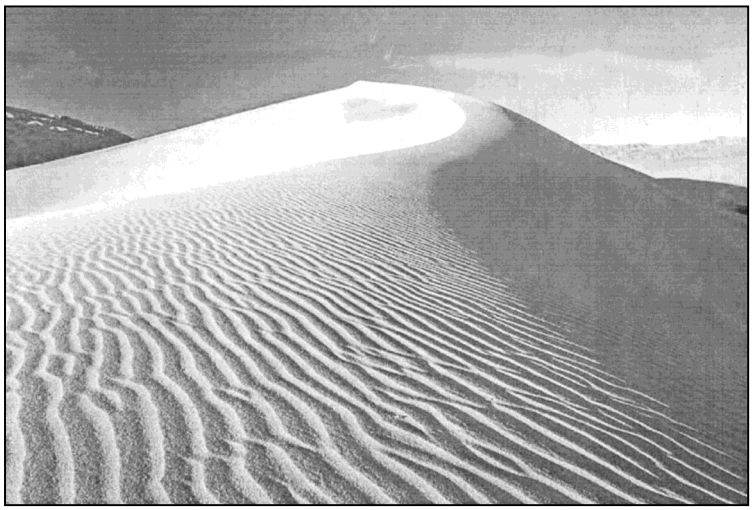

चित्र क्र. 5.4 : मिट्टी के ढेर/टीले

II. जैवीय साधन (Biotic Agencies)– पशुओं द्वारा भोजन के रूप में अधिक मात्रा में पेड़–पौधों को चरने **(grazing)** से तथा मनुष्यों द्वारा वनों (forests) को काटने से मृदा अपरदन होता है। जैविक साधनों से होने वाले मृदा अपरदन के प्रकार निम्नलिखित हैं –

1. **भूमि का अनुचित प्रयोग (Faulty Use of Land)**– बहुत सी भूमि ढालू (Slopy) होती है, जिसमें मिट्टी की गहराई कम होती है अर्थात् कृषि के लिए उपयुक्त नहीं होती है किन्तु ऐसे स्थानों पर जुताई करके खेती की जाती है।
2. **वनों को नष्ट करना (Deforestation)**– मृदा अपरदन का प्रमुख कारण वनों (forests) का नष्ट करना है।
3. **दावानल (Forest Fire)**– कभी–कभी अनायास ही वनों में आग लग जाती है जिसके कारण बहुत संख्या में पेड़–पौधे, जीव–जन्तु एवं सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं, जो मृदा निर्माण के लिए उपयोगी होते हैं। दावानल के कारण वनों में मृदा अपरदन होने लगता है।
4. **अनियंत्रित पशुओं का चरना (Uncontrolled grazing)**– कुछ स्थानों पर विभिन्न प्रकार के पशु अत्यधिक चरते हैं, जिसके कारण भूमि कठोर हो जाती है। इस प्रकार की मिट्टी पर वर्षा (rains) का पानी बहुत तेजी के साथ बहता है।

5.4.5 मृदा अपरदन के परिणाम (Results of Soil Erosion)

मृदा अपरदन के अनेक दुष्परिणाम होते हैं, जिनमें से मुख्य प्रकार हैं

1. मिट्टी की उर्वरकता (fertility) कम हो जाती है और यह नष्ट होने लगती है।
2. भूमि के ऊपर अनुपजाऊ मिट्टी के टीले (dunes) बन जाते हैं।

टिप्पणी

3. बने हुए बाँध (dams) टूट जाते हैं और बाढ़ की समस्या बढ़ जाती है।
4. तापमान बढ़ जाता है तथा वर्षा बहुत कम होने लगती है।
5. मिट्टी के कणों में पौधों को जकड़े रहने की क्षमता कम होने लगती है।
6.. पशुओं के लिए चारे (fodder) की कमी हो जाती है।

5.4.6 भूमि–संरक्षण एवं प्रबन्धन (Soil Conservation and Management)

मृदा अपरदन (Soil erosion) एक प्राकृतिक क्रिया है, मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों को ठीक प्रकार से इस्तेमाल में न लाना अपरदन को तीव्र गति प्रदान कर रहा है। मृदा अपरदन पर पूर्ण नियंत्रण पाना असम्भव हो रहा है। औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप बहुत से उपजाऊ क्षेत्रों की भूमि बेकार हो रही है।

5.4.7 भूमि संरक्षण की विधियाँ (Methods of Soil Conservation)

I. जैविक विधियाँ (Biological methods)

II. यांत्रिक विधियाँ (Mechanical methods)

I. जैविक विधियाँ (Biological methods)– जैवीय विधियों द्वारा भूमि संरक्षण निम्न प्रकार किया जा सकता है –

1. **सस्य वैज्ञानिक विधियाँ (Agronomic Practices)**
2. **घास रोपण विधियाँ (Agrostological Practices)**
3. **शुष्क कृषि विधियाँ (Dry farming Practices)**

1. **सस्य वैज्ञानिक विधियाँ (Agronomic Practices)**– महत्त्वपूर्ण एवं नई–नई कृषि विधियों द्वारा मृदा अपरदन रोककर भूमि संरक्षण किया जाता है जिससे भूमि की उत्पादन शक्ति (fertility) में वृद्धि होती है।

2. **घास रोपण विधियाँ (Agrostological Practices)**– इसके अंतर्गत मृदा अपरदन को रोकने के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनायी जाती हैं –

   (i) घासों की खेती करना (Cultivation of grasses)

   (ii) भूमि को आराम देना (Retiring of land)

   (iii) वनों को लगाना तथा वनों को पुनः लगाना (Aforestation and Reforestation)

   (iv) अत्यधिक चराई (Over grazing) को रोकना

3. **शुष्क कृषि विधियाँ (Dry farming Practices)**– ऐसे स्थानों पर जहाँ वर्षा कम होती है, इस प्रकार की कृषि की जाती है। इन स्थानों पर ऐसे पौधे उगाये जाते हैं, जिन्हें पानी की कम आवश्यकता

टिप्पणी

होती है। भारत में शुष्क कृषि मुख्य रूप से पंजाब के दक्षिणी भाग, राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में की जाती है। विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार शुष्क कृषि के लिए पौधों का चयन किया जाता है।

II. यांत्रिक विधियाँ (Mechanical Methods)– यांत्रिक विधियों द्वारा भूमि संरक्षण निम्न प्रकार किया जाता है–

(i) टैरेसिंग (Terracing)– पहाड़ी क्षेत्रों के ढालू स्थानों को काटकर छोटे–छोटे समतल खेतों में विभक्त कर दिया जाता है और इन खेतों में सीढ़ियाँ **(Channels)** बना दी जाती है, जो टैरेसेज (terraces) कहलाती है। इन टैरेसेज के बन जाने पर पानी ऊपर से नीचे की ओर आता है, जो इनमें कुछ समय के लिए रुकता है और फिर इस पानी को नीचे वाली टैरेसेज में जाने दिया जाता है जिसके कारण पानी की अधिकतर मात्रा मिट्टी द्वारा ग्रहण कर ली जाती है जिससे पौधे आसानी से उग सकते हैं और इस प्रकार मृदा अपरदन रोकने में सुविधा होती है।

(ii) नदियों के किनारों की सुरक्षा (Stream Vertical Bank Protection)– प्रायः नदियों के किनारे ऊर्ध्व दिशा (vertical) में खड़े हुए बने होते हैं। नदियों में बहता हुआ पानी किनारे की मिट्टी को काटकर बहाता हुआ ले जाता है। अतः नदियों के किनारे को ढालू बनाना चाहिए तथा किनारे के दोनों तरफ वृक्षों को लगाना चाहिए। ऐसा करने से पानी द्वारा मिट्टी का कटाव रुक जाता है तथा किनारे पर लगे हुए वृक्षों की जड़ों द्वारा मिट्टी के कण मजबूती से जकड़ लिये जाते हैं और मिट्टी आसानी से पानी के बहाव के साथ नहीं बह पाती है। यही भूमि संरक्षण (land conservation) का एक उत्तम उपाय है।

(iii) बाँध बनाना (Formation of Dams)– तेज बहाव वाले अधिक जल को रोकने के लिए और उसे आवश्यकतानुसार एक स्थान पर एकत्रित करने के लिए बड़े–बड़े बाँध (dams) बनाये जाते हैं।

5.5 वन संसाधन एवं उनका संरक्षण (Forest Resources And Their Conservation)

वन एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। इनसे हमें भाँति–भाँति के पदार्थ प्राप्त होते हैं। वन सतत् रूप से बने रहने वाले उत्पादक हैं। बहुत से वनोत्पाद वनोपज पर आधारित उद्योगों के लिये कच्चे माल के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, वन भूमि क्षरण एवं जल संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वनों के कारण जलवायु सुधरती है, जलवायु और विकिरण, वर्षा, हवा, आर्द्रता तथा वायु और मिट्टी के तापमान सभी को नियंत्रित करते है। वन हमारे लिये अधिक हितकर एवं स्वास्थ्यप्रद जलवायु बनाते हैं।

टिप्पणी

5.5.1 वनों के विनाश के कारण (Causes of forest destruction)

वनों के विनाश के लिए मनुष्य ही उत्तरदायी है। **जनसंख्या** में लगातार तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न एवं अन्य आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए अधिक मात्रा में खेती योग्य भूमि भी वनों को नष्ट करके प्राप्त की जा रही है, जिससे वनों का क्षेत्र तेजी से कम होता जा रहा है।

वनों के विनाश का एक मुख्य कारण **औद्योगीकीकरण** भी है। नए शहर, नई सड़कें, रेलवे लाईनें, बाँध, नहरें, बिजली की लाईनों, फैक्टरी स्थल, खदानें आदि के लिए अधिकांशतः वन क्षेत्र की सफाई करनी ही पड़ती है। इससे सम्बन्धित लोग न केवल अतिरिक्त भूमि ही प्राप्त करते हैं बल्कि कटी हुई लकड़ी और वनोपज का व्यापार भी करते हैं।

अग्नि प्रकोप– अग्नि से होने वाली हानि दो प्रकार की है–प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष हानि में वन सम्पत्ति पूरी तरह जलकर भस्म हो जाती है जबकि अप्रत्यक्ष नुकसान के परिणामस्वरूप वृक्षों की बाढ़ रुक जाती है, सतह की उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो जाती है, साथ ही मिट्टी के उपयोगी कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं, जिससे वन सम्पत्ति का लगातार ह्रास हो रहा है।

चराई से हानि– पशुओं की संख्या अधिक एवं चराई क्षेत्र कम होने पर यह समस्या विकराल रूप धारण कर रही है।

कीटाणु और बीमारियाँ– वानिकी में कीटनाशक पदार्थों का उपयोग सीमित तरीके से किया जा सकता है। सागौन व साल में लगने वाले कीड़े बड़े क्षेत्र में हानि पहुँचाते हैं। यूकेलिप्टस के नए रोपवनों में बड़ी मात्रा में दीमक लगने से काफी पौधे मर जाते हैं।

जलवायु सम्बन्धी कारक– इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण सूखा, पाला, तूफान हवाओं और बाढ़ों के कारण भी वनों को हानि होती है।

5.5.2 वन संरक्षण के उपाय (Means of forest conservation)

वन संरक्षण के लिए सुरक्षात्मक कदम उठाये जाने चाहिए जिससे अधिक हानि न हो। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं –

1. सबसे महत्वपूर्ण है कि **1952** में प्रतिपादित की गई **राष्ट्रीय वन नीति** को कार्यान्वित करना। कोई भी अभियान जो वन क्षेत्र को कम करने के उद्देश्य से हो उसे रोका जाना चाहिए। कृषि और वानिकी एक–दूसरे के पूरक हैं, अतः कृषि के लिए तब तक भूमि हस्तांतरित नहीं की जानी चाहिए जब तक कि यह सुनिश्चित नहीं कर लिया जाये कि वह हमेशा उपजाऊ बनाई रखी जायेगी।
2. शिक्षा प्रसार के तहत वानिकी को एक अनिवार्य विषय के रूप में स्कूलों एवं कालेजों में पढ़ाया जाना चाहिए।
3. सड़कों के किनारों, नहर के आस–पास के क्षेत्रों, बेकार भूमि पर आर्थिक महत्त्व के वृक्षों, झाड़ों और घासों का उत्पादन किया जाए।

टिप्पणी

4. वन क्षेत्रों को अन्य कार्यों के लिए देना भी पड़े तो जितना दिया जाए उसी के बराबर क्षेत्र बेकार भूमियों से वन विभाग को दिया जाए।
5. धीरे बढ़ने वाली वृक्ष जातियों के स्थान पर शीघ्र बढ़ने वाली जातियों का वृक्षारोपण करना होगा।
6. अग्नि से सुरक्षा प्रबन्ध करना चाहिए।
7. पशु संख्या को नियंत्रित करना आवश्यक है। चराई क्षेत्र सीमित करना आदि उपायों द्वारा चराई पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।
8. मुख्य विनाशी कीटों को कम करना चाहिए है। विनाशी कीटाणुओं पर नियंत्रण करने पर अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं।

5.6 जल संसाधन प्रबन्धन (Water Resources Management)

पृथ्वी के लगभग 73 प्रतिशत भाग में जल पाया जाता है जो तालाब, नदियों, झीलों तथा समुद्रों में एकत्रित रहता है। आबादी एवं औद्योगिकीरण के विकास के साथ–साथ जल की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। जल स्रोतों की कमी एवं जल प्रदूषण के कारण जल की उपलब्धता घटती जा रही है। अतः इसका संरक्षण आवश्यक है। जल संरक्षण निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जा सकता है–

1. **जल विभाजक प्रबन्धन (Watershed Management)**– ऐसा क्षेत्रफल जो जल निकास द्वारा घिरा होता है, जल विभाजक (watershed) कहलाता है। यह एक प्राकृतिक इकाई (unit) होती है। जो जल–प्रवाह प्रबन्धन के लिये आवश्यक होती है। इसके प्रबन्धन द्वारा बिजली उत्पादन किया जा सकता है तथा बाढ़ के प्रकोप से भी बचा जा सकता है।
2. **नदी घाटी परियोजनाएँ (River-Valley Projects)**– इस प्रकार की परियोजनाओं के अन्तर्गत किसी नदी एवं उसकी सहायक नदियों के सहारे एक बड़ा या कई छोटे–छोटे बाँध बनाये जाते हैं। इन बाँधों में नदी एवं वर्षा का जल भी एकत्रित किया जाता है। बाढ़ नियंत्रण, भूमि संरक्षण आदि में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
3. **उन्नत कृषि प्रक्रियाएँ (Improved Agricultural Practices)**– कम वर्षा वाले कृषि क्षेत्र पूर्णतया सिंचाई पर ही आश्रित होते हैं। पट्टीदार खेती **(Strip cropping)**, समोच्च खेती **(Contour farming)**, आच्छादन खेती **(Cover cropping)**, वेदिकायन **(Terracing)** सिंचाई द्वारा मृदा संरक्षण एवं जल भी संरक्षण किया जा सकता है।
4. **रेन वॉटर हार्वेस्टिंग (Rain Water Harvesting)**– बहुत अधिक वर्षा होने पर वर्षा का जल भूमि की सतह से बहकर नष्ट हो जाता है। वर्षा के

जल को सुरक्षित रखने को रेन वॉटर हार्वेस्टिंग (rain water harvesting) कहते हैं। (चित्र क्र. 5.5)

टिप्पणी

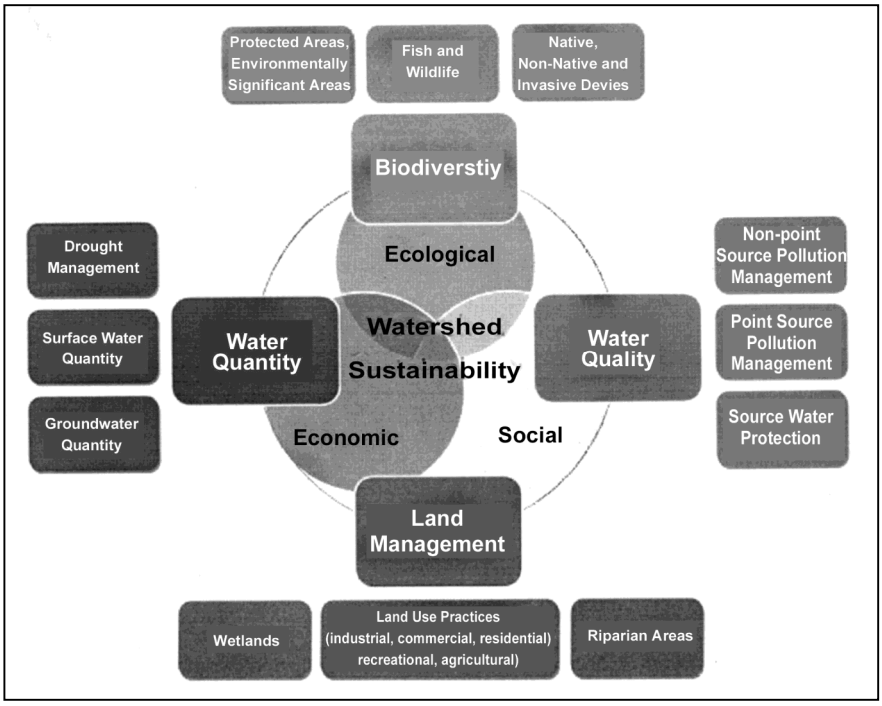

चित्र क्र. 5.5: जल संसाधन प्रबन्धन

5.7 आर्द्र–भूमि संसाधन प्रबन्धन (Wetland Resources Management)

आर्द्र भूमि (wetland) क्षेत्र वह होते हैं जो कम गहरे पानी के द्वारा ढंके रहते हैं। इन क्षेत्रों में मिट्टी एवं जल को सहन करने वाली वनस्पतियाँ पायी जाती है। वेटलैण्ड ताजा पानी वाले या खारे पानी वाले हो सकते हैं। ताजे पानी वाले आर्द्र–भूमि के स्थानों में घासें, झाड़ियाँ एवं वृक्ष ऊगते हैं तथा खारे पानी वाले आर्द्र–भूमि वाले क्षेत्रों में मेंग्रूव पौधे एवं लवणों को सहन करने वाली वनस्पति ऊगती है। (चित्र क्र. 5.6)

सम्पूर्ण पृथ्वी के लगभग छः प्रतिशत भाग में आर्द्र–भूमि वाले क्षेत्र (wetland) पाये जाते हैं। इस प्रकार के क्षेत्र भारत के उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक विभिन्न जलवायु तथा भौगोलिक क्षेत्रों में व्यापक रूप से फैले हुए हैं, उदाहरण–गंगा, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, तापी आदि नदियों से हैं। जैव विविधता संरक्षण के लिये महत्वपूर्ण होते हैं। इस प्रकार के क्षेत्र, मछलियों एवं पानी के अन्य जीवों के प्रजनन स्थल, एक्वीफायर रिचार्जिंग, जल को शुद्ध करना तथा बाढ़ नियंत्रण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मनुष्यों के द्वारा मछली पकड़ने, शिकार करने, पशुओं के चरने तथा चारे के लिये इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोग किया जा रहा है। अतः मानव जीवन के लिये ये क्षेत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जैवीय हस्तक्षेप एवं मानवीय दबाव के कारण नम भूमियों में

निरन्तर कमी आती चली आ रही है तथा इनका प्रयोग ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा है।

टिप्पणी

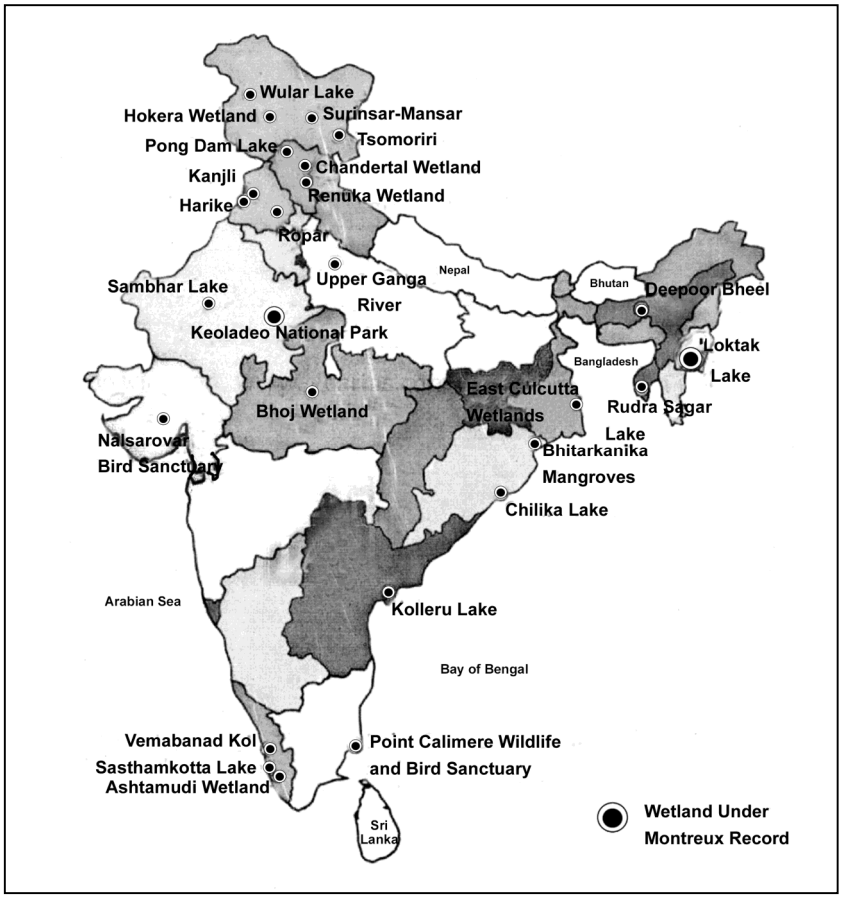

चित्र क्र. 5.6: भारत में उपस्थित आर्द्र भूमि

नम–भूमि के प्रबन्धन एवं संरक्षण के लिये भारत सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं। इसके संरक्षण के लिये **''नम–भूमि राष्ट्रीय समिति''** (National Committee on Wetland) का गठन किया गया है जो नम–भूमि संरक्षण एवं प्रबन्धन के बारे में परामर्श देती है एवं कार्यक्रम आयोजित करती है जिसके तहत नये नमभूमि क्षेत्रों की खोज एवं उनको सुरक्षित रखा जा सके।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

8. मृदा अपरदन के नियंत्रण का उपाय है–

(अ) निर्वनीकरण (ब) अतिचारण

(स) वृक्षारोपण एवं वनीकरण (द) जीवों की वृद्धि

टिप्पणी

9. निम्न में से कौन सा नवीनीकरण स्रोत नही है?

(अ) जल (ब) जंगल

(स) कोयला (द) जंगली जीव

10. ऊर्जा स्त्रोत जो घटता जा रहा है–

(अ) सौर प्रकाश (ब) पवऩ

(स) जीवाश्मी ईंधन (द) जल

11. जल है–

(अ) क्षय स्त्रोत (ब) अक्षय स्त्रोत

(स) क्षय अनवीकरणीय स्त्रोत (द) क्षय नवीकरणीय स्त्रोत

5.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answer to Check Your Progress)

1. (स)
2. (द)
3. (अ)
4. (स)
5. (द)
6. (द)
7. (अ)
8. (स)
9. (स)
10. (स)
11 (द)

5.9 सारांश (Summary)

पौधों एवं जीवों के लिए मृदा एक प्रमुख पारिस्थितिक कारण है जिस पर सब निर्भर होते हैं। मृदा के निर्माण की प्रक्रिया एवं उसकी मृदा परिच्छेदिका ज्ञात करके हम उसके कारक, प्रकारों एवं उस पर वृद्धि करने वाले पौधों की जानकारी समझ सकते है। मृदा मे उपस्थित जैविक तंत्र के द्वारा कई प्रमुख कार्य किये जाते है जिसमें से महत्त्वपूर्ण नाइट्रोजन स्थिरीकरण है जो मनुष्य के लिए खेती मे उपयोगी होता है। भारत की पारिस्थितिक विभिन्नताओं के कारण इसमें पारिस्थितिकीय प्रदेश पाये जाते है। मध्यप्रदेश को भी विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों मे विभाजित किया गया जिसमें दो प्रकार के उष्णकटिबन्धीय वन एवं घास स्थल पाये जाते है। मनुष्य के जीवन में प्राकृतिक संसाधन बहुत महत्त्वपूर्ण होते है जिनके उपयोग एवं उचित प्रबन्धन करके मृदा अपरदन, लवणता, जल की कमी आदि समस्याओं का निराकरण वह कर सकता हैं।

टिप्पणी

5.10 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **नदतटीय वन**– इस प्रकार के वन में अधिकतर कत्था तथा सीसम के वृक्ष पाए जाते हैं।
- **अनुप वन**– इस प्रकार के वन मे जामुन, गुलर, सिरस के वृक्ष पाए जाते हैं।
- **उष्ण सदाबहार वन**– इस प्रकार के वन घने एवं सदा हरे– भरे होते हैं।
- **नम भूमि**– वह भूमि जिसमें हमेशा पानी भरा रहता है तथा इसमें सामान्य खेती नहीं की जा सकती हो।
- **मृदा अपरदन**– उपजाउ मिट्टी अपने मूल स्थान से हटकर दुसरे स्थानों पर स्थानान्तरित हो जाती है।
- **परत अपरदन**– जल द्वारा कोई भी चिन्ह छोडे बिना उपजाउ मिट्टी को हटा देना।
- **क्षूद्र सरिता अपरदन**– इस प्रकार के अपरदन में अधिक एंव कम उपजाउ मिट्टी जल के साथ बह जाने के बाद कम गहराई वाली टेढ़ी मेढ़ी नालियों का निर्माण करती है।
- **सस्य वैज्ञानिक विधियाँ**– नई कृषि विधियों द्वारा मृदा अपरदन रोककर भूमि संरक्षण एवं उसकी उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जाता है।
- **रेन वाटर हार्वेस्टिंग**– वर्षा का जल बहकर व्यर्थ न जाये, उसे संरक्षित, सुरक्षित एंव दैनिक कार्यो के उपयोग मे लिया जाता है।

5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. मध्यभारत क्षेत्र की वनस्पतियों का उल्लेख कीजिए।
2. पूर्वी एवं पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियों में अन्तर लिखिए।
3. हिमालयन वनस्पति पर टिप्पणी लिखिए।
4. मालाबार रीजन की वनस्पति पर टिप्पणी लिखिए।
5. गंगा के मैदान की वानस्पतिक विशेषताएँ लिखिए।
6. पश्चिम हिमालय की वनस्पति पर टिप्पणी लिखिए।
7. अण्डमान निकोबार की वनस्पति पर टिप्पणी लिखिए।
8. भारत के जैव–भौगोलिक क्षेत्र पर टिप्पणी लिखिए।
9. मध्य प्रदेश के घास के मैदान पर टिप्पणी लिखिए।

10. मध्य प्रदेश के कँटीले वन पर टिप्पणी लिखिए।
11. मध्य प्रदेश में पाये जाने वाले वनों पर टिप्पणी लिखिए।
12. प्राकृतिक स्रोत से आप क्या समझते हैं?
13. असमाप्य एवं समाप्य संसाधनों का वर्णन कीजिए।
14. ऊर्जा का संरक्षण किस प्रकार किया जा सकता है?
15. आर्द्र–भूमि पर टिप्पणी लिखिए।
16. जल प्रबन्धन पर टिप्पणी लिखिए।
17. मृदा अपरदन पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. वानस्पतिक क्षेत्रों से आप क्या समझते हैं? भारत के वानस्पतिक क्षेत्रों के नाम लिखिए। मध्य भारत प्रक्षेत्र की वनस्पतियों का वर्णन कीजिए।
2. वानस्पतिक क्षेत्रों से क्या तात्पर्य है? इनकी व्याख्या कीजिए।
3. भारतवर्ष के जैव–भौगोलिक क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
4. वानस्पतिक क्षेत्रों को परिभाषित कीजिए। पूर्वी हिमालय की वनस्पतियों का विवरण दीजिए।
5. मध्य प्रदेश के वनों में पायी जाने वाली वनस्पतियों का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिए।
6. मध्य प्रदेश के प्रमुख वन एवं घास स्थल की वनस्पतियों का वर्णन कीजिए।
7. मध्य प्रदेश की वनस्पति प्रतिरूपों पर लेख लिखिए।
8. मध्य प्रदेश में पाये जाने वाले वनों का वर्णन कीजिए।
9. आपके द्वारा अध्ययन किये गये मध्य प्रदेश के घास स्थलों का वर्णन कीजिए।
10. प्राकृतिक स्रोत से आप क्या समझते हैं? इनका वर्गीकरण कीजिए।
11. प्राकृतिक संसाधन के प्रबन्धन एवं संरक्षण पर प्रकाश डालिए।
12. प्राकृतिक सम्पदा की परिभाषा दीजिए एवं मनुष्य के लिये आवश्यक संसाधनों का वर्णन कीजिए।
13. भू–संसाधनों प्रबन्धन पर एक लेख लिखिए।
14. मृदा अपरदन एवं मृदा संरक्षण का वर्णन कीजिए।
15. वन संसाधन से हमें क्या लाभ है? वन विनाश के कारण एवं संरक्षण पर प्रकाश डालिए।
16. जल संसाधन एवं प्रबन्धन का वर्णन कीजिए।
17. आर्द्र–भूमि के प्रबन्धन का वर्णन कीजिए।

5.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

टिप्पणी

1. कॉलेज बॉटनी Vol-II – एस. सुन्दरा राजन
2. इकोलॉजी – एम.पी. अरोरा